सुलभ कृषि-शास्त्र

प्रथम भाग

—:X:—

लेखक—

श्री० सुखसम्पत्तिराय भण्डारी

एम० आर० ए० एस०

—:०X०:—

प्रकाशक—

इन्दौर।

—:X:

प्रथम बार

१०००

प्रकाशक—
'किसान'-कार्यालय,
इन्दौर।

पहली बार

१९३२

मुद्रक—
हरनामदास गुप्त,
मालिक—भारत-प्रिंटिंग-वर्क्स,
बाज़ार सीताराम, दिल्ली।

भूमिका

भारत कृषि-प्रधान देश है। यहाँ की पैदावार पर न केवल इसी देश का वरन संसार के कई देशों का जीवन निर्भर है। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष मे फी सदी ७३ किसान हैं। ये देश के विशेष अङ्ग हैं। इनकी उन्नति पर देश की उन्नति का दारोमदार है। जब तक अज्ञान और दरिद्रता के कीचड़ मे फँसे हुए इन करोड़ों किसानो का उद्धार न होगा, तब तक देश की वास्तविक उन्नति नहीं सकती। इन भाइयो की उन्नति के लिये हमे कुछ विधायक काम करने की आवश्यकता है। हमारे द्वारा प्रकाशित होने वाली "कृषि-ग्रंथमाला" का आयोजन इसी दिशा मे एक प्रयत्न है। हम देश के प्राणाधार इन भाइयों की सेवा करने के उद्देश को लिये हुए कर्मक्षेत्र मे उतर रहे हैं। हम चाहते हैं कि हमारे किसान भाइयों की दरिद्रता दूर हो-उनमें ज्ञान का प्रकाश चमके-अन्य मनुष्यों की तरह जीवन के सुखोपभोग के वे भी अधिकारी बनें-उनमे मनुष्यत्व का विकास हो-संसार मे चमकने वाले नये प्रकाश मे उनके घरों का अन्धकार दूर हो-उन्हें अपनी कठिन कमाई का फल मिले —वे अपनी खेती की उपज अधिक से अधिक बढ़ा सकें -अपने पशुओं को नस्ल सुधार सकें-मनुष्य की तरह रहने सरीखी उनकी परिस्थिति हो जाय।

हम अपने "कृषि-ग्रन्थमाला" में इसी प्रकार के महत्वपूर्ण

और उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशित करना चाहते हैं जिनसे किसानों की दशा के सुधार में कुछ व्यवहारिक सहायता मिल सके।

भारतीय किसानों की उन्नति के कई पहलू हैं। हमें हर्ष है कि हमारे देश हितैषियों का ध्यान देश के जीवन स्वरूप इन दीन हीन भाइयों की ओर आकर्षित होने लगा है। पर अधिकांश रूप से अभी तक वह प्रयत्न "भावनाओं" तक ही परिमित है। हम भावनावाद (Sentimentalism) के विरोधी नहीं। राष्ट्र के जीवन में वह भी एक आवश्यक पदार्थ है। पर जब तक 'भावनावाद' के साथ 'व्यवहारवाद' का मधुर सम्मेलन नहीं होता तब तक देश की वास्तविक उन्नति नहीं हो सकती। राष्ट्र की भावनाओं के विकास के साथ साथ उसके सामने कुछ ऐसा विधायक कार्य-क्रम (Constructive Programme) भी होना चाहिये जिससे लोगों की स्थिति में वास्तविक सुधार हो; गरीबी और अज्ञान के पंजे से उनकी मुक्ति हो। पश्चिमीय देशों की उन्नति का इतिहास 'भावनाद' और 'व्यवहारवाद' के मधुर सम्मेलन का इतिहास है। दूसरी बात यह है कि आदर्श और व्यवहार में बहुत ही अधिक दूर का अन्तर नहीं होना चाहिये। वैसे तो आदर्श व्यवहार से हमेशा दूर रहेगा। पर यह दूरी एक नियमित सीमा में होनी चाहिये। जिस राष्ट्र के आदर्शवाद और व्यवहारवाद में निकट का सम्बन्ध है वह कम से कम सांसारिक उन्नति में तो आगे बढ़ ही जाता है। जहाँ मनुष्य को संसार की वास्तविक स्थिति से काम पड़ता है, वहाँ केवल 'स्वप्नवादी' होने से काम नहीं चल सकता।

उसे पद पद पर व्यवहारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उन्हें सुलझाने के लिये दूरदर्शिता, परिणाम-दर्शिता, योग्य समय पर योग्य कार्य करने की तत्परता तथा मानवी प्रकृति में होने वाली गति-विधि के सूक्ष्म अवलोकन की आवश्यकता होती है। संसार में जितने सफल राजनीतिज्ञ हुए हैं, उनके जीवन मे आप उपरोक्त गुण अवश्य देखेंगे। वे राष्ट्र की नाड़ी को बड़ी अच्छी तरह पहचानने वाले थे। समय की आवश्यकता को पहचानना मुत्सद्दियों के विशेष गुणों में से एक है।

भारतवर्ष की सामयिक अवस्था को सुधारने के लिये कुछ ऐसे कार्यक्रम की भी अत्यन्त आवश्यकता है जिससे देश का प्रत्यक्ष लाभ हो। हम इसी पवित्र उद्देश्य को सामने रखकर "कृषि ग्रन्थमाला" का प्रारम्भ कर रहे हैं। यह "सुलभ कृषिशास्त्र" उसी ग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प है। यह ग्रन्थ पढ़े लिखे किसानो तथा कृषक-विद्यार्थियों के लिये लिखा गया है यह ग्रन्थ किस कोटि का है, यह बात जाँचने का अधिकार पाठकों को है। हम सिर्फ इतना कहना चाहते हैं कि यह ग्रन्थ हमारे कई वर्षों के परिश्रम का फल है। हमने इसमें एक दो नही सैकड़ो ग्रन्थों और विविध प्रान्तों के कृषि-विभाग द्वारा प्रकाशित पुस्तिकाओं और रिपोर्टों से सामग्री जमा करने का प्रयत्न किया है। साथ ही हमने अपने अनुभवों को भी पाठक के सामने रखा है। कृषि-शास्त्र एक व्यवहारिक विद्या है। इसमें केवल किताबी ज्ञान से काम नहीं चलता। इसके लिये किताबी ज्ञान के साथ साथ अनुभव भी

चाहिये। हमने इन्दौर प्लेन्ट रिसर्च इन्स्टिट्यूट के भूतपूर्व डाइरेक्टर मि० हॉवर्ड से इस सम्बन्ध में कुछ व्यवहारिक प्रकाश प्राप्त किया है। मि० हॉवर्ड कृषि-शास्त्र के अपूर्व विद्वान हैं। मैंने उनके कृषि सम्बन्धी ज्ञान को बहुत गहरा पाया। उन्होंने कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ और सैकड़ों पुस्तिकाएँ लिखी हैं। उनके द्वारा स्थापित इन्दौर का "प्लेन्ट रिसर्च इन्स्टिट्यूट' अपने ढङ्ग की अपूर्व संस्था है। वहाँ कृषिशास्त्र सम्बन्धी बड़े-बड़े अन्वेषण हो रहे हैं। वहां के विशाल पुस्तकालय का हमने उपयोग किया है। साथ ही मि० हॉवर्ड के विद्वान सहायक श्रीयुत सक्सेना साहब ने भी हमें इस सम्बन्ध में अच्छी सहायता दी है।

हमारा ख्याल है कृषि की ओर जनता का ध्यान अधिक रूप से आकर्षित हो रहा है। कोई चार साल के पहले इन्दौर के सुयोग्य प्राइम मिनिस्टर श्रीमान वापनासाहब की कृपा से मैंने "किसान" नामक मासिक पत्र का आरम्भ किया था। इस पत्र का बहुत अच्छा सत्कार हुआ। यहां तक कि स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी ने उसे भारतीय साहित्य का अपूर्व आयोजन कहा और उसके बहु-प्रचार की आवश्यकता बतलाई। हिन्दी के प्रायः सब प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्रों ने उसकी बड़ी प्रशंसा की। देश के कई प्रसिद्ध कृषि-विद्या-विशारदों ने उसे इस विषय के साहित्य में सबसे अच्छा पत्र कहा। बिना विज्ञापन के-बिना किसी प्रकारके यत्न के—भारत के सब प्रान्तोंमें उसकी मांग आती रही। हिन्दी के कई पत्र उसके लेख उद्धृत करते रहे। इससे मेरा उत्साह बढ़ा और साथ ही मुझे

यह भी मालूम हुआ कि देश कृषि सम्बन्धी साहित्य की आवश्यकता को महसूस कर रहा है। इसी लिये मैंने इस "ग्रन्थमाला" का आयोजन किया है।

"सुलभ कृषि-शास्त्र" को मैंने; जहाँ तक बन पड़ा है, अत्यन्त सरल भाषा में लिखने का प्रयत्न किया है। बड़े बड़े अनुभवी और प्रसिद्ध प्रसिद्ध कृषि-शास्त्र-विशारदों के मत भी जहाँ तहाँ उद्धृत किये हैं। जहाँ एक विषय पर दो कृषि-शास्त्र-विशारदों के मत भेद हुए हैं वहाँ मैंने अपनी बुद्धि और अनुभव के उपयोग से जिनका मत अधिक लाभकारक जचा है, उसका समर्थन किया है। प्रान्त की परिस्थिति पर भी विशेष ध्यान देने का यत्न किया गया है।

मैं समझता हूँ कि अभी तक न केवल हिन्दी ही में वरन किसी भी देशी भाषा में इस विषय पर इतना विस्तृत और अन्वेषणपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ। आपको इस ग्रन्थ में सकड़ों ग्रन्थों के निचोड के साथ साथ लेखक का अनुभव भी प्राप्त होगा। दूसरा भाग भी तैयार हो रहा है और वह भी शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

हमने इस ग्रन्थ को साधारण पाठकों और विद्यार्थियों के लिये उपयोगी बनाने का भरसक यत्न किया है। अगर इससे पाठकों का कुछ लाभ हुआ तो मैं अपने प्रयत्न को सफल समझूँगा।

मैंने इस ग्रन्थ के लिखने में इन्दौर प्लेन्ट रिसर्च-इन्स्टीट्यूट के भूतपूर्व डायरेक्टर मि० हॉवर्ड, बम्बई कृषि विभाग के भूतपूर्व

डायरेक्टर डाक्टर मेन, नागपुर कृषि कॉलेज के प्रिन्सिपाल मि० एलन तथा और भी कई कृषि-विद्या-विशारदों के ग्रन्थों से बड़ी सहायता ली है। हैदराबाद के कृषि-विभाग के भूतपूर्व डायरेक्टर मि० जॉन केनी की Intensive Farming in India से भी मुझे सहायता मिली है। मध्य-प्रान्त, बम्बई, यू० पी०, पंजाब तथा मद्रास आदि प्रान्तों के कृषि विभाग द्वारा प्रकाशित सैकड़ों पुस्तक पुस्तिकाओं से भी मैंने बहुत प्रकाश ग्रहण किया है। इंग्लैण्ड और अमेरिका में छपे हुए कुछ ग्रन्थ भी मेरे सहायक हुए हैं। गुना के सुभेसाहब श्रीयुत रामप्रसाद जी, श्री शङ्करराव जी जोशी, प्रो० तजशङ्कर कोचक तथा श्रीयुत दुर्गाप्रसादसिंह जी की हिन्दी पुस्तकों से भी मुझे सहायता मिली है। मैं इन सब सज्जनों का कृतज्ञ हूँ।

इसके सिवा हलदी की खेती, मक्का की खेती नामक लेख अपने पत्र "किसान" से उद्धृत किये हैं। इनमें पहला लेख श्रीयुत कृष्णरावजी दुबे कसरावद, दूसरा मि० बी० एल० जोशी का है। चावल की खेती के बीच का एक अंश मैंने जबलपुर के कृषि विभाग के डेप्युटी डायरेक्टर श्रीयुत लक्ष्मीनारायण जी के "किसान" में प्रकाशित एक लेख से लिया है।

—सुखसम्पत्तिराय भण्डारी

— —

विषय-सूची

—:०*०:—

सुलभ कृषि शास्त्र

विद्यार्थियो ! तुम जानते हो कि खेती हिन्दुस्थान का सब से बड़ा उद्योग है। तुम्हारे इस देश के प्रति सैंकड़ा ८० मनुष्य खेती या उससे सम्बन्ध रखने वाले दूसरे उद्योगो पर अपना गुजर करते हैं। ईसवी सन १९२१ की मर्दुम शुमारी मे हिन्दुस्थान की कुल जन-संख्या ३१ करोड़ ६० लाख थी। इन में २२ करोड़ ४० लाख मनुष्य सिर्फ खेती ही के काम पर लगे हुए थे। इसके सिवाय और भी बहुत से धंधे हैं, जिनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष खेती से सम्बन्ध है। इन मे भी लाखो आदमी लगे हुए हैं। इस पर से तुम समझ सकते हो कि तुम्हारे इस प्यारे देश हिन्दुस्थान के लिए खेती का कितना बड़ा महत्व है। पर दुःख इस बात का है कि खेती की तरक्की पर पढ़े-लिखे आदमियों का बराबर ध्यान नहीं है। अगर हमारे पढ़े-लिखे भाई खेती की उन्नति पर ध्यान देने लगें तो वे अपने ग़रीब देश की बहुत सेवा कर सकते हैं। हमारे किसान भाई, जिन पर हमारे देश की उन्नति का दारोमदार है, अज्ञान के अँधेरे

में पड़े हुए हैं। वे खेती करने के उत्तम तरीक़ों से जानकार नहीं हैं। प्यारे बालको! तुम देश के भावी नागरिक हो। तुम्हारे पर देश का भविष्य निर्भर करता है। अगर तुम पढ़-लिख कर नौकरी और दासता के मोह जाल में न पड़, खेती करने के उत्तम तरीक़ों से जानकार हो जाओगे तो अपना और अपने प्यारे देश का बहुत कुछ भला कर सकोगे। अब हम तुम्हे खेती से सम्बन्ध रखने वाली कई ऐसी उपयोगी बाते बतलाते हैं, जिन्हें काम में लाने से तुम अपनी खेती की बहुत तरक्की कर सकते हो और अपने देश की माली हालत (आर्थिक स्थिति) सुधार सकते हो।

ज़मीन की जातियाँ

तुम जानते हो कि खेती में सबसे पहले ज़मीन की जाति और उसके सुधार पर ध्यान देने की ज़रूरत है। ज़मीन, जिसमे खेती की जाती है, सात तरह की होती है।

(१) रेतीली ज़मीन—जिस ज़मीन में ३ भाग रेत और चौथे भाग में अन्य वस्तुये होती हैं या जिस भूमि मे १० से २० सैकड़ा तक चिकनी मिट्टी का भाग होता है उसे रेतीली (बलुई) भूमि कहते हैं।

(२) मटियार दुम्मट—इसे चिकनी भूमि भी कहते हैं। जिस भूमि में तीन भाग चिकनी मिट्टी और एक भाग अन्य वस्तुये हो उसे चिकनी भूमि या मटियार दुम्मट कहते हैं।

(३) दुम्मट—जिस भूमि में आधो रेत और आधो या आधी से ज्यादा चिकनी मिट्टी हो उसे दुम्मट कहते हैं।

(४) रेतीली दुम्मट (इसे बलुई दुम्मट भी कहते हैं)—जिस भूमि में आधी से अधिक रेत और २० से ४० प्रति सैकड़ा तक चिकनी मिट्टी हो उसे रेतीली दुम्मट कहते हैं।

(५) मटियार (जिसे डाकर और कहीं-कहीं मटियार दुम्मट भी कहते हैं)—जिस भूमि में ८५ से ९५ प्रति सैकड़ा तक चिकनी मिट्टी हो और बाक़ी रेत हो उसे मटियार दुम्मट, डाकर या चिकनी दुम्मट कहते हैं।

(६) बंजर—जो भूमि कभी जोती और बोई नहीं जाती उसे बंजर कहते हैं। ऐसी जमीन बहुत कड़ी होती है। नियम और मेहनत से काम करने पर यह भी खेती के काम की हो सकती है। इसको पड़ती-कदीम भी बोलते हैं।

(७) ऊसर—इस भूमि में कोई चीज़ उत्पन्न नहीं हो सकती। इस में खार का भाग अधिक रहता है। साधारणतया —इस जमीन में घास भी पैदा नहीं हो सकती। अगर बहुत अधिक मेहनत की जावे तो यह जमीन भी खेती के लायक़ हो सकती है।

इन जमीनों की परीक्षा और उन्हें उपजाऊ बनाने के तरीक़ों पर किसी अगले अध्याय में प्रकाश डाला जायगा। इसके पहले फ़सल को दिये जाने वाले खादों पर कुछ लिखना आवश्यक मालूम होता है।

विविध प्रकार के खाद

जैसे मनुष्य के लिए भोजन की आवश्यकता होती है, वैसे ही फ़सल के लिए खाद की आवश्यकता होती है। दूसरे शब्दों में यों कह लीजिये कि खेत में बोई हुई फ़सल को, उसकी बाढ़ के लिए, खाद की आवश्यकता है। उसे इस खाद का कुछ भाग तो वायुमण्डल से मिलता है, और शेष भाग भूमि में रहे हुए खारों से मिलता है। यदि हम भूमि को कुछ न देते हुए हर साल उस में से फ़सलें लेते जायेंगे तो वह ज़मीन कमज़ोर होती जायगी। उसकी उपज कम होने लगेगी। यदि हम अच्छी फ़सलें पैदा करना चाहते हैं तो हमें चाहिए कि हम अपनी ज़मीन में अच्छा खाद डालकर उसकी उपजाऊ शक्ति को बढ़ाते रहें। अच्छा खाद देने से कई प्रकार के लाभ होते हैं। पहला लाभ यह है कि पैदावार अच्छी होती है, दूसरा यह कि उससे अच्छा बीज तैयार होता है और तीसरा यह कि अच्छा पौष्टिक अनाज पैदा होता है। हाल ही में कोयम्बटूर के सरकारी कृषि विद्या विशारद बाबू विश्वनाथ जी एफ० आय० सी० और उनके सहायक मि० सूर्यनारायणजी बी०एस०सी० ने खाद के द्वारा फसल में जो परिवर्तन

होते हैं, उनपर एक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में खाद देने के अलग-अलग तरीक़े, उनके परिमाण तथा समय आदि का जिक्र है। हम यहाँ उसी पुस्तक के आधार पर खाद के फ़ायदों का थोड़े मे वर्णन करते हैं।

(१) खाद का असर बीज में मौजूद रहता है और खाद दी हुई फ़सल के बीज बोने से दूसरे वर्ष अच्छी पैदावार होती है।

(२) खाद दी हुई फ़सल का बीज बोने से मामूली उपज की ज़मीन में भी अच्छी पदावार होती है।

(३) गोबर का खाद दी हुई फ़सल का बीज बनावटी खाद की फसल के बीज से कई गुना अच्छा होता है।

(४) बनावटी खाद से पैदा की हुई फसल का बीज बिना खाद की फ़सल से अच्छा होता है।

(५) गड्ढे मे तैयार किया हुआ गोबर का सड़ा खाद ताजा गोबर के खाद से ज्यादा अच्छा रहता है।

(६) सूखे पत्ते व दूसरी बिना काम की वनस्पति व फ़सल के डंठलों को मिलाकर बनाया हुआ (कम्पोस्ट) खाद भी गोबर के खाद के बराबर ही लाभकारक होता है।

(७) सड़ाये हुए गोबर के खाद का पानी या बची हुई चीजें भी ऊपर वाले खाद के बराबर ही लाभकारी होती हैं।

(८) सड़ाये हुए गोबर के खाद मे से निकाले हुए पानी में मामूली खाद के पानी की अपेक्षा विशेष खाद्य-द्रव्य रहते हैं।

(९) शराब निकालते वक्त ऊपर जो झाग आजाते हैं उनको कुछ मात्रा में खाद के साथ मिलादेने से फ़सल पर अच्छा असर पड़ता है और पैदावार लगभग ड्योढ़ी हो जाती है। अगर बनावटी खाद या फासफॉरिक एसिड में भी ये झाग मिलाकर जमीन में खाद दिया जावे तो पैदावार अच्छी होती है।

(१०) खाद देने से केवल पैदावार ही अच्छी नहीं होती पर जमीन की हालत भी सुधरती है और पौधों की बाढ़ अच्छी होने लगती है। इस प्रकार के पौधे और उसके बीज से पशुओं तथा दूसरे वर्ष के पौधों को पुष्टिकारक खाद्य द्रव्य मिलते हैं।

(११) खाद दी हुई फसल का घास खिलाने से पशुओं में ज्यादा ताक़त बढ़ती है।

(१२) केवल बनावटी खाद देने से अनाज की उपयोगिता नहीं बढ़ती, इसलिये बनावटी खाद के साथ दूसरा खाद (जैसे कम्पोस्ट, गोबर का खाद, मैला आदि) भी जमीन में डालना चाहिये।

(१३) यदि किसी अनाज के गुण में तरक्की करना हो तो उसको अच्छा खाद देना चाहिये। जमीन में खाद न डाला गया तो फ़सल के गुणों में धीरे धीरे कमी आती जायगी।

अब हम जुदे-जुदे खादों और उनकी उपयोगिता के विषय पर कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं।

गोबर का खाद

हिन्दुस्थान मे गोबर का खाद बडी सुगमता से मिल सकता है। यह बडा ही बहुमूल्य खाद है। अगर हमारे किसान भाई इसको योग्य रीति से काम मे लावे तो वे अपनी फसल की बहुत तरक्की कर सकते हैं। पर कितने अफसोस की बात है कि यहाँ गोबर जैसे बहुमूल्य पदार्थ के, जलाने के लिए, कंडे बनाये जाते हैं। हम समझते हैं कि हिन्दुस्थान मे जितना गोबर कण्डों के बनाने में खर्च होता है, उतना खाद के काम में नहीं होता। बड़े बडे कृषि-विद्या विशारद, लोगों की इस अज्ञानता पर, आँसू बरसाते हैं। दूसरी बात यह है कि हमारे यहाँ गोबर के खाद का जिस ढङ्ग से उपयोग किया जाता है वह भी ठीक नहीं है। हमारे किसान भाई गोबर और कूड़ा-करकट के ढेर को खुली जगह में डाल देते हैं जिससे उस पर बरसाती पानी और सूर्य की गर्मी का असर पड़ता रहता है और इससे उसके गुणों मे बहुत कमी आजाती है। किसान लोग इस प्रकार के गोबर को खाद के काम मे लाते हैं और समझने लगते हैं कि हम ने जमीन मे काफी खाद डाल दिया। पर इस खाद के डालने से विशेष फायदा नहीं होता। क्योंकि जिन तत्त्वों से जमीन की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है, वे इस में नाम मात्र को रह जाते है। इस लिये हमें ऐसा उपाय करना चाहिए जिस मे इस अमूल्य खाद के वे तत्त्व नष्ट न हो जो फ़सल को फायदा पहुँचाने वाले होते हैं। इस खाद मे नाइट्रोजन

फास्फशरिक एसिड, पोटाश आदि सब चीजे मौजूद रहती हैं, जो कि पौधों के लिये सबसे अच्छी भोजन-सामग्री है। इस खाद से केवल पौधो ही का फ़ायदा नहीं पहुँचता है, वरन् जमीन की भी तरक्की होती है। इस खाद के डालने से मिट्टी के बड़े-बड़े ढेले नरम हो जाते हैं और रेतीली जमीन मे पानी सोखने की ताक़त आजाती है। इसके सिवाय इससे मिट्टी के परमाणु आपस में मिल जाते हैं। पाठक जानते हैं कि खाद से पौधों को जो जो सामग्रियाँ मिलती है उनमे नाइट्रोजन मुख्य है। हिन्दुस्थान की भूमि के लिये तो इसकी बड़ी ही आवश्यकता है। क्योंकि उसमे इसकी प्रायः कमी रहती है। इसके मिल जाने से यहाँ की जमीन की उपजाऊ शक्ति बहुत बढ़ जाती है और फ़सल भी ज्यादा पैदा होने लगती है। गोबर को यदि विधि पूर्वक तैयार किया जावे तो वह अत्यन्त लाभदायक हो सकता है। इन्दौर प्लेन्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट नामक सुप्रसिद्ध कृषि-संस्था के भूतपूर्व विद्वान डायरेक्टर मि० ए० सी० हावर्ड ने ढोरो के गोबर, पेशाब तथा कूड़ा-करकट से खाद बनाने का बड़ा ही अच्छा तरकीब लिखी है। हम आपके लेख का सारांश सरल और सुबोध भाषा मे नीचे प्रकट करते है।

"हिन्दुस्थान मे खाद की कमी को पूरा करने की ओर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है, हमारे किसान भाइयो को चाहिये कि जिन-जिन वस्तुओ से खाद बनता है, उनका अच्छे से अच्छा उपयोग करना सीखे। हमारी कृषि-संस्था मे ऐसा किया जाता है और उसके बहुत ही अच्छे नतीजे निकले हैं। क्या ही

अच्छा हो अगर हमारे किसान भाई भी इनसे फ़ायदा उठावें"।

"यह बतलाने की जरूरत नहीं कि राजपूताने और मध्य भारत में अधिकांश खाद गाय, बैल और भेसों के गोबर से बनता है। यह जानवर खेती बाड़ी और दूध के लिये पाले जाते हैं। इन जानवरो से एक और उपयोगी काम लिया जा सकता है वह यह कि इन जानवरो को हमेशा ६ इञ्च गहरी भुरभुरी और मुलायम मिट्टी पर सोने तथा आराम करने दिया जाय। यह मिट्टी जानवरों के तमाम पेशाब को पीलेगी। इसको या तो खेत मे ऐसे ही डाल दिया जाय या कम्पोस्ट खाद बनाने मे इसका उपयोग किया जाय। कम्पोस्ट खाद बनाने की रीति हम आगे चलकर लिखेंगे। चीन और जापान के उद्योगी किसान अपने जानवरो को इस उपयोग मे लाते हैं। भारतीय किसानों को भी चाहिये कि वे इस सीधी और लाभदायक तरकीब से फ़ायदा उठावें।"

कम्पोस्ट खाद।

प्यारे बालको! अब हम तुम्हारे सुभीते के लिये कम्पोस्ट खाद बनाने की सीधी और सरल तरकीब लिखते हैं। यह खाद बहुत ही लाभदायक होता है। साधारण खाद की अपेक्षा फ़सल की पैदावार पर इसका बहुत अच्छा असर गिरता है। अगर तुम्हे खेती करने का मौका मिले तो तुम इस प्रकार के खाद को जरूर काम मे लाना। इससे तुम्हे बड़ा लाभ होगा।

बालको ! कम्पोस्ट खाद तैयार करने के लिये एक ३० फीट लम्बा, १४ फीट चौडा और ३॥ फीट गहरा खड्ढा खोदो। उसकी दिवालें ढालू बनाओ। इसके बाद उसमें नीचे लिखी चीजें विधि अनुसार डालकर खाद तैयार करो

(१) गाय, बैल तथा अन्य ढोरों के बाँधने के स्थान की पशाब से भीगी हुई मिट्टी।

(२) हर प्रकार का घास-फूस, पत्ते, कूड़ा-कचरा तथा कपास, तुअर, गन्ना की निकम्मी संटियाँ आदि। इन चीजों को काम में लाने के पहले खूब बारीक कर जानवरों के नीचे बिछा देना चाहिये। जिससे उसमें गोबर, पेशाब आदि मिल जावे। इसे बिछाली भी कहते हैं। १० भाग बिछाली के साथ १ भाग पेशाब वाली या मामूली मिट्टी मिला कर तैयार किये हुए गड्ढे में डालते रहो। जितनी राख मिल सके वह भी गड्ढे में डालते रहो। जब गड्ढा आधा भर जावे तब उसमें पानी देदो। इसके बाद तुम देखोगे कि इस गड्ढे मे डाले हुए खाद में एक प्रकार का जोश या खमीर उठने लगेगा। इस तरह गड्ढे को सारा भर कर ऊपर से लीप दो। तुम देखोगे के इसमे ५ ६ मास मे बहुत ही अच्छा खाद बन जावेगा। हाँ, यहाँ इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि इस बीच मे गड्ढे में दो तीन बार और पानी देदेना चाहिये। क्योंकि पानी न देने से अगर गड्ढे की वस्तुएँ सूख जावेगी तो वे सड नहीं सकेगी, और इससे अच्छा खाद तैयार न होसकेगा। ५, ६ मास के बाद इसका रंग काले

चूरे के समान होजायगा। इन्दौर प्लेण्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट नामक कृषि-संस्था के भूतपूर्व डायरेक्टर मि० हावर्ड ने कपास, गेहूँ, मूंगफली, गन्ना आदि फसलों पर इस खाद का उपयोग किया है और उन्हे इसमे बड़ी ही सफलता प्राप्त हुई है। वे अपने ग्रन्थों मे तथा अपने लेखो मे इस खाद की बडे जोरों मे सिफारिश करते हैं। यह खाद बहुत सस्ता बन सकता है और हमारे भारत के गरीब किसानो के लिये तो यह बहुमूल्य सम्पत्ति है। अगर हमारे देश के लोगो का ध्यान इस ओर आकर्षित हो और वे ढोरो के मल-मूत्र तथा अन्य निकम्मे पदार्थों मे इस प्रकार का खाद तैयार कर काम मे लावें तो देश की आर्थिक अवस्था को बहुत कुछ सुधार सकते है।

गोबर के खाद पर कानपुर कृषि-कालेज प्रिन्सिपल मि० सुबय्या के विचार

कानपुर कृषि-कालेज के सुप्रसिद्ध प्रिन्सिपल मि० सुबय्या ने ढोरो के गोबर और मल मूत्र के खाद के विषय मे एक बड़ा ही मननीय लेख लिखा है। उसमे इस विषय के कई पहलुओं पर अच्छा प्रकाश डाला है। हम अपने बालको के लिये इसे उपयोगी समझकर इसके एक अंश विशेष का अनुवाद नीचे देते हैं।

'यो तो सभी देशो में गोबर का खाद थोड़ी या बहुत तादाद में काम मे लाया जाता है पर हिन्दुस्थान में तो यह खाद ही

सबसे मुख्य समझा जाता है। इस खाद में नाइट्रोजन, फास-फोरिक एसिड और पोटाश आदि ऐसे तत्व रहते हैं जो पौधों के लिये बड़ी ही अच्छी भोजन सामग्री का काम देते हैं। दूसरी बात यह है कि इस खाद से केवल पौधों को ही फायदा नहीं पहुँचता है वरन् जमीन की भी तरक्की होती है। इस खाद के डालने से मिट्टी के बड़े-बड़े ढेले नरम हो जाते हैं और रेतीली जमीन में पानी सोखने की ताक़त आ जाती है। इसके सिवाय इससे मिट्टी के परमाणु आपस में मिल जाते हैं। इसके साथ ही यह भी बात ध्यान में रखनी चाहिये कि खाद से जो जो सामग्रियाँ पौधों को मिलती हैं उन सब में नाइट्रोजन मुख्य है। खासकर हिन्दुस्थान की भूमि के लिये तो इसकी बड़ी ही जरूरत है। क्योंकि इसमें इस का बड़ा ही कमी है। इसके मिल जाने से यहाँ की जमीन की उपज शक्ति बहुत बढ़ जाती है और फ़सल तिगुनी चौगुनी तक पैदा होने लगती है। यह नाइट्रोजन बड़ा महँगा होता है और मुश्किल के साथ बनता है। इसलिये हर एक किसान का यह कर्तव्य है कि वह ज्यादा से ज्यादा तादाद में इसे इकट्ठा कर अपनी फ़सल और जमीन की तरक्की करे। ढोरों के गोबर और उनके पेशाब में यह पदार्थ रहता है। पर सभी ढोरों के मल मूत्र में यह एक तादाद में नहीं रहता। ढोरों के गोबर या उन के पेशाब में नाइट्रोजन का कम या अधिक होना नीचे लिखी हुई तीन बातों पर निर्भर है।

(१) पशु की जाति और उसकी तन्दुरुस्ती पर।

(२) पशु की खाने पीने की सामग्री तथा उस सामग्री के वज़न पर।

(३) खाद का इकट्ठा करने तथा उसके हिफ़ाज़त के तरीक़ों पर।

भेड़ या बकरी की मिंगनियां घोड़े की लीद से अधिक कट्टी रहती है। इससे भेड़ या बकरी के खाद मे घोड़े की लीद से अधिक नाइट्रोजन रहता है। इससे कुछ कम गायो के गोबर में और उससे कुछ कम भैसो के गोबर मे नाइट्रोजन का अँश रहता है।

नीचे लिखे हुए अँको से मालूम होगा कि हर एक जाति के पशुओ के गोबर और पेशाब मे कितना अँश नाइट्रोजन रहता है।

	गोबर	मूत्र
भेड़	०७	१४
घोड़ा	.०५	१२
गाय	.०२	.०९

उक्त अङ्को से यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि पशु के गोबर की अपेक्षा उसके मूत्र मे नाईट्रोजन अधिक तादाद मे रहता है। इसी तरह बछड़ो के बनिस्बत ज़्यादा उमर वाले जानवरो के गोबर व पेशाब मे नाइट्रोजन का ज़्यादा हिस्सा रहता है। दूध देनेवाली गाय या भैस की अपेक्षा बाखड़ी गाय या भैस के मल मूत्र मे अधिक नाइट्रोजन मिलता है।

अनुभव से यह भी मालूम हुआ है कि पशु को जितना

अच्छा खाद्य (भोजन) दिया जायगा, उतना ही अधिक उसके गोबर मे नाइट्रोजन का हिस्सा रहेगा। यहाँ यह बात भी ध्यान मे रखनी चाहिये कि अलग अलग तरह के खाद्य मे नाइट्रोजन की अलग अलग मात्रा रहती है इसलिये हमे पशुओ के खाद्य पर विचार करने की खास जरूरत है। हिन्दुस्थान मे पशुओ को खास तौर पर दो प्रकार का खाद्य दिया जाता है। एक तो चारा (कड़बी घास आदि) और दूसरा बाँटा जैसे बिनौला, ज्वार, चने, अरहर, मोठ, खली आदि। इनमे मे पहिला प्रकार के खाद्य मे प्रति १००० पौंड पीछे ४ पौंड नाइट्रोजन रहता है और दूसरे मे ३५ से लगाकर ५० पौंड तक। इससे यह साफ मालूम होता है कि दूसरी तरह के खाद्य मे यानी बाँटे मे पहिले की अपेक्षा दस या बारह गुना नाइट्रोजन ज्यादा मिलता है। इसके साथ ही यह बात भी न भूलना चाहिये कि बाँटे मे मवेशी की तन्दुरुस्ती भी बढ़ती है।

भारत सरकार के कृषि-रसायन शास्त्री डाक्टर लेदर ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि पशुओ को जितना ज्यादा बाँटा दिया जाता है उतना ही ज्यादा नाइट्रोजन उनके पेशाब व गोबर मे रहता है। प्रयोग के लिये उक्त डॉक्टर ने गोबर के १३ नमूने लिये। उन मे से छ नमूने बाँटा खानेवाले और सात नमूने बिना बाँटा खानेवाले पशुओ के थे। इन नमूनो को जाँच करने पर पहले नमूनो मे नाइट्रोजन का प्रति सैकड़ा ०५४ वाँ अंश और दूसरो मे सिर्फ ०१७ वाँ अंश मिला। इस प्रकार

दोनो मे लगभग तिगुना फर्क पड़ा। इन सब प्रयोगों से उक्त डॉक्टर महोदय ने यह दिखलाया है कि पशुओं को दिये जाने वाले बाँटे मे नाइट्रोजन की जितनी अधिक मात्रा होती है ठीक उतनी मात्रा उनके गोबर व मूत्र मे निकल आती है। यूरोप के किसानो ने इस बात को खूब अच्छी तरह समझ लिया है और इससे उन्होंने अपने ढोरों का बाँटा भी खूब अधिक बढ़ा दिया है। वे अब समझने लगे है कि जो कुछ बाँटा वे खिलाते हैं वह फिजूल नही जाता। बल्कि वह उनके पशुओ की तन्दुरुस्ती को बढ़ाते हुए उतनी ही क़ीमत का खाद तैय्यार करता है।

यह तो हुई खाद व नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाने की बात। अब इस मात्रा को खाद मे किस तरह बनाये रखना चाहिये, इस विषय की चर्चा करना आवश्यक है।

ढोरो को बाँधने की जगह मे से जितना भी गोबर और बारीक कूड़ा करकट निकले, उस सब का उम्दा खाद बन सकता है। परन्तु अफसोस है कि हमारे देश में इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया जाता और इस अनमोल पदार्थ को फिजूल जला दिया जाता है। इससे देश की जितनी आर्थिक हानि होती है वह चिन्तनीय है।

हम ऊपर कह आये हैं कि ढोरो के मूत्र मे उनके गोबर से भी अधिक नाइट्रोजन रहता है। इसलिये यह चीज भी फिजूल फेंक देने की नहीं है। लेकिन हम देखते हैं इस ओर किसानों का बिल्कुल ध्यान नही है। वे मूत्र गोबर आदि को यों ही पड़ा रहने

देते हैं, जिससे उसका नाइट्रोजन उड़ जाता है और उसकी दुर्गन्ध से ढोरों को व वहाँ रहनेवाले मनुष्यों को बड़ी तकलीफ होती है। इन सब बातो को ध्यान मे रखते हुए कानपुर-कृषि कॉलेज के प्रिंसिपल मि० बी० सुबैय्या लिखते हैं—"किसानों को चाहिये कि जहाँ तक बने वहाँ तक अपने ढोरों को खेत ही में रक्खें जिसमे उनका गोबर व पेशाब खेत ही मे पड़ता रहे। उन्हें घर के कोने मे बँधे रखने तथा उनके गोबर व मूत्र का उपयोग न करने मे बड़ा नुकसान होता है। यदि यह बात मुमकिन न हो तो जिस प्रकार युरोप व अमेरिका में ढोर रक्खे जातेहैं और उनका खाद इकट्ठा किया जाता है, उसी प्रकार का इन्तजाम यहाँ पर किसानों को भी करना चाहिये।

उपरोक्त देशो मे मवेशियों को बाँधने के दो तरीके काम में लाये जाते हैं।

एक तो वह जिसमे पशुशाला या कडक्षान को ३ या ३॥ फ़ीट गहरी खोद कर, उसको लीप करके बाद मे तली मे कुछ राख बिछा दी जाती है और उसके ऊपर कूड़ा करकट का एक हलका सा बिछौना बना दिया जाता है। इस बिछौने पर मवेशी का गोबर व पेशाब पडता है। जब प्रतिदिन सवेरा होता है तो झाडू निकालने वाला उस गोबर को कडक्षान मे चारों ओर फैला देता है और उसी पर कुछ नया कूडा करकट डालकर दूसरा बिछौना तैय्यार कर देता है। इस प्रकार उसी कडक्षान में सारा गोबर व मूत्र इकट्ठा होता रहता है। जब सारा गड्ढा भर

जाता है तो फिर ऊपरी तह से कुछ खाद को अलग निकाल लिया जाता है और बाक़ी का सारा खाद खोद खोद कर खेतों के गड्ढों मे पहुँचा दिया जाता है। इस के बाद फिर उसी प्रकार नया खाद इकट्ठा करने का काम शुरू कर दिया जाता है। इस तरह का खाद बड़ा उम्दा होता है और उसका फैलाने मे विशेष कठिनाई नहीं उठानी पड़ती। इस तरकीब से साल भर मे एक जोड़ी बैल से १५० मन खाद जमा हो सकता है।

कुछ लोगों का कथन है कि इस तरह मवेशियो को रखने से उनकी तन्दुरुस्ती में फर्क पड़ जाता है, परन्तु प्रत्यक्ष अनुभव से पता चलता है कि इस से मवेशियो की तन्दुरुस्ती पर कुछ भी बुरा असर नहीं पडता। हिन्दुस्तान के कई फार्मों मे इसी तरीके पर मवेशी बांधे जाते हैं।

दूसरी तरकीब मे गडढा खोदने की जरूरत नहीं होती और न कूड़ा कर्कट बिछाने की ही आवश्यकता होती है। यह तरकीब खास कर उन स्थानो मे बड़े काम की है, जहाँ घास बहुत महंगा मिलता है। यह तरकीब पहिली तरकीब की अपेक्षा ज्यादा आसान भी है। इसके लिये मवेशियो की कडछान का फर्श मिट्टी कूट कर कठोर बना दिया जाता है और वह कुछ ढालू रखा जाता है। उस से कुछ दूरी पर कवेलुओ की एक नाली बना दी जाती है। इस नाली के अन्त मे एक मिट्टी का घड़ा रख दिया जाता है। हम पहले कह चुके हैं कि जब कभी मवेशी कडछान मे बाँधे जाते हैं तो उनका बहुत सा मूत्र फ़िज़ूल

जाता है। परन्तु इस नाली द्वारा सब मूत्र उस घड़े में जाकर इकट्ठा हो जाता है। जब सवेरा होता है तो झाड़ू निकालनेवाला सब गोबर इकट्ठा कर लेता है और उसके साथ ही वह गीली ज़मीन की मिट्टी को भी कुछ कुछ खोद लेता है। इस मिट्टी को वह उस इकट्ठे किये हुए गोबर में मिला देता है और फिर उस मिट्टी की जगह पर सूखी मिट्टी लाकर बिछा देता है। इस तरह उस गीली मिट्टी का जिस में पेशाब का अंश मिला रहता है, गोबर के संयोग से बड़ा अच्छा खाद बन जाता है। यह खाद हर रोज़ एक बड़े गड्ढे में डाल दिया जाता है और उसी मे मूत्र का घड़ा भी खाली कर दिया जाता है। इस खाद मे जो गीली मिट्टी मिली रहती है वह बड़े काम की होती है और उसमे का नाइट्रोजन सज्जी या सोडियम नाइट्रेट का काम देता है। इस प्रकार का खाद बहुत दिनों तक पड़ा नहीं रहना चाहिये क्योंकि इस मे नाइट्रोजन के उड़ जाने का डर रहता है। इसलिये ३ या ४ चार महीने में उसका उपयोग कर लेना ज्यादा लाभदायक होता है।

खाद का गड्ढा

खाद को हिफ़ाजत के साथ इकट्ठा करने के लिये ऊपरी तरकीबों में से चाहे जो तरकीब काम में लाई जावे, पर खाद जमा करने के लिये एक गड्ढा बनाना बड़ा ज़रूरी है। कोई कोई यह कह सकते हैं कि जिस हालत मे मवेशियों की कहछान ही

मे गड्ढा खोद कर खाद जमा किया जावे, उस हालत मे अलग गड्ढा बनाने की क्या आवश्यकता है ? मगर उस हालत में भी एक बड़ा गड्ढा बनाने की बड़ी जरूरत है। क्योंकि खाद मे न केवल ढोरा का गोबर व मूत्र ही काम मे आ सकता है, वरन् आम, शीशम, नीम आदि झाड़ों के गिरे हुए पत्ते, घर का कूड़ा कर्कट, सड़ी या खराब तरकारी आदि चीजों को भी खाद के गड्ढे में डाल कर नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। इस खाद के गड्ढे को हमेशा ऊंची सतह पर बनाना चाहिये। इस का फर्श व आजू बाजू पर चूने की कलई भी कर देना चाहिये। पतझड़ ऋतु मे गिरे हुए पत्तो व मांठा के डंठलो में भी गोबर के बराबर नाइट्रोजन का अंश रहता है, अतएव मुमकिन हो तो इन्हे भी गड्ढे मे डाल देना चाहिये।

इस प्रकार हर एक किसान अपनी एक बैल जोड़ी द्वारा १५० से लगा कर ३०० मन तक खाद जमा कर सकता है।

यहां यह भी ध्यान मे रखना जरूरी है कि खाद के गड्ढे को मिट्टी से लीप देना चाहिये। ऐसा करने से उसमे का नाइट्रोजन का अंश भी न उड़ेगा व खाद भी सूखने न पायगा।

भेड़ बकरी की लेंडी (लीद) का खाद

भेड़ बकरी की लेंडी का खाद गाय बैल के गोबर के खाद से ज्यादा जोरदार होता है। यह अपना असर भी तुरन्त दिखलाता है। इसमें पौधो को मिलने वाला भोजन अधिक होता

है। इससे पौधे अच्छे फलते फूलते हैं। तरकारियां, फल फूल के पौधे तथा अन्य क़ीमती फ़सलों के लिये यह बहुत ही उपयोगी है। हरएक फल-झाड़ को पाँच सेर लेंडी के खाद का महीन चूरा उसकी जड़ें खुली कर देना चाहिये और बाद में उस खाद को मिट्टी से ढक देना चाहिये। अगर यह खाद अधिक तादाद में मिल सके तो इसे अनाज की फ़सल में भी दे सकते है।

भारतवर्ष के अधिकांश प्रान्तों में इस खाद के देने की यह रीति है कि जुते हुए खेतों में रात को भेड़ें बैठाई जाती हैं। रात भर में दो तीन बार इनकी जगह बदली जाती है। भेड़ें बैठाने के बाद शीघ्र ही खेत को हल या बखर से जोत दिया जाता है।

फी एकड़ जमीन में ज़रूरत के मुताबिक हर रोज़ २०० से ४०० तक भेड़ें लगातार दस दिन तक बैठाना चाहिये। खाद की ज़रूरत के मुताबिक भेड़ बकरियों की संख्या घटाईबढ़ाई जा सकती है।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके है फल-वृक्षों और गुलाब को इस खाद से ज्यादा फ़ायदा पहुँचता है। सब ही प्रकार की तरकारियाँ, आलू, गन्ना, जीरा, गेहूँ आदि के लिये भी यह खाद बहुत ही फ़ायदेमन्द है।

मनुष्य के विष्ठा का खाद

प्यारे बालको! परमेश्वर की सृष्टि में कोई पदार्थ निकम्मा या बेकाम नहीं है। जिन्हें हम बेकाम और निकम्मा समझते हैं

वे भी अगर उचित रूप से काम में लाये जावें तो बहुमूल्य और लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं। मनुष्य का विष्ठा कितना घृणित और निकम्मा माना जाता है पर क्या तुम यह जानते हो कि इसका कितना बढ़िया खाद तय्यार होता है। इसका उपयोग करने से खेती में बड़ी तरक्की हो सकती है। हम इस लेख में आगे चलकर मनुष्य के विष्ठा के महत्त्व, गुण और उसके व्यवहारिक उपयोग पर दो शब्द लिखना चाहते हैं।

अमेरिका के सुप्रसिद्ध कृषि-विद्या विशारद केन्डोल साहब ने अपने कृषि शास्त्र सम्बन्धी भाषण में कहा था।

"पेशाब और मनुष्य के विष्ठा को व्यर्थ फेंकने से रोम राज्य का आर्थिक नाश हुआ। उसकी खेती बर्बाद हो गई तथा समृद्धिशाली रोम राज्य के किसान शोचनीय स्थिति को प्राप्त हो गये! रोम शहर की तेज़ी फीकी पड़ गई! इसके बाद सिसिली, सार्डिनिया और अफ्रीका भी विष्ठा के खाद का दुरुपयोग करने से पतन अवस्था को पहुँच गये। ये देश अपना बड़प्पन अब तक प्राप्त न कर सके। इसके विपरीत चीन ने इस अमूल्य वस्तु का महत्व समझा। वह हज़ारों वर्षों से बराबर इसकी रक्षा और सदुपयोग करता आ रहा है। यही कारण है कि आज चीन की आबादी दिन-दिन बढ़ती जा रही है। संसार के $\frac{1}{3}$ लोग चीन के उत्पन्न किये हुए अनाज पर अपना गुज़र बसर करते हैं। चीन की खेती ने इतनी तरक्की की है कि विज्ञान शिरोमणि अमेरिका भी उसके सामने सिर झुकाता है। जापान की भी यही

हालत है। वह भी मनुष्य के विष्ठा और मूत्र को व्यर्थ नहीं जाने देता। उनका खाद के बतौर उपयोग करता है! इसी से खेती मे उसने आश्चर्यकारक उन्नति कर ली है।" क्रेन्डोल साहब के उक्त विचारों में अतिशयोक्ति हो सकती है, पर उनमे सत्य का बहुत कुछ अंश है। इसमें कोई सन्देह नही कि जो देश मनुष्य के मल-मूत्र जैसे पदार्थो को व्यर्थ जाने देता है तथा उनका खाद के बतौर उपयोग कर खेती की तरक्की नहीं करता वह अभागा है। वह खेती के एक बड़े फायदे से हाथ धो बैठता है।

मनुष्य का विष्ठा खेती के लिये सचमुच अमूल्य खाद है। इसीलिए कोई कोई सज्जन इसे सुनहरी खाद (Golden manure) भी कहते है। अमेरिका के प्रसिद्ध कृषि विद्या-विशारद लीबीग महोदय तो इसे खादो का राजा (king of manures) कहते हैं। वे तो इस पर बतरह मोहित हैं। उनका तो विश्वास है कि अगर कोई देश इसका उचित और समयानुकूल उपयोग करे तो वहाँ दरिद्रता का ठहरना मुश्किल हो जावे। जमीन की पैदायशी ताकत बहुत बढ जाय। जमीन कभी गरीब न हो। वह फसल को बराबर रस देती रहे।

पाठक जानते हैं कि मनुष्य जो कुछ भोजन करता है उसका बहुत अंश उसके शरीर के पोषणादि मे लग जाता है और बाकी बचा हुआ अंश मैला बन कर बाहर निकल आता है। अतएव इस खाद का बहुत कुछ गुण मनुष्यों के भोजन पर निर्भर करता है। जिस

देश के लोग उत्तम भोजन करते हैं, वहाँ के मनुष्यो के विष्ठा का खाद बहुत बलवान और अधिक लाभकारी होता है। विष्ठा और पशाब का विश्लेषण करने से रसायन शास्त्रियो को यह भी पता लगा है कि शाकाहारी मनुष्यो के विष्ठा की अपेक्षा मांसाहारी मनुष्यों की विष्ठा मे खाद के अधिक तत्त्व रहते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य कुछ अच्छा खाद पैदा करने के लिए अभक्ष्य का भक्षण करे। यह बात तो केवल वैज्ञानिक दृष्टि से कही गई है। साधारण रीति से सौ भाग विष्ठा मे २५ भाग खाद के तत्त्व रहते हैं और शेष पचहत्तर भाग पानी रहता है। इन पच्चीस भागों मे डेढ़ भाग नायट्रोजन और एक भाग फ़ॉसफरस रहता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि विष्ठा में ये तत्त्व बहुत ही क़ीमती रहते हैं।

बहुत से आदमी दुर्गन्धि के कारण इससे बड़ी नफरत करते हैं। पर अगर वे इसमें कोयले का चूरा अथवा सूखी मिट्टी की राख मिला दें तो इसकी दुर्गन्धि दूर हो सकती है। हमारे कई पाठक जानते होंगे कि कई म्युनिसिपैलिटियाँ मैले मे राख मिलाकर एक विशेष क्रिया से उसका दुर्गन्ध रहित खाद बनाती हैं। इसे पौड्रेट कहते हैं। यह बडा ही उपयोगी खाद होता है। इसके अलावा विष्ठा का खाद तैयार करने की एक और रीति यह है कि १० हाथ लम्बा ६ हाथ चौड़ा और ३ हाथ गहरा गड्ढा खोदा जावे। सुभीते के अनुसार यह गड्ढा कुछ छोटा-बड़ा भी हो सकता है। इस गड्ढे मे १ फुट भर मैला डाल कर उस पर छः इञ्

मिट्टी डालीजाय, इसके बाद फिर उस मिट्टी पर एक फुट विष्ठा डाल कर ६ इञ्च मिट्टी डालीजाय। इस प्रकार गड्ढे को भर कर जिस ज़मीन में वह गड्ढा हो उसे मिट्टी से ढककर जमीन से एक फूट ऊँचाकर दिया जाय। ६ या ७ मास मे मैले की दुर्गन्धि बिलकुल निकल जायगी और वह सूखी मिट्टी के समान होकर खेत मे डालने योग्य हो जायगा। बड़े-बड़े शहरों, क़स्बों और गाँवों में यह खाद बड़ी आसानी से बनाया जा सकता है। पूना म्युनिसिपैलिटी में नीचे लिखी हुई रीति के अनुसार मैले का खाद बनाया जाता है।

६ फ़ीट लम्बा, ५ फ़ीट चौड़ा और ३ फ़ीट गहरा एक गड्ढा खोदा जाता है। उसके नीचे एक थर कूड़ा करकट की डाल कर उसके ऊपर छः इञ्च पतली एक थर मैले की डाली जाती है। इसी रीति से कूड़ा करकट और मैले की थरे की जाती हैं। इसमे गड्ढे की ऊपरी थर कूड़ा करकट की न होना चाहिये। बस थोड़े महीनों मे बढ़िया खाद तैयार हो जायगा। मि० फेंसिलमेन नामक एक फ्रान्सीसी कृषि विद्या-विशारद विष्ठा या मैले की खाद बनाने की नि लिखित पद्धति बतलाते हैं,- "एक १८ वर्ग फ़ीट लम्बे और एक फ़ीट गहरे चौकोन गड्ढे मे ईंटे जमा दो। उसके तले मे कूड़े करकट तथा राख की एक इञ्च थर लगा दो और फिर उस पर पाँच इञ्च मैला बिछा दो। इसके ऊपर फिर उसी तरह राख का एक इञ्च थर लगा दो और उस पर फिर उतना ही मैला बिछा दो। इस प्रकार गड्ढे को भर कर एक दिन खुला रहने दो। बाद मे उसे मिट्टी के थर से बन्द कर दो। कभी-कभी उस

पर पानी का छिड़काव कर दो।। बड़ा ही बढ़िया खाद बन जायगा। गुना के सूबे साहब मि० रामप्रसाद लिखते हैं कि मैला का खाद बनाने की एक सुलभ रीति यह है कि मिट्टी में मैला सड़ाने के बजाय उसको पानी में सड़ाया जावे जिसमें कि उसमें का मिश्रित नाइट्रोजन (Combined Nitrogen) पानी में मिलजावे और वह पानी सिंचाई और खाद का काम दे सके।

ऊपर विष्ठा का खाद बनाने की जुदी-जुदी रीतियाँ दी गई हैं। किसान अपने सुभीते के अनुसार उन्हें काम में लावें। हाँ, यहाँ यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिये कि विष्ठा का खाद बहुत गर्म होता है, इस लिये जिस खेत में यह खाद छोड़ा जावे उसे कई बार पानी देने की आवश्यकता होती है। दूसरी बात यह है कि खेत में इस खाद के देने के पश्चात् शीघ्र ही बीज न बोया जावे। इससे आरम्भ में तो पौधा अच्छा आयगा, पर थोड़े ही समय में वह पीला पड़कर नष्ट हो जायगा। विष्ठा का खाद उस हालत में उपयोगी हो सकता है, जब वह भलीभाँति सड़ जावे और मिट्टी की भाँति दिखलाई देने लगे। मैले का खाद देने के बाद तीन-चार वर्ष तक फिर खाद देने की जरूरत नहीं पड़ती।

हम इस खाद की दुर्गन्ध दूर करने की एकाध सुलभ पद्धति ऊपर लिख चुके हैं, और वे ही यहां के किसानों के लिये ठीक हैं। इसके अतिरिक्त युरोप में भी दुर्गन्धि दूर करने के लिये कुछ उपाय काम में लाये जाते हैं। सिलिकेट ऑफ मारशिया भी

मैले की दुर्गन्धि दूर करने की सफल औषधि सिद्ध हुई है। इसके अलावा वहाँ मैला जिप्सम (एक प्रकार की खड़िया मिट्टी) में मिला कर बेचा जाता है। इससे भी उसकी दुर्गन्धि दूर हो जाती है।

प्रति एकड़ ४० से १५० मन तक मैले का खाद दिये जाने का तरीक़ा है। खाद देने के पूर्व खेत का खूब जोत कर मिट्टी नर्म और भुरभुरी कर लेना चाहिये।

विष्ठा के खाद के प्रयोग

भारतवर्ष के जुदे-जुदे कृषि क्षेत्रों पर विष्ठा के खाद के कई सफल प्रयोग किये गये हैं। मध्य प्रान्त के लभाड़ी कृषि क्षेत्र पर धान (बिना साफ किया हुआ चावल) की फसल पर खाद के प्रयोग किये गये। गोबर के खाद से यह ज्यादा अच्छा साबित हुआ। नीचे के नक्शे से यह मालूम होगा।

१२ सालों में प्रयोग करने पर धान की पैदावार का औसत वज़न।

	२
	पौन्ड
सोन खाद (विष्ठा का खाद)	१२८३
गोबर का खाद	११५३
बिना खाद	६१३

यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिये कि विष्ठा का खाद गोबर के खाद के बराबर ही सस्ता पड़ता है।

नागपुर के कालेज फार्म पर कपास ज्वार और तुअर को अनुक्रम से दो सालों तक सोन खाद देने से जो लाभ हुआ वह नीचे के नक्शे मे दिया है। सोन खाद कपास बोने के साल मे दिया गया।

——	औसत	कड़बी	दो साल काश्त की औसत क़ीमत	दो साल की कीमत	दो साल का फायदा
१	२	३	४	५	६
		पौंड	रु० आ० पा०	रु०	रु० आ०
सोन खाद एक एकड़ पीछे १० गाड़ी के हिसाब से	कपास-८६० . ज्वार-८९३ . तुअर-२६४ .	३,४४१	४३ १२ ०	१७२	१२८ ४
बिना खाद	कपास-५३२.. ज्वार-६६१ .. तुअर-२३६...	२,२३६	३० ५ ०	११८	८७ ११

अकोला फ़ार्म पर कपास और ज्वार की फ़सल पर सोन खाद का उपयोग

	कपास	मूल्य	खाद की कीमत	खाद देने से कीमत		ज्वार	ज्वार कड़बी	मूल्य	खाद से लाभ		
				पौंड	रु०				पौंड	पौंड	रु०
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
		रु०	रु०					रु०			रु० आ०
२॥ टन गोबर का खाद	३९२	७८	९	९०	१८	४८७	२६८५	५४	७०	६८५	११ २
बिना खाद	३०२	६०	..	..	.	४१७	१८००	४३	...	...	.
७॥ टन सोन खाद	४९८	१००	९	१९६	४१	५३७	२६३५	५७	१२१	६३५	१२ ५

इसी प्रकार सूरत के दो समान खेतों मे ज्वार और कपास की फ़सल पर मैले के खाद का प्रयोग किया गया। नतीजा बहुत ही संतोषकारक निकला। गोबर के खाद की अपेक्षा सवाई से ज्यादा फ़सल हुई। और भी कई कृषिक्षेत्रों पर इसके प्रयोग हुए और यह बात निश्चित रूप से प्रकट हुई कि फसल के लिये यह खाद एक अमूल्य पदार्थ है। भारतवासी अगर इसे व्यर्थ न जाने देकर इसका सदुपयोग करने लगे तो देश की उपज में आशातीत वृद्धि हो सकती है और करोड़ों रुपयों का प्रतिसाल फ़ायदा हो सकता है।

विष्ठा का खाद सचमुच सोन खाद (Golden manure) है। इसका प्रभाव अद्भुत है। यह गई बीती भूमि को बड़ी उर्वरा और उपजाऊ बना देता है। निकम्मे वृक्षों और घासपात को जड़ से मिटा देता है। आपने स्वयं देखा होगा कि गाँव के आसपास की फसल, जहाँ मनुष्य मलमूत्र का विसर्जन करते हैं, अक्सर हरीभरी और लहलहाती रहती है। वह दूर के खेतों की अपेक्षा अधिक उपज देती है।

संसार के जुदे-जुदे देशों में मैले या विष्ठा के खाद का उपयोग

जापान

जापान ने चीन की तरह इस बहुमूल्य खाद के महत्व को समझ रखा है। वहाँ बड़े यत्न के साथ इसे इकट्ठा किया जाता है।

इस बात की खास सावधानी रखी जाती है, जिससे छटाँक भर भी यह व्यर्थ न जाने पावे। वहाँ विष्ठा इकट्ठा करने के लिये म्युनिसिपैलिटी की ओर से खास तरह के बर्तन बने हुए रहते हैं। घर घर जाकर पेशाब और विष्ठा इकट्ठा किया जाता है। वहाँ या तो विष्ठा में कोयले की राख और मिट्टी मिलाकर उसका उपयोग किया जाता है या विष्ठा और पेशाब को शामिल कर खूब हिलाया जाता है। फिर उस मिश्रण को कुछ दिन तक सूरज की धूप में रख देते हैं। जब वह सूख जाता है, तब उसके कंडे बना लेते हैं और फिर वे खेतीहरों को बेचे जाते हैं जो खाद का बड़ा ही अच्छा काम देते हैं।

चीन की पद्धति

चीन ने इस सम्बन्ध में सबसे आगे पैर बढ़ाया है। अमेरिका के प्रो० किंग ने "Farmers of Forty Centuries" (चालीस शताब्दियों के किसान) नामक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। आपने यह दिखलाया है कि गत ४००० वर्षों से निरन्तर खेती के होते हुए भी वहाँ की जमीन की उपजशक्ति जैसी तैसी बनी हुई है। इसका कारण यह है कि वह देश एक तोलेभर विष्ठा को भी व्यर्थ नहीं जाने देता। वहाँ शहरो में पायखाने का मैला ठेकों से बेचा जाता है। फिर उसका खाद बनाकर उचित मूल्य में किसानों को दिया जाता है। किसान अपनी खेतो में इसका उपयोग करते हैं। इससे चीन की खेती की अवस्था संसार के सब देशों से ज्यादा अच्छी है।

युरोप में विष्ठा के खाद का महत्व

बेल्जियम और फ्रांस ने बहुत पहले से विष्ठा और पेशाब के खाद के महत्व को समझा है। फ्रांस मे इसकी दुर्गन्धि दूर करने के लिये या तो कोयले की राख डाली जाती है या गंधक का तेजाब डाला जाता है। फिर उसे गर्मी मे सुखा देते हैं और बाद मे वह खाद के काम में लाया जाता है।

इंग्लैण्ड में विष्ठा का खाद

इङ्गलैण्ड मे भी विष्ठा और पेशाब के खाद का उपयोग किया जाता है। वहाँ विष्ठा और पेशाब को सुखा कर तथा उसकी दुर्गन्धि दूर करके उसमे एक जाति के दर्याई पक्षी की बीट, जिन्हें गुआनो कहते हैं, डाल दी जाती है और फिर उस मिश्रित खाद का उपयोग किया जाता है।

भारतवर्ष में विष्ठा के दुरुपयोग से हानि

हिन्दुस्थान की बस्ती लगभग इकतीस* करोड़ है। एक मनुष्य औसतन रोज ड्योढ़ या दो रतल भोजन करता है। इस हिसाब से एक दिन मे सारे हिन्दुस्थान में लगभग ६० या ६२ करोड़ रतल अनाज खर्च होता है। अगर इस अनाज का भाव कम से कम प्रति रुपया २० सेर गिना जावे तो सारे हिन्दुस्थान

* इस मर्दुमशुमारी में यह संख्या लगभग ३२ करोड़ हो गई है।

को एक हज़ार अस्सी करोड़ रुपयों के अनाज की हर साल आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त हिन्दुस्थान का बहुत सा अनाज विदेशों को भी जाता है। कहने का मतलब यह है कि अगर बाहर जाने वाले अनाज को हम गिनती में न ले तो भी हम प्रति साल एक हज़ार अस्सी लाख रुपयों का अनाज जमीन से लेते हैं। इस खाये हुए अनाज के बहुत से अंश का विष्ठा और पेशाब बनता है। अगर हम इस विष्ठा और पेशाब को इधर उधर व्यर्थ न फेंक कर उसका खाद की तरह उपयोग करें तो हम जमीन की उस छीजन की, जो इतना अनाज बोने में होती है, बहुत कुछ पूर्ति कर सकते हैं। कहा जाता है कि हिन्दुस्थान की जमीन की उपजाऊ शक्ति दिन-ब-दिन कमज़ोर होती जाती है। इसका कारण यह है कि हम ज़मीन से ले तो बहुत कुछ लेते हैं पर वापस उसे यथोचित खुराक नहीं देते। इससे उसकी उत्पादक शक्ति का कम हो जाना स्वाभाविक है। बड़े अफसोस की बात है कि हम सोन खाद जैसे बहुमूल्य पदार्थ को व्यर्थ जाने देते हैं। हमने "किसान" के गत वर्ष के ग्यारहवे अङ्क मे हिसाब लगाकर दिखलाया था कि विष्ठा को व्यर्थ जाने देकर भारतवर्ष प्रतिसाल लगभग ८० करोड़ रुपयों की हानि उठाता है। यह मूल्य केवल विष्ठा से बनने वाले खाद का कूँता गया था। अगर इससे फसल में जो फायदा होता है वह भी गिना जावे तो उससे तो यह नुकसान कई अर्ब रुपये तक पहुँच सकता है। कितने दुःख की बात है कि भारतीय किसान

अपनी नासमझी के कारण इतनी बड़ी राष्ट्रीय सम्पत्ति का नुक़सान कर लेते हैं।

विष्ठा का खाद काम में लाने बाबत सूचना

प्रत्येक एकड़ में विष्ठा का खाद १५ गाड़ी से लगाकर ५० गाड़ी तक डाला जाता है। निम्न लिखित फ़सलों के लिये निम्न-लिखित परिणाम मे खाद दिया जाना ठीक होगा।

ज्वार	१० गाड़ी
बाजरा	१५ गाड़ी
गेहूँ	२० गाडी
देशी शाक भाजी	२५ गाडी
नीबू केला आदि फल	३० गाड़ी
विलायती तरकारी	३० गाड़ी
गन्ना	३५ गाड़ी

गेहूँ, सांटा, बाजरी, ज्वार, देशी और परदेशी तरकारी के लिये यह खाद अत्यन्त उपयोगी है।

मनुष्य के पेशाब का खाद

बालको! मनुष्य के विष्ठा की तरह उसके पेशाब मे भी बहु-मूल्य खाद के तत्त्व भरे पड़े है। पेशाब का खाद बहुत ही क़ीमती है। पशुओं के पेशाब से मनुष्य का पेशाब खाद की दृष्टि से अधिक मूल्यवान और उपयोगी है। इसमे वे तत्त्व अधिक हैं जिन से जमीन की उत्पादक शक्ति बढ़ती है। अगर आप एक हज़ार रतल मनुष्य का पेशाब लेंगे तो आपको उसमें निम्नलिखित तादाद मे तत्त्व मिलेंगे।

तत्त्वों के नाम	हिस्सा
१—पानी	९३२
२—नाईट्रोजन	४९
३—फॉस्फेट	६
४—पोटेशियम नाईट्रेट और नमक	६
५—सोडा सल्फेट और मेग्नेशिया	७

कहने का मतलब यह है कि मनुष्य का पेशाब बड़ा ही उपयोगी खाद है। मूत्र को सञ्चित रख खाद के काम में लाने के जो तरीके हैं, उनमे से कुछ नीचे दिये जाते है।

(१) घर मे छोटे छोटे कूँड या हौज बनाये जावे। उनमे बारीक और मुलायम मिट्टी या राख भर दी जावे। घर के सब मनुष्य उसी हौज मे पेशाब करे। जब वह मिट्टी या राख पेशाब से तरबतर हो जावे तब उसे फावड़े से निकाल कर खाद की तरह उसका उपयोग किया जावे।

(२) दूसरा तरीका यह है कि खेत मे इतना बड़ा हौज बनाया जावे कि जिस मे छ मास तक पेशाब किया जा सके। जब यह पेशाब से भर जावे तब इसमे चूने का पानी डाला जावे। चूने के पानी से यह असर होगा कि पेशाब मे रहे हुए खाद के तत्व हौज मे नीचे बैठ जावेंगे। उन्हें लेकर उनका खाद की तरह उपयोग करना ठीक होगा।

(३) तीसरा तरीका यह है कि रोज का पेशाब घर के इकट्ठे किये हुये कूड़े कचरे पर डाल दिया जाय। इससे कचरा बदबू

देकर सड़ने लगेगा। थोड़े दिनों मे उसका बहुत बढ़िया खाद बन जायगा।

(४) चौथा तरीक़ा यह है कि एक हौज बनाया जावे। उसमे जितना पेशाब किया जावे लगभग उतना ही उसमे चूना राख आदि मिला दिये जावे। फिर उस सूखे हुए मिश्रण में भंगी के द्वारा, अगर उपलब्ध हो सके तो आधे से कुछ अधिक सूखा मैला मिला दिया जावे। यह बहुत ही बढ़िया खाद बन जायगा। मूत्र मे बड़ी दुर्गन्धि होती है। इसलिये अगर २० गैलन मूत्र मे २५ तोला कसीस मिला दो जावे तो उसकी दुर्गन्धि दूर हो जाती है।

खली का खाद

खली के खाद मे पौधे के खाद्य पदार्थ के सभी अंश मौजूद हैं। गोबर के खाद की अपेक्षा खली अपना ज्यादा असर दिखाता है। खली मे नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होती है, और यही कारण है कि इससे फ़सल को बहुत अधिक लाभ पहुँचता है।

खली दो प्रकार की होती है। (१) ढोरों को खिलाने योग्य। सरसों, तिल,अलसी, अफ़ीम के दाने, राई, बिनौला (कपासिया) मूंगफली आदि की खली ढोरो को खिलाई जाती है। हमारी राय में खाने की खली पशुओं को खिला देना चाहिये। इससे दो फ़ायदे होते हैं। खली खाने वाले मवेशी हृष्ट-पुष्ट और ताक़तवर होते और उनके घी की मिक़दार बहुत बढ़ जाती है। खली के खानेवाले मवेशियों के गोबर व पेशाब को खेतो में डालने से

पैदावार भी अधिक होती है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं जिस प्रकार का भोजन पशुओं को दिया जायगा उसी प्रकार का खाद्य-अंश उनके मल-मूत्र मे रहेगा। यहाँ यह बात अवश्य ध्यान मे रखना चाहिये कि खाने योग्य खली भी ज्यादा दिन रखने से या पानी आदि के लगने से बिगड़ गई हो तो खाद्य के काम में लाई जा सकती है।

नीम, महुवा, अरण्डी आदि पदार्थों की खली जो पशुओं को नहीं खिलाई जाती, खाद के लिए अच्छा काम दे सकती है।

खाद देने की रीति

खली का महीन चूरा कर खेत मे फैला देना चाहिये। कोल्हू की खली मे तेल का अंश ज्यादा रहता है, इसलिये खली के चूरे में एक-चौथाई बुझा हुआ चूना मिलाकर ही काम मे लाना चाहिये। इसमे राख भी मिलाई जा सकती है।

ज्वार, कपास, बाजरा आदि को खली का खाद देना हो तो फ़सल बोने से १५ रोज़ पहले उसका महीन चूरा खेतों मे फैला कर बक्खर या हैरो चला कर मिट्टी मे मिला देना चाहिये। इसका नतीजा यह होगा कि हवा और प्रकाश से फ़सल बोने तक खली पानी मे घुलने योग्य हो जायगी।

खली का खाद फलदार पेड़ो, क़ीमती तरकारियों और फूलदार पौधों को बहुत फ़ायदा पहुँचाता है। आलू, गन्ना, गोभी, बैंगन

आदि को इस खाद से बहुत फ़ायदा पहुँचता है। अब हम जुदी २ जाति की खली के खाद की उपयोगिता पर विचार करते हैं।

अरण्डी की खली का खाद

अरण्डी की खली का खाद बहुत ही बढ़िया और फ़ायदेमन्द होता है। इसका खाद पहले दर्जे का माना जाता है, और यह सस्ता भी होता है। इसमे प्रति सैकड़ा ४॥ अश तक नाइट्रोजन पाया जाता है। सभी प्रकार की फ़सलों को इसका खाद दिया जाता है। इस खाद से पौधों मे पत्तियों की अधिकता मे बाढ़ आती है। परन्तु इस खाद के साथ सिचाई का पूरा प्रबन्ध होना चाहिये। इस खाद के देने से फसल खूब हृष्ट-पुष्ट मालूम होती है। इससे पत्तों का रंग भी ज्यादा गहरा हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस खाद से मिट्टी के अन्दर रहने वाले, फ़सल को नुकसान करने वाले जीव जन्तुओं का भी नाश हो जाता है और दीमक से भी फ़सल की रक्षा होती है। बम्बई प्रान्त में गन्ने की फ़सल पर इस खाद का अक्सर उपयोग किया जाता है। वहाँ प्रति एकड़ १५-२० गाड़ी गोबर के साथ ५०० सेर अरण्डी की खली का खाद दिया जाता है। दूसरी क़ीमती फ़सलो को प्रति एकड़ एक हज़ार सेर तक देते हैं।

महुआ की खली का खाद

यह खली भी मवेशी को नहीं खिलाई जाती। इस खली के खाद से भी फसल को नुकसान पहुँचाने वाल कीड़ों का नाश हो जाता है।

नीम की खली

हिन्दुस्थान में नीम के पेड़ों की संख्या बहुत अधिक है। नीम के पेड पर जो छोटे छोटे फल लगते हैं, उन्हें मालवा और राजपूताना प्रान्त मे निम्बोली कहते हैं। इन्हीं फलों से तेल निकलता है और बाद में जो खली बच जाती है, उसको खाद के काम मे लाते हैं। कहीं कहीं इस निम्बोली को सडा कर भी खाद के काम मे लाते हैं। इस खाद की उपयोगिता से खेत के कीड़े शीघ्र नाश हो जाते हैं अथवा भाग जाते हैं। यह १० से २० मन फी एकड़ के हिसाब से काम मे लाई जाती है। इस खली के खाद मे आलू आदि फसलों का अच्छा फायदा पहुंचता है।

करंज की खली का खाद

मालवा और राजपूताने मे इस खाद की हमेशा कमी रहती है। इसलिये इस कमी को पूरी करने के लिये यत्न करना चाहिये। करंज की खली का खाद बहुत ही फायदेमन्द होता है। यह खली, घानी से करंज के बीजो मे तेल निकालने के बाद, बच जाती है। इस खली का बारीक चूरा कर खाद के काम मे लाना चाहिये जिस मे वह जमीन मे अच्छी तरह मिलाई जा सके। स्यालू फसल यानी कपास आदि के लिये बरसात के १५ दिन पहले ३०४ मन तक फी बीघे के हिसाब से इसका खाद देना चाहिये। खाद देने के बाद एक वक्त जमीन मे मामूली बखर चला

देना चाहिये, जिस से वह जमीन में अच्छी तरह मिल जावे। कुंए के पानी से सींची जाने वाली गन्ने व दूसरी फसलों को इसका खाद बहुत फायदा पहुँचाता है।

जमीदार व बड़े बड़े किसानों को चाहिये कि अपने नजदीक की खाली जमीन में करंज के छोटे दरख्तो को लगावे। इसका तेल भी कई प्रकार के कामो मे आता है। लकड़ी पर लगाने में, गाड़ी के पहियों को देने मे तथा चर्म-रंग पर इसके तेल का इस्तेमाल किया जाता है।

इन्दौर के प्लेन्ट-रीसर्च-इन्स्टीटयूट मे हर साल मई के मास में इसके बीज मिल सकते है। जिन सज्जनों को बोने के लिये बीज चाहिये वे उक्त इन्स्टीटयूट से मँगा सकते है। इसी इन्स्टिटयूट मे पुराने व नये दरख्तो का मुलाहिजा भी हो सकता है।

बिनौले की खली का खाद

बिनौले की खली दो प्रकार की होती है। एक में बिनौले का कड़ा हिस्सा लगा होता है, दूसरी मे यह निकाल दिया गया जाता है। पहली मे कम और दूसरी मे ज्यादा उपयोगी अंश रहते हैं। इस खली मे नाइट्रोजन का अंश बहुत होता है। मूंगफली की खली से यह खली अधिक पुष्टिकारक होती है। इस मे लगभग सात फी सदी नाइट्रोजन पाया जाता है। जो खली खराब हो जाती है उसी का प्रयोग खाद के वास्ते होता है। नहीं तो इसे खाद की अपेक्षा पशुओ को खिलाने से ही विशेष लाभ है।

यह खली दस से बीस मन फी एकड़ के हिसाब से खाद के काम मे लाई जाती है। छिलकेदार खली १५ से २५ मन फी एकड़ के हिसाब से खाद के काम मे आती है।

अलसी और सरसों की खली का खाद

सरसों और अलसी की खली उत्तर हिन्दुस्थान मे बहुत होती है। किन्तु इसका अधिकांश भाग विदेशों मे भेज दिया जाता है। राई और सरसो की खली मे नाइट्रोजन का अधिक हिस्सा रहता है। बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा मे इस खाद का उपयोग किया जाता है।

मूँगफली की खली का खाद

मद्रास मे मूंगफली की खली अधिक होती है और अकसर यह मवेशियों को खिलाई जाती है। इसमे सात सैकडा नाइट्रोजन होता है। किन्तु यह खली महंगी पड़ती है, इसलिये खाद के काम मे बहुत कम लाई जाती है। यही हाल तिल की खली का है। वह भी महंगी पड़ने के कारण अकसर खाद के काम मे नहीं लाई जाती। हां, कुसुम की खली कहीं कहीं काम मे लाई जाती है। इसका उत्तम खाद बनता है। अरण्डी की खली से यह कुछ सस्ती पड़ती है।

आवश्यक सूचना

देशी कोल्हू की खली को राख या चूना मिला कर ही काम में लाना चाहिये। खली का चौथाई हिस्सा चूना मिलाया जाय।

इससे ज्यादा चूना मिलाने से फ़सल को नुक़सान पहुँचाने की सम्भावना रहती है।

(२) मशीन की खली को बारीक चूरा करके ही खेतों मे डालना चाहिये। चूरा जितना ही महीन होगा, उतना ही जल्दी वह अपना असर दिखायगा।

(३) खाद देने के बाद बक्खर या हैरो चलाकर उसे मिट्टी में मिला देना चाहिये।

(४) सिंचाई का काफी इन्तजाम होने पर ही आबपाशी की फ़सलों को खली का खाद दिया जाना चाहिये।

(५) बिना अनुभव के यह बात नही जानी जा सकती है कि किस प्रकार की जमीन मे, किस फसल को, किस जाति की खली का खाद ज्यादा फायदा पहुँचाता है। फसल के अनुसार ही खाद का चुनाव किया जाना चाहिये।

(६) खाद के लिये खली का चुनाव करते समय इस बात पर ज्यादा ख्याल रखना चाहिये कि ज्यादा नाइट्रोजन वाली और सस्ती खली खरीदी जाय। हिसाब लगाकर देख लेना चाहिये एक रुपया मे कितना नाइट्रोजन मिल सकेगा और एक रुपया में ज्यादा नाइट्रोजन मिले वही खली खरीदी जाय।

देहातों मे रहनेवाले अपढ़ काश्तकारों के लिये हिसाब लगाकर देखना मुमकिन नही है। इसलिये देहाती काश्तकारों को चाहिये कि उसी खली को खाद की तरह काम मे लावें, जो देहातों मे ज्यादा और सस्ती मिलती हो।

हरी खाद

भारतवर्ष मे अति प्राचीन काल मे हरी खाद का उपयोग किया जा रहा है। वराह सहिता मे तिल, कुलथी आदि की फ़सलो को फल आने पर खेत की मिट्टी मे गाड देने की बात लिखी है। हरी खाद फ़सल के लिये अत्यन्त उपयुक्त है। सनई, तिल, ग्वार, ढेचा सन आदि फलीदार पौदो को बोकर जब वे बड़े होजावे तब उन्हे जोतकर मिट्टी मे मिला देने की क्रिया को हरी खाद देना कहते हैं। इस खाद के लिये वे पौधे बोने चाहिये जो अधिकतर अपनी खुराक वायु से ले सके। प्रयागो से पता चला है कि हरी खाद देने से फसल को कम खर्च मे नाइट्रोजन दिया जा सकता है, जो कि फसल का जीवन है।

हरी खाद से लाभ

हरी खाद को काम मे लाने से हलकी जमीन सुधर जाती है। इससे जमीन मे नाइट्रोजन की वृद्धि होती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि नाइट्रोजन के बढ़ने से जमीन की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है। इसी हरी खाद से चिकनी मिट्टीवाली जमीनें सुधरती हैं। हरी खाद के पत्ते, डण्ठल आदि के सड़ने से मिट्टी मे रासायनिक परिवर्तन होते है और उनका असर मिट्टी पर पडकर वह भुरभुरी हो जाती है। हरी खाद के लिये बोई जानेवाली फसलें अधिक गहराई पर स्थित नाइट्रोजन, पोटाश और फासफोरस को जमीन के सतह की पास की मिट्टी मे जमा करती हैं। इससे

इनके बाद की बोई फ़सल को तैयार भोजन मिल जाता है। हरी खाद के लिये फसल घनी बोई जाती है जिससे खर पतवार और घास-पात को प्रकाश, धूप और हवा नही मिल सकती है। इससे खर, पतवारो मे फ़सल की अपने आप रक्षा हो जाती है।

हरी खाद देने के तरीक़े

हरी खाद देने के कई तरीके है—

(१) सन, कुलथी, जंगली नीम, मूग आदि फसलो को खेत में बोते हैं और फूल आने पर उन्हे जोत डालते हैं।

(२) हरी खाद के लिये बोई हुई फ़सल को काटकर उसका ढेर लगा देते है और उसमे पेशाब गोबर का मिश्रण कर हलका छिटकाव देकर उसे मिट्टी की दो इञ्च मोटी तह मे ढक देते हैं। दो सप्ताह मे वह सडकर खाद हो जाता है तब उस खाद को फैलाकर ठण्डा होने देते है। यह खाद खेत मे फैला दिया जाता है।

(३) दूसरे खेतो मे बोये हुए ढेचा सन, जंगली नीम आदि फलीदार पौदो को उखाड़कर बरसात मे गाड़ देते हैं और सड जाने पर हल चलाकर उन्हे मिट्टी मे मिला देते है।

(४) खेत मे बोई हुई फसल को काटकर गाड़ देते हैं और सड़ जाने पर हल चलाकर उन्हे मिट्टी मे मिला देते है।

हरी खाद के लिये चुनी जानेवाली फसल मे नीचे लिखे हुए गुण होना अत्यन्त आवश्यक है—

(१) पौधे बहुत ज्यादा पत्तेवाले हों (२) तना और टह-नियाँ रेशारहित और नरम हों (३) पौधों की जड़ें ज़मीन में गहरी जाती हों (४) पौधों की जडों पर छोटी-छोटी गाँठो की तादाद बहुत ज्यादा हो और (५) पौदा जल्दी बढ़ता हो।

कुछ आवश्यक बातें

(१) हरी खाद को हल चला कर मिट्टी मे गाड देने से ही काम नहीं चलता। उसको अच्छी तरह से गलाने की ओर भी पूरा ख्याल रखना चाहिये।

(२) हरी खाद दिये हुए खेत मे बार बार हल देना जरूरी है। इससे खाद को सड़ने मे सहायता मिलती है।

(३) कुलथी, चंवला, मूंग आदि ज्यादा पत्ते वाली फसलें हरी खाद के लिये उत्तम साबित हुई हैं।

(४) हरी खाद को ऐसे समय मिट्टी मे मिलाना चाहिये कि उसके अच्छी तरह से गल जाने के बाद भी दूसरी फसल के लिये काफी तरी मिट्टी मे बच जाय। स्थानीय परिस्थति के अनुकूल समय निश्चित कर लिया जाना चाहिये।

(५) हरी खाद दी हुई फसल को सुपरफासफेट देने से पैदावार ज्यादा होती है।

(६) ईख की फसल के लिये कहीं कहीं हरी खाद और सुपर फ़ासफ़ेट बहुत ही फ़ायदेमंद साबित हुआ है।

हरी खाद से गल्ले की फ़सल को बहुत लाभ होता हुआ देखा गया है। हाँ, कानपुर के प्रयोग से यह मालूम हुआ है कि अगर सुपर फ़ासफेट के साथ हरा खाद मिलाकर गन्ने की फ़सल को दिया जावे तो अत्यन्त आशा जनक परिणाम निकलते हैं। कुछ कृषि-विद्या विशारदों का कथन है कि इस खाद से उस जमीन को अधिक फ़ायदा पहुँचता है जो हलकी रेतीली हो, जिसमें घास और पौधे नाम का भी न उगते हों। इसके साथ ही साथ, यह खाद उस भूमि को भी बहुत लाभ पहुँचाता है जो बहुत समय से खेती करने के कारण अशक्त हो गई हो। मटियार भूमि में भी इसका खाद देने से उसकी उपजाऊ शक्ति बढ़ती है।

मछली का खाद।

मछली का खाद सब स्थानों मे प्राप्त नहीं हो सकता। बाढ़ के समय बहुत सी मछलियाँ बह जाती हैं और ऐसे समय में मरी हुई मछलियो के थर के थर नदी के किनारो पर देखे जाते हैं। इनमे बहुत सी मछलियां मर जाती हैं। मरी हुई मछलियों को सुखा कर कूट लिया जाता है और आवश्यकता होने पर उन्हे पेड़ की जड़ो मे डाल कर मिट्टी से ढक दिया जाता है। मछली के खाद से फलो की वृद्धि और फल के स्वाद उन्नति होती है। आम, नारंगी आदि फल वृक्षो को मछली का खाद

देने से उनके फल बहुत ही मीठे हो जाते हैं। बाग़ में उगने वाले वृक्षों के लिये मछली का खाद बहुमूल्य खाद है। पर धर्मप्राण हिन्दू किसी भी लाभ के लिये जीव हिंसा करना पसन्द नहीं करेंगे।

हड्डी का खाद

फलदार वृक्षों के लिये हड्डी का खाद अत्यन्त लाभदायक है। इस खाद के अन्तर्गत हड्डी का चूरा, उबाली हुई हड्डियाँ, हड्डी की राख आदि प्रधान है। हड्डी का खाद बड़ा ही उपयोगी होता है। पर कितने अफसोस की बात है कि इस बहुमूल्य खाद के काम में आने वाली लाखों मन हड्डियाँ विदेश भेज दी जाती है। हड्डियाँ कई प्रकार से खाद के काम में लाई जाती हैं। कई लोग हड्डियों के छोटे छोटे टुकड़ो को पौधों की जड़ों में डाल देते हैं। नैपाली लोग तो फलदार वृक्षों के क्यारे में हड्डियों के बारीक बारीक टुकड़े डालते हैं और उनका यह कथन है कि इससे वृक्ष पर बड़े ही मीठे फल लगते हैं। कई कृषि विद्याविशारदों ने अपने अनुभव से यह जाना है कि हड्डी के खाद से फल फूल मीठे होते हैं, फल अधिक लगते हैं और खेत शीघ्र पकता है तथा आरम्भ में इससे फ़सल कीड़ों से बचती है। पर हड्डी के टुकड़ों को डालने की प्रचलित रीति ठीक नहीं है। इसलिये कृषि-विद्या-विशारद हड्डी का खाद ३ प्रकार से तैयार करते हैं। प्रथम हड्डियों का चूर्ण (Bone Meal या सड़ी हुई हड्डियों का चूर्ण)। दूसरे जलाई हुई हड्डियों का चूर्ण या हड्डी की राख (Bone Black)। तीसरे, तेजाब मे

गली हुई हड्डियाँ जिसे 'सुपर फ़ारफ़ेट आफ़ लाइम' (Super phosphate of Lime) भी कहते हैं।

(१) हड्डी का चूर्ण या चूरा जितना ही बारीक होगा उतना ही वृक्षों को लाभ पहुँचेगा। यदि इस चूरे को पशुओं के मूत्र के साथ उपयोग किया जाय तो यह अधिक गुणकारी हो सकता है। यह मटियार भूमि के लिये अत्यन्त लाभदायक है। इसके देने से वृक्ष में अधिक फल की सभावना होती है और फल भी मीठे होते हैं।

(२) दूसरी पद्धति यह है कि हड्डी को प्रथम कोयले की तरह जला देते हैं और जलाने के पश्चात चक्कियों में पीस कर खाद के काम में लाते हैं। इसे हड्डी की कुनाई अथवा बोन-चारकोल (Bone Charcoal) कहते हैं।

(३) हड्डी को बिलकुल राख की सीमा तक जला डालते हैं और पीस कर खाद बनाते हैं। इसको हड्डी की राख अथवा 'बोनएश' कहते हैं।

खाद देने की रीति

हड्डी का चूरा, मैदा कुनाई अथवा हड्डी की राख फ़सल बोने के पहले खेत में डाल देते हैं। इसके पानी में गलने अथवा और किसी भांति से खराब हो जाने का सम्भावना नहीं रहती।

हड्डी जितनी बारीक पिसी रहती है उतना ही जल्द उसके खाद से फ़ायदा होता है। यदि टुकड़े बहुत बड़े हैं तो उनका

फायदा जब तक हड्डी नहीं सड़ती तब तक देखने में नहीं आता। हड्डी का खाद विशेष करके मीठे फलदार वृक्षों के लिये उपयोगी होता है। हड्डी का खाद देने से वृक्षो में अधिक फल की सम्भावना होती है और फल भी मीठे होते हैं।

हड्डी कैसे जमा की जाती है

भारतवर्ष में मैले के खाद के समान हड्डी को छूने में भी किसानों को बड़ी घृणा होती है। इस कारण लोग हड्डी का व्यवसाय करना पसन्द नहीं करते। बहुत सी हड्डी जो खाद के काम में आ सकती है, इसी वजह से उपयोग मे नहीं लायी जाती। यदि इसका प्रयोग कहीं किया भी जाता है तो नीच जातियों द्वारा, वह भी कहीं २ और नाम मात्र को। जब से हड्डी को बाहर भेजने का व्यवसाय स्थापित हुआ है तब से कितने ही नीच जाति के लोग स्वयं या अपनी औरतों या बच्चो से हड्डी एकत्र करके किसी समीप की आड़त मे ले जाते हैं। वहाँ उनको हड्डी का दाम तौल के हिसाब से लगभग आठ आना फ़ी मन दे दिया जाता है। रेल के स्टेशन के समीप हड्डी के रोजगारियों की आड़त होती है। वहाँ उनकी ओर से नीच जाति का कोई एजन्ट कुछ वेतन अथवा कमीशन पर नियत रहता है। वह कच्ची मिट्टी की दीवार से घिरे हुए स्थान मे हड्डी जमा करता है। बरसात में बहुत स्थानों पर यह व्यवसाय बन्द हो जाता है। एजन्ट इसी स्थान के समीप एक छोटी सी कोठरी अपने रहने के लिये बना लेता है।

सड़ी हुई हड्डी की खाद

हड्डी के चूरे को गोबर, मूत्र, पत्ती आदि के साथ एक गड्ढे में डाल देते है और उस गड्ढे को मिट्टी या बालू से ढक देते हैं। लगभग छ सात महीने मे हड्डी सड़कर खाद के लायक हो जाती है। इससे पौधों को अति शीघ्र लाभ पहुँचता है। खाली हड्डी के चूरे को खेत मे डालने से पौधे को शीघ्र लाभ नहीं पहुँचता। क्योंकि इस तरह हड्डी जल्दी नहीं सड़ती। गड्ढे मे मूत्र, गोबर आदि पदार्थों के खार का प्रभाव हड्डी के ऊपर शीघ्र पड़ना है। वह हड्डी को गला देता है। जो हड्डी बिना गली रह जाती है वह धीरे-धीरे खेतो मे आतप, वर्षा तथा वायु के प्रभाव से [illegible] करती है। हड्डी सड़ाने के लिये हवा और नमी चाहिये। गड्ढे में पानी न भरना चाहिये। इसकी खबरदारी गोबर के खाद के समान होनी चाहिये। ४० से १०० मन खाद एक एकड के लिये बहुत काफी है। अंग्रेजी मे सड़ी हुई हड्डी को 'फरमेण्टेड बोन' (Fermented bone) कहते हैं।

राख का खाद

राख का खाद भी बड़ा उपयोगी है, क्योंकि [illegible] पौधों के भोजन का अंश—पोटाश—अधिक रहता है। [illegible] की राख मे प्रति सैकड़ा ५ से ७ अंश तक पोटाश, [illegible] रहता है। हर तरह की हरियाली की राख मे पोटाश का अंश और भी अधिक रहता है। केले के पत्ते, मक्का तथा कु[illegible]

डंठल, गन्ने के पत्तों की राख मे पोटाश का अधिक अंश पाया जाता है। तम्बाकू के डंठलों मे भी पोटाश बहुतायत से पाया जाता है। राख के खाद का प्रयोग पौधो के बढ़ जाने पर किया जाता है। इस समय राख देने से पौधो को भोजन लाभ होता है और पत्तियां पर राख पडने से उनमे कीडे मकोड़ नहीं लगते और रोगों से पौधों की हिफाजत हो जाती है।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं राख मे पोटाश की प्रधानता रहती है और यह बात सब देशो के कृषि विशारदो के अनुभव मे आई है कि कन्द-मूल की (Root crops) जाति की फसले और उनमे भी चुकन्दर, आलू और तम्बाकू की फसलो को उस खाद मे अत्यन्त लाभ पहुंचता है जिस मे पोटाश की अधिकता रहती है। इसलिये कुसुम, मक्का, जुआर, गन्ना आदि के डठलो के ढेर को जला कर उनकी राख को गोबर तथा वानस्पतिक खाद के साथ उपयोग करने से बड़ा लाभ होता है। अनुभव मे जाना गया है कि १००० पौंड सूखे हुए कुसुम तथा ज्वार और मक्का के डंठल की राख में १७ से लगा कर २० पौंड तक पोटाश की मात्रा रहती है। बिनौले के छिलको की राख भी इस दृष्टि से प्रथम श्रेणी का खाद है। इनमें १८ से लगा कर ३० फी सदी तक पोटाश का अंश घुलनशील अवस्था मे रहता है।

यह बात नित्य प्रति के अनुभव की है खटमीठे रस वाले फलों के लिये वे खाद विशेष लाभदायक होते हैं, जिन मे पोटाश की

प्रधानता रहती है। पोटाश जनित खाद फलों को सुसङ्गठित करता है। इस सम्बन्ध मे बङ्गाल के बहरामपुर का अनुभव ध्यान देने योग्य है। वहां के जेल मे सैकड़ों फल वृक्ष (Lime trees) थे जिनके फल नहीं लगते थे। कई वर्ष इसी तरह बीत गये। अखिर वहां के जेलर से कहा गया कि यह उन्हे खार और हड्डी का खाद दे। जेलर ने धार्मिक दृष्टि से हड्डी का खाद देने मे इन्कार किया। इस पर राख के साथ सरसो की खली (Mustard Cake) का खाद उक्त वृक्षों के आस-पास क्यारी बना कर डाला गया। इसका परिणाम बड़ा ही आशादायक निकला। दूसरे वर्ष बड़े ही लज्जतदार फल निकल आये। फॉसफेट प्रधान खादो (Phosphetic manures) के प्रयोग से वृक्षो मे फल फूल आने की ताकत बढ़ती है। इसलिये ऊपर के वृक्षो मे हड्डी का खाद भी मिलाया गया था। कहने की आवश्यकता नहीं कि हड्डो मे फॉस्फरस की प्रधानता रहती है। इस सम्बन्ध मे भी एक अनुभव का यहां उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है, जिसे हम स्वर्गीय नित्य गोपाल मुकर्जी के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "भारत में कृषि" (Agriculture in India) नामक ग्रन्थ से लेते हैं--

"मालदा नामक स्थान में एक आम का पेड़ था जिसके कभी फल नहीं लगते थे। उसके चारो ओर क्यारी बना कर उसमें हड्डियों के बारीक-बारीक टुकड़े रख दिये गये और फिर उन्हें मिट्टी से ढक दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि दूसरे ही साल उस वृक्ष को बड़े ही मीठे लज्जतदार फल लगे।

अमेरिका के एक कृषि विद्या विशारद ने मक्का की फसल के लिये प्रति एकड़ चार पांच मन राख का खाद उचित बतलाया है। इसे गोबर या मनुष्य के विष्ठा के साथ देना चाहिये।

सब अनुभवों का सारांश यह है कि राख के खाद से पौधों में दूध व रस जमा हो जाते है और इसका परिणाम यह होता है कि उनमे लगने वाले फल तथा दाने मीठे होते हैं।

नगर के नालों का खाद

आधुनिक विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि इस सृष्टि मे कोई भी पदार्थ निकम्मा नही है। सबका कुछ-न-कुछ उपयोग होता ही है। मनुष्य के विष्टा का कितना बहुमूल्य उपयोग किया जा सकता है, इसका उल्लेख हम कर चुके हैं। इसी तरह नगर की गटरों तथा नालो मे बहने वाले घिनौने पदार्थों का भी बहुत ही बढ़िया उपयोग किया जा सकता है।

प्रोफेसर कुटनी ने "निकम्मे पदार्थों का उपयोग" नामक एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। उसमे उन्होंने ससार के सभी प्रमुख शहरों की गटरो मे बहाये जानेवाले पदार्थों की कीमत का वर्णन किया है। उसमे दिल्ली का भी वर्णन है। आप लिखते हैं:— २८२००० जन-संख्यावाले इस शहर के गटरो मे बहने वाले घिनौने पदार्थ तथा इसी प्रकार के अन्य निकम्मे और घृणित पदार्थों से इतना नाइट्रोजन प्राप्त हो सकता है कि जिससे आवश्यकता के अनुसार कम से कम १०००० एकड़ और अधिक से

अधिक ९५००० एकड़ जमीन को खाद मिल सकता है। इस अनुमान से सभी निकम्मे पदार्थों के उपयोग का सहज ही हिसाब लगाया जा सकता है और विचारवान लोग इस बात की कल्पना कर सकते हैं कि प्रति वर्ष कितने करोड़ रुपयों की सम्पत्ति यह देश यों ही खो बैठता है!

संयुक्त प्रान्त के कृषि-विभाग के भूतपूर्व डायरेक्टर मि० मोर्लेण्ड लिखते हैं:---"खेत में गटरों के गन्दे पानी के सींचने से बिना अन्य किसी खाद के दिये ही उनमें तम्बाकू और मक्का की फसलें बहुत अच्छी हो सकती हैं।"

तालाब की मिट्टी का खाद

तालाब की मिट्टी भी खाद के काम में आती है। जिस तालाब में गाँव का पानी बहकर जाता है, उसकी मिट्टी तो और भी अधिक लाभदायक है। क्योंकि ऐसे तालाब में गाँव का कूड़ा कर्कट बहकर जमा होता रहता है। अगर तालाब की मिट्टी में खाद का हिस्सा ज्यादा मिला हुआ हो तो उसे बारीक कर खेत में देना चाहिये और अगर खाद का हिस्सा कम हो तो पहले ऐसे तालाब की मिट्टी को बारीक करके मवेशीखान में बिछा देना चाहिये और जब वह ढोरों के पेशाब से तरबतर हो जावे तब उसे छोटे छोटे टोकरों में भरकर खेत में फेंक देना चाहिये। इससे फ़सल को अच्छा फ़ायदा होगा।

चूने का खाद

चूना भी अत्यन्त महत्व पूर्ण खाद है। प्राचीन यूरोपीय साहित्य के अवलोकन से मालूम होता है कि प्राचीन रोमन लोग खेती की अच्छी उपज के लिये इसके खाद को आवश्यक समझते थे। युरोप के सुप्रसिद्ध कृषि-विद्या विशारद लाउडन महोदय लिखते हैं -"ढोरो के मल-मूत्र के खाद के बाद चूना का खाद के रूप में बहुतायत में उपयोग किया जाता है। यद्यपि गोबर के खाद से इसकी गुण प्रकृति नही मिलती पर अगर यह बुद्धिमत्ता के साथ उचित रूप मे काम में लाया जावे तो इसके फल अधिक टिकाऊ और स्थायी होते हैं। कही २ तो यह गोबर के खाद से भी अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है।" सर जान रसेल महोदय का कथन है कि पौधो के भोज्य पदार्थ मे चूना भी एक आवश्यक पदार्थ है। जिस जमीन मे चूने की कमी है उसमे अच्छी फसल का पैदा होना मुश्किल है। जिस भूमि में खट्टापन बढ़ गया हो उसमे चूना डालने से खट्टापन व कडुवापन जाता रहता है। क्योंकि चूना जमीन को मधुर अवस्था मे रखता है। यद्यपि कुछ पौधे ऐसे है जो अम्लप्रधान यानी खटाम्सवाली जमीन मे फलते फूलते हैं, पर आर्थिक दृष्टि से उनका कोई महत्त्व नहीं है। चूना जमीन पर ऊगी हुई वनस्पति पर रासायनिक प्रभाव डालता है और वहाँ रहे हुए नाइट्रोजन को खुला छोड़ देता है जिससे पौधों को बड़ा लाभ पहुँचता है। इसी प्रकार चूना बहुत शीघ्र

खाद मिली हुई मिट्टी को सड़ी हुई मिट्टी के रूप मे बदल देता है और बाद मे उसी सड़ी हुई मिट्टी क सहायता से या और किसी युक्ति से वह भूमि में उन वस्तुओं को आकर्षित करता है, जो पौधों को फूलने फलने मे सहायता करते हैं। यह कड़ी चिकनी मिट्टी वाली भूमि को नरम करता है और रेतीली तथा ककरीली भूमि को चिकनी करता है। मिट्टी के छेदो को स्वच्छ करता है और पौधों को शक्ति पहुँचाता है। चूना सुमधुर मिट्टी उत्तम कर उन जीवाणुओ की वृद्धि मे सहायता करता है जो जमीन मे रहे हुए कारबन (Organic) युक्त द्रव्य को घुलनशील कर पोधों के भोजन मे बदल देते हैं। जमीन मे अम्लता आ जाने से उसमें रहे हुए उपयोगी जीवाणु उसे फ़ायदा पहुँचाने वाली क्रिया करने मे असमर्थ हो जाते हैं। चूना जमीन की अम्लता को नाश कर इन उपयोगी जीवाणुओ की क्रिया को सहायता पहुँचाता है। इससे चूने के खाद से बिगड़ी हुई भूमि भी फल देने लगती है। चूने के खाद से फल स्वादिष्ट और मीठे हो जाते हैं।

खाद देने की रीति और मात्रा

खेत में देने से पहले चूने को पानी छिड़ककर बुझा लेना चाहिये और उसे तुरन्त खेत मे बराबर फैलाकर देशी हल तथा काँटेदार हेंगा से पृथ्वी मे जोत देना चाहिये। खेत में चूने का ढेर बहुत दिनों तक पड़े रहने से चूने का प्रभाव कम हो

जाता है। चूना कई तरह की फ़सलों के लिये—जैसे नील मूँगफली इत्यादि—बड़ा लाभदायक खाद है। लगभग तीन से चार मन प्रति एकड़ चूना का खाद काफी होता है। यह खाद खेत में बीज बोने से पहले दिया जाता है। जिन खेतों की भूमि में उपजाऊ शक्ति नहीं है उनमें इस खाद के देने से फ़ायदा नहीं हो सकता, क्योंकि उनमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिससे भोजन बनकर पौधों को लाभ हो। प्रति वर्ष चूने का प्रयोग एक ही खेत में न होना चाहिये। चार पाँच वर्ष के बाद आवश्यकता के अनुसार चूने के खाद का प्रयोग करना अच्छा होता है, क्योंकि चूना स्वयं खाद का काम बहुत कम देता है। वह दूसरों से खाद के उपयुक्त पदार्थ निकालता है।

खाद का परिमाण

मद्रास के मिस्टर रावर्टसन प्रति एकड़ १०० से २०० सेर तक चूने के खाद को देना लाभदायक बतलाते हैं। मिस्टर मुकर्जी एम० ए० ने अपनी प्रख्यात पुस्तक "हैंडबुक आफ़ इण्डियन एग्रिकल्चर" में तीन मन प्रति एकड़ तक खाद देने की सम्मति दी है।

जिस भूमि में बहुत से पत्ते वृक्षों से गिर कर मिल चुके हों अथवा जहाँ पत्तों की खाद दी गई हो, उस स्थान पर थोड़ा सा चूना देना लाभकारी होगा। हर प्रकार के बीज या छोटे पौधे के निकट चूना नहीं देना चाहिये। कारण यह जला देने वाली वस्तु है।

यदि किसी फसल को सब से पूर्व उत्पन्न करने की आवश्यकता हो तो भूमि को तैयार करने के समय से पहले थोड़ा चूने के पानी का खाद उसमे दिया जावे, फिर बीज बोया जाय तो फसल बहुत शीघ्र तैयार होगी। चूना बीज बोने के एक दो सप्ताह पूर्व खेत मे देना चाहिये।

चूने के खाद को हर चौथे या छठे वर्ष देना चाहिये। चूना कपास का मुख्य आहार है। इसलिये चूने का खाद कपास को विशेषतया लाभकारी होगा। चौथे वर्ष चूने के खाद का परिमाण प्रथम बार से आधा या चौथाई होगा। चूने का खाद देने के पश्चात् खेत मे हल चला देना चाहिये।

पक्षियों की बीट का खाद

कबूतर, मुर्ग बतक, चिमगीदड़ आदि पक्षियो के बीट का खाद भी बड़ा लाभकारक होता है। यह खाद भी गोबर की तरह गड्ढे मे भर कर तैयार किया जाता है। इसे अकेला नही डालते। दस सेर पानी मे पाव भर खाद मिला कर पौधो पर छिड़का जाता है। इस खाद से शाक-भाजी, उर्द, गन्ने आदि को अच्छा लाभ पहुँचता है।

विशेष खाद

शोरे का खाद

इससे प्राय: सभी फसलो को फायदा पहुँचता है। नोना मिट्टी के खाद मे शोरे का बहुत अंश रहता है। इसलिये यह मिट्टी खाद के काम मे लायी जाती है। आलू, गोभी, चना, गेहूँ, जौ

आदि के लिये शोरा तथा नोना मिट्टी का खाद बड़ा लाभदायक है। दूब की घास तथा अन्य कई प्रकार की घासों के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है। पानी में यह खाद अति शीघ्र घुल जाता है। इसलिये खाद देने के बाद सिंचाई नहीं करना चाहिये। सिंचाई करने के बाद खाद देना लाभदायक है। इस खाद के देने से पौधों की दशा अच्छी हो जाती है, उनके अधिक फल, दाने तथा पत्तियां लगती हैं। पौधों का रंग गहरे हरे रंग का हो जाता है। इस खाद का नतीजा तत्काल देखने में आता है क्योंकि यह खाद शीघ्र ही पौधों को भोजन कराने योग्य हो जाता है। हां, यहां यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि जहां अधिक पानी हो वहां इस खाद का प्रयोग करना ठीक नहीं, क्योंकि पानी के साथ गल कर उसके बह जाने का डर रहता है। इस खाद में नैत्रजन की मात्रा भी अधिक रहती है। खाद देते समय इसके साथ दुगुनी तथा तिगुनी मात्रा में राख तथा मिट्टी मिला कर पौधों पर छिड़कना चाहिये अथवा इसे उनकी जड़ों में देना चाहिये। एक एकड़ में एक से तीन मन तक खाद काफी है। लगभग चालीस मन मिट्टी में इतने खाद का काम चल सकता है। शोरे के खाद में १७ फी सदी नाइट्रोजन और ४ फी सदी पोटाश की मात्रा रहती है।

पोटेशियम सल्फेट

इस खाद का प्रयोग अकसर उन खेतों में किया जाता है जो दुमट मिट्टी वाले होते हैं। जौ, गेहूँ, आलू, गोभी, टोमैटो, मिर्च,

तम्बाकू आदि फसलो को इस से लाभ पहुँचता है। शोरे की तरह इसके लिये, पानी के साथ बह जाने का डर नहीं रहता। अतएव खेत बोने के पहले भी उसे तैयार कर इसे दे सकते हैं। पेड़ों की जड के पास खुर्पी से खोद कर भी इसे देते है। एक एकड़ के लिये एक से तीन मन तक खाद काफी है।

जिप्सम का खाद

यह पदार्थ दक्षिण भारत के ट्रिचनापली, नेलोर तथा राजपूताने के नागोर नामक भाग मे तथा मध्य-भारत के कुछ स्थानों मे पाया जाता है। जले हुए जिप्सम का सिमेन्ट की तरह उपयोग किया जाता है। फलीदार फसल (Leguminous) के लिये इसका खाद अत्यन्त उपयोगी है।

प्राचीन ग्रीक और रोमन लोग भी इस खाद का महत्व समझते थे। अमेरिका और यूरोप मे आलू और लोंग की खेती मे इसका बहुत उपयोग किया जाता है। हिन्दुस्थान की मटियार भूमि मे इसका खाद विशेष लाभप्रद हो सकता है। यह खाद अरहर, चना और अन्य दाल वाली फसलों को (Pulse Crops) बड़ा लाभ पहुँचता है। आलू के लिये भी यह बडा हितप्रद सिद्ध हुआ है।

जिस जमीन मे चूने का अंश कम होता है उसमे चूना पहुँचाने के निमित्त इस खाद का प्रयोग किया जाता है। इसे जमीन मे देने से पौधो का भोजन अधिक बनता है। क्योंकि

जमीन के भीतर के खनीज पदार्थों पर यह बड़ी तेजी से असर करता है। इसके मिलाने से जमीन की उर्वराशक्ति अच्छी हो जाती है। चिकनी मिट्टी वाले खेतो में, जिन मे मिट्टी के अणुओं के बहुत समीप होने के कारण हवा भीतर नही जा सकती, यह खाद देने मे मिट्टी के बड़े-बड़े ढेले बिखर जाते हैं और इस से उन खेतो की जमीन मे हवा का प्रवेश होने लगता है। इससे धरती खुल जाती है। उसका बल बढ़ता है। उसमे उत्पन्न होने वाले पौधे हृष्ट पुष्ट होते हैं।

यह खाद ऊसर जमीन को उपजाऊ बनाने के लिये तो बड़ा ही बहुमूल्य है। बड़े-बड़े कृषि-विद्या विशारदों ने इस सम्बन्ध मे इसकी उपयोगिता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है।

पाठक जानते हैं कि ऊसर भूमि मे कोई फसल भली प्रकार फल फूल नहीं सकती। क्योंकि इस भूमि मे एक प्रकार का खार (सोडियम कार्बोनेट) रहता है, जो पौधों के लिये जहर का काम करता है। जिप्सम का खाद देने से यह खार ऐसी दशा मे बदल जाता है जिससे वह पौधों को हानि नहीं पहुँचा सके। ऊसर जमीन को यह खाद हरियाली से हरा-भरा कर देता है।

खेत के जुत जाने और बोने के लिये तैयार होने पर इसे अच्छी तरह चूर-चूर करके मिट्टी तथा राख मे मिला कर जमीन मे बराबर फैला देना चाहिये और उसके पश्चात खेत बोना चाहिये।

अमोनिया सलफेट

यह एक प्रकार का कृत्रिम खाद है। यह अँग्रेजी खाद बेचने-वालों से प्राप्त हो सकता है। इसका रंग मटमैला होता है। इसमें फीसदी २० अंश नाइट्रोजन रहता है। इससे गेहूँ, पौंडा, ऊख आदि फ़सल को बड़ा फायदा पहुँचता है। जहाँ जमीन की कमजोरी के कारण गन्ना पैदा नहीं होता, वहाँ इस खाद के देने से धरती मजबूत हो जाती है और उसमें ऊख या गन्ना पैदा होने लगता है।

खेत मे डालने के पहले इस खाद को बारीक कर लेना चाहिये। यह खाद खली के खाद की तरह पौधो की जड़ो मे दिया जाता है। इस खाद को देते समय उसमे कुछ मिट्टी और राख मिला देना चाहिये। खरीफ की फसल को यह खाद विशेष लाभ पहुँचाता है। मक्का की फ़सल के लिये यह खाद अत्यन्त लाभ-दायक सिद्ध हुआ है। इसे खली और गोबर के साथ भी उपरोक्त रीत से दे सकते हैं।

हाँ, इसके सम्बन्ध मे एक बात ध्यान मे रखना चाहिये वह यह कि जिस खेत मे चूने का खाद दिया गया हो, उसमें इस खाद को कदापि नहीं देना चाहिये। क्योंकि चूना और अमोनिया के संयोग से वायु उत्पन्न होती है और उसके फल-स्वरूप अमोनिया नष्ट हो जाता है।

यह खाद फी एकड़ एक से तीन मन तक दिया जा सकता है।

खेत की जुताई

अच्छी फसल पैदा करने के लिये जितना महत्व योग्य और अच्छा खाद देने का है उतना ही महत्व अच्छी और गहरी जुताई करने का भी है। क्योंकि यदि अच्छा खाद डाला जाय पर उसका मिट्टी के साथ ठीक मेल न हो सके तो उससे पूरा नतीजा देखने मे न आ सकेगा। खाद का पूरा फल अच्छी जुताई से मिलता है। गहरी जुताई का असर बहुत पड़ता है। उसी से खाद का काम निकलता है। केवल जुताई करने और बिल्कुल खाद न देने से भी कभी-कभी भूमि की उपज शक्ति में उन्नति देखी जाती है। नाना प्रकार की फसले और उनकी बाढ़ तथा उपज पर जुताई का अच्छा असर पड़ता है। उचित समय पर अच्छी रीति से जोती हुई और तैयार जमीन मे जब उत्तम खाद का योग मिलता है तो वह सोने में सुगन्धि का काम करता है। इससे पैदावार बड़ी ही अच्छी होती है।

जुताई से कई प्रकार के लाभ हैं। (१) इससे कठिन मिट्टी नरम हो जाती है और पौधों की जड़ों को अन्दर घुसने और फैलने में बड़ी आसानी होती है।

(२) ज़मीन मे वायु और पानी सरलता से घुस जाते हैं और पौधो की जड़ो तक पहुँच जाते हैं। जमीन मे रहे हुए फसल के लिये लाभकारी कीटाणुओ को प्राणप्रद वायु सरलता से मिलने लगती है, जिससे वे फलते-फूलते है और पौधो को लाभ पहुँचाते हैं। पौधो को नुकसान पहुँचानेवाले कीटाणुओ के जाले नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं तथा जमीन मे रही हुई कई ईलियाँ ज़मीन के बाहर निकल आती हैं और वे पक्षियो की खुराक बन जाती हैं। कहने का मतलब यह है कि गहरी जुताई से जमीन की स्थिति बहुत ही अधिक सुधर जाती है और फसलो को फलने-फूलने के लिये बहुत अनुकूलता हो जाती है। ऊपर हमने गहरी जुताई के लाभो का दिग्दर्शन करवाया है। पर इस विषय मे कुछ अधिक विस्तार की आवश्यकता है। प्रिय विद्यार्थियो! तुम्हे याद रखना चाहिये कि जिस प्रकार मनुष्य को हवा की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार अच्छी फसल के लिये भूमि मे हवा के प्रवेश की आवश्यकता है। भूमि के अन्दर वायु क्यो पहुँचाना चाहिये। यह बात तब समझ मे आ सकती है, जब हम इस बात पर विचार करे कि किसी भी घर का हवादार होना क्यों आवश्यक होता है। जिस प्रकार घरो के लिये स्वच्छ हवा की आवश्यकता होती है ठीक उसी तरह भूमि को भी हुआ करती है। हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि भूमि ठोस नहीं है। वह छोटे-छोटे कणों से बनी है और उन कणो के बीच में खाली जगह है। इसका तात्पर्य यह है कि भूमि मे बहुत ही बारीक छिद्र हैं जो हमें

दिखाई नहीं देते। जुताई इसलिये भी की जाती है कि ये छिद्र बड़े हो जावे, जिससे भूमि भी बराबर सुधर जाय और उसमें हवा खूब अच्छी तरह खेलती रहे।

पूसा में वैज्ञानिक जाँच से यह बात मालूम हुई है कि बरसात के दिनों में भूमि में अगर वायु अच्छी तरह न पहुँचे तो उसका भूमि की बनावट पर बहुत बुरा प्रभाव गिरता है। ई० सन १९१० मे इस विषय के प्रयोग किये गये। गेहूँ के कुछ खेतों मे पानी इकट्ठा किया गया जिससे कि जमीन में बराबर हवा न पहुँच सके। इसका परिणाम यह हुआ कि गेहूँ की पैदावार मे प्रति एकड लगभग १२ मन की कमी हो गई।

इसके अतिरिक्त भूमि मे वायु के प्रवेश से और भी कई तरह के लाभ होते हैं। फलीदार पौधो की जड़ों पर जो गाँठे होती हैं वे हवा से नाइट्रोजन ग्रहण कर पौधों के लिये खुराक तैयार करती हैं। इन जड़ों की गाँठों का मुख्य कार्य हवा से नाइट्रोजन लेकर उसे भूमि मे इकट्ठा करना है। इस क्रिया से खुराक मिलने के कारण फसल को लाभ पहुँचता है।

हिन्दुस्तान मे मिट्टी की बहुत सी ऐसी किस्में है, जिन मे वायु स्वभावत नहीं पहुँचती। इनको उपयुक्त बनाने के लिये इनका अच्छी तरह जोता जाना आवश्यक है।

भूमि मे शुद्ध वायु पहुँचाने के अतिरिक्त गहरी जुताई से और भी अनेक प्रकार के लाभ हैं, जिन मे से कुछ का जिक्र हम ऊपर कर चुके हैं। इस गहरी जुताई से पौधों की जड़े बहुत गहरी

जाती हैं और इससे वे अवर्षण (Drought) का मुकाबला बड़ी अच्छी तरह कर सकती हैं, क्योंकि ज्यादा गहरी हो जाने से उन्हें स्वाभाविक रूप से तरी भी मिलती जाती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जमीन की गहरायी ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है, त्यों-त्यो उसकी तरी भी बढ़ती जाती है। इसके अतिरिक्त जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, फसल में लगने वाले कीड़े फ़सल के बाद भी जमीन के अन्दर प्रवेश कर जाते हैं और वे बारीक बारीक जाले बना कर रहने लगते हैं। गहरी जुताई से जब नीचे की मिट्टी ऊपर आती है तो वे भी जमीन की सतह पर आजाते हैं और सूर्य के प्रकाश के कारण मर जाते हैं। इससे अगली फसल को उन से कम हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है। कहने का सारांश यह है कि गहरी जुताई से फसल को इतना अधिक लाभ पहुँचता है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

गरमी के मौसम की जुताई

कृषि-विज्ञान-वेत्ताओं का मत है कि गरमी के मौसम की जुताई अगामी फसल के लिये बहुत फायदेमन्द होती है। ख़ास कर गेहूँ आदि रब्बी की फसलों के लिये, यदि खेत बहुत ही कमज़ोर न हुआ, तो खाद डालने की अपेक्षा गरमी के मौसिम की जुताई बहुत अच्छी समझी जाती है। यह जुताई किसी मिट्टी पलटने वाले हल जैसे मेस्टन, वाट्स या पंजाब आदि से-खूब गहरी कर देना चाहिये, जिस से खेत उपजाऊ हो जाय।

संयुक्त प्रान्त के कृषि विभाग ने भिन्न-भिन्न स्थानों मे ऐसे बहुत से अनुभव किये हैं और उनसे सन्तोषजनक फल भी मिले हैं। कई जगह जहाँ खेतो मे गरमी की मौसिम मे जुताई की गई थी, वहाँ गेहूँ की पैदावार मे फ़ी एकड़ ५ से ९ मन तक बढ़ती हुई। इस बढ़ती से फ़ी एकड़ कितना ज्यादा फायदा हुआ, इसका हिसाब किसान खुद लगा सकते हैं। इन प्रयोगो से यह भी मालूम हुआ है कि पैदावार और भूसे में बढ़ती होने के साथ ही साथ इससे अन्न का दाना भी मोटा पैदा होता है। इसके अतिरिक्त इससे और भी कई फायदे होते हैं, जिनका वर्णन हम आगे करेंगे।

ऐसे बहुत से किसान हैं जो ज्वार, मूगफली, कपास या गन्ना आदि की फ़सलें कट जाने के बाद अपने खेतों को गीला कर अथवा उस समय की वर्षा से फायदा उठा कर मिट्टी पलटने वाले हलों से उन्हे जोतते हैं। साधारण तौर पर यह रिवाज है कि बरसात शुरू होते ही जब जमीन जुतने लायक हो जाती है तब ही खेतो को जोतना शुरू किया जाता है। पर यह रीति अच्छी नहीं है।

बरसात शुरू होने पर जब पहली जुताई की जाती है, तो बरसात का बहुत सा पानी बह जाता है, क्योंकि उस समय जमीन कड़ी रहती है और इससे वह ज्यादा पानी सोखने नही पाती। इसके सिवाय एक बात और है। किसानो के पास उस समय बहुत काम रहता है। रब्बी के खेतो को जोतने के अलावा उन्हे खरीफ के खेत भी उसी समय तैयार करके बोने पड़ते हैं। इससे गेहूँ के

खेतो का निकास भी ठीक नहीं होने पाता, जो कि बहुत जरूरी होता है। गेहूँ के खेतों को बराबर न करने और उनके पानी के निकास को ठीक न करने से फ़सल को भारी हानि पहुँचती है। इसलिये हर एक काश्तकार को चाहिये कि वह जाड़ो के दिनों में ही, जब कि उसके पास ज्यादा काम नहीं रहता, अपने खेतो को ठीक कर ले।

जिस जमीन में गेहूँ बोना हो उसे पहले की फ़सल (जैसे गन्ना, ज्वार, कपास आदि) से खेत खाली हो जाने के बाद साफ करके खूब अच्छी तरह जोत डालना चाहिये। यदि इस समय बारिश हो जावे तो अच्छा है। अगर बरसात न हो तो नहर, नालो, तालाबो या कुओं से खेत को सींच डालना चाहिये, जिससे कि खेत में हल खूब गहरे पैठ सके व जुताई में ज्यादा तकलीफ़ न हो। यह बात जरूरी है कि कुए से आबपाशी करने से काश्तकार को ज्यादा खर्च होगा, पर यह खर्च उस फायदे के मुकाबले में, जो ज्यादा पैदावार होने से होगा, कुछ भी न होगा।

ऊपर बतलाई हुई रीति से जनवरी, फरवरी, मार्च या अप्रैल में खेत को जोत डालने से बहुत से फायदे होते हैं। गर्मियों में खेत के जुतने से मिट्टी बहुत गहराई तक पोली हो जाती है और बरसात का बहुत सा पानी, जो जमीन की बिना जुती हुई हालत में इधर-उधर बह जाता है, खेती ही में समा जाता है और आगामी फ़सल को पानी की कमी से ज्यादा नुकसान नहीं पहुँच पाता है। ऐसे खेतो में रब्बी की बुआई के वक्त खेत तैयार करने के लिये

बारिश न भी हुई तो भी बोनी का काम शुरू किया जा सकता है; क्योंकि समय पर जुताई करने से इस समय मिट्टी मुलायम रहती है और उसमें नमी भी होती है।

जो खेत गरमी के दिनों में नहीं जोते जाते, उनमें रब्बी के फ़सल के वक्त बिना सिंचाई के बीज बोना कठिन हो जाता है। गरमी की जुताई में यह बहुत बड़ा फ़ायदा होता है कि उसमें आगामी फ़सल को कीड़े मकोड़ों से नुक़सान नहीं होने पाता। क्योंकि जुते हुए खेत पर तेज धूप पड़ने से सब कीड़े-मकोड़े और उनके अण्डे बच्चे, जो कि आने वाली फ़सल को नुकसान पहुँचाते हैं, मर जाते हैं। हम तो काश्तकारों को दावे के साथ कह सकते हैं कि अगर उनकी फ़सल को कीड़े या दीमक ज्यादा सताते हों तो वे गरमी की जुताई के प्रयोग को जरूर अजमा कर देखें। उन्हें इस प्रयोग से साफ़ तौर पर मालूम हो जायगा कि गरमी की जुताई से कितने फायदे होते हैं। हां, इसी सिलसिले में उन्हें एक काम और करना चाहिये। वह यह कि खेत के जुतने के बाद उसमें की फ़सल की जड़ें, जिनमें अकसर कीड़े व उनके अण्डे बच्चे छिपे रहते हैं, इकट्ठी करके जला दी जावें। गरमी की जुताई से खरपतवारों के बीज, जो फ़सल को बहुत हानि पहुँचाते हैं, नष्ट हो जाते हैं।

जुते हुए खेत पर गरमी का असर पड़ने से बहुत फायदे होते हैं। पहला फायदा यह है कि खेत में की खुराक जो पानी में घुलने वाली हालत में नहीं होती, ऐसे रूप में हो जाती है कि

पौधा उसे आसानी से खींच सके। दूसरा फायदा यह है कि मिट्टी में भुरभुरापन आजाता है, जिससे आगामी फ़सल को लाभ होता है। तीसरा फ़ायदा यह है कि जुती हुई जमीन मे हवा पैठती है और वह उसकी उपज-शक्ति को बढ़ाती है। चौथा फायदा यह है कि गहरी जुताई से ज़मीन गहराई तक मुलायम हो जाती है, जिस से पौधे की जड़े दूर दूर तक ज़मीन मे फैल कर अपनी खुराक ज्यादा मात्रा मे ले सकती हैं। इस प्रकार ज्यादा खुराक मिलने से पोधा मजबूत रहता है और उसे बारिश के साथ चलने वाली तेज हवा नुकसान नहीं पहुँचा सकती।

हम ऊपर कह आये हैं कि गेहूँ के लिये खाद देना उतना उपयोगी नहीं, जितना कि जुताई करना। कई तजुर्बों मे यह अच्छी तरह सिद्ध हो गया है कि केवल अच्छी जुताई करने ही से अच्छी पैदावार ली जा सकती है। ज्यादा खाद देने से पौधे बहुत ऊँचे बढ़ कर गिर जाते हैं, लेकिन यह बात केवल अच्छे खेतों के लिये है। जो खेत उम्दा मिट्टी वाले नहीं होते, उनमे जुताई के साथ थोड़े खाद की भी जरूरत होती है। संयुक्त प्रान्त में साधारण तौर से ईख के बाद गेहूँ बोया जाता है। ईख में काफी खाद डाला जाता है, इसीलिये ईख के बाद गेहूँ की पैदावार अच्छी होती है, क्योंकि ईख मे डाला हुआ कुछ खाद उसी फ़सल के काम में नहीं आ सकता। हम यहां यह कह देना आवश्यक समझते हैं कि अगर गेहूँ के पहले फ़सल मे खाद न दिया गया हो अथवा खेत कमजोर हो तो केवल जुताई ही से काम नहीं

चल सकता। ऐसी हालत में १० से १२ मन तक फी एकड़ अण्डी की खली, हरा खाद, हड्डी का चूरा अथवा गोबर का खाद देकर खेत की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाना चाहिये।

गेहूँ आदि रब्बी की फसलों के लिये हमने जो गर्मी की जुताई के फायदे बतलाये हैं, ठीक उसी तरह के फायदे इस जुताई से कपास की फसल को भी होते है। कपास में भी ज्यादा खाद देने से पौधे की शाखे व पत्ते बढ जाते है और गूलर (डड्डू) कम आते है। इसलिये थोड़े से गोबर के सड़े हुए खाद को राख व पत्तों के सड़े हुए खाद के साथ खेत मे डालने व गर्मी की मौसिम में खूब अच्छी जुताई करने पर ही पूरी पैदावार ली जा सकती है।

साधारण तौर पर कपास गेहूँ के बाद बोया जाता है। गेहूँ के कटते ही खेत को सींच कर हल से जोत डालना चाहिये। आम तौर पर किसान बरसात शुरू होने पर अपने खेत को जोत कर उसमे कपास बो देते है। ऐसा करने से पैदावार बहुत कम होती है और फसल को कीड़े मकोड़े भी ज्यादा हानि पहुँचाते हैं।

खास कर जेठ के महिने मे सिचाई करके खेत मे कपास बो देने से कपास की पैदावार अधिक होती है। पर यदि बरसात शुरू होने पर ही कपास बोना हो तो गेहूँ आदि की फसल कट जाने के बाद, जितना जल्दी हो सके उतना जल्दी, खेत को साफ करके जोत डालना चाहिये। अगर गर्मी की मौसम मे अच्छी

जुताई की गई तो तीन मन से ५ मन फी एकड़ तक पैदावार बढ़ाई जा सकती है। संयुक्त प्रान्त के कृषि—विभाग के कई अनुभवों में भी यही परिणाम निकले हैं।

भूमि में वायु प्रवेश के अन्य उपाय।

हमने ऊपर यह दिखलाया है कि गहरी जुताई से भूमि मे वायु प्रवेश का मार्ग बहुत कुछ खुल जाता है और इससे फसल को बहुत ही लाभ पहुँचता है। पर यहाँ यह बात ध्यान मे रखना चाहिये कि भूमि मे वायु प्रवेश के लिये केवल मात्र जुताई ही साधन नहीं है। वैज्ञानिकों ने इसके और भी उपाय बतलाये हैं। भारतवर्ष तथा अन्य बहुत से देशो मे बहुत से लोग इस बात का पता लगाने मे बहुत जोरों से लगे हुए हैं कि भूमि को हवादार बनाने का सबसे अच्छा उपाय कौनसा है। अमेरिका का युक्तप्रदेश इसमे अग्रगण्य है। आरीओना मे महाशय केनन ने, वाशिंगटन के कार्नेजी इन्स्टिट्यूशन मे सुप्रसिद्ध कृषि-विद्या विशारद मि० क्लीमेन्ट्स ने और जोन्स हाफकिन्स विश्व-विद्यालय मे डा०लिविंङ्गस्टोन ने ऐसी बहुत सी नई बातों को ढूढ निकाला है जिनमे हवा को भूमि मे पहुँचाने मे सहायता मिले। ग्रेट ब्रिटेन की राउथमस्टेड और लौंगारश्टन प्रयोग शालाओं मे भी इस बात का पता लगाया जा रहा है। किसी न किसी समय ये बातें बहुत ही सहायता दे सकेंगी और यह मालूम होता है कि कृषि मे इनसे ---- उन्नति होगी।

बीज का चुनाव

अच्छी फसल पैदा करने के लिये योग्य खाद और गहरी जुताई के साथ साथ निरोग और पुष्ट बीजो की भी आवश्यकता है। अमेरिका और युरोप मे इस बात की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। वहाँ बीज बेचने वालों की दुकाने हैं जो अच्छे से अच्छे चुने हुए बीजों का किसानो मे प्रचार करतीं हैं। पर हिन्दुस्थान मे यह बात नही है। हमने देखा है कि कई वक्त बेचारे निर्धन किसान खराब से खराब बीज लेने मे मजबूर होते हैं। इससे उनकी खेती पर बहुत बुरा असर पड़ता है। क्या ही अच्छा हो अगर यहाँ भी युरोप और अमेरिका की तरह निरोग और पुष्ट बीजो की दुकाने खोली जावें। इस सम्बन्ध मे सहकारी समितियों ने कुछ कार्य किया है। पर वह इतने थोड़े परिमाण मे है कि उनसे अधिकांश किसान फ़ायदा नही उठा सकते। हम समझते है कि बीजो को प्राप्त करने मे अगर "चुनाव पद्धति" से काम लिया जाय तो बड़ा लाभ हो सकता है। "चुनाव पद्धति" का मतलब हमारे बहुत से पाठक नहीं समझे होंगे अतएव हम उसका खुलासा करना आवश्यक समझते हैं। पहले पहल जिस फसल को वे बोना चाहें—

उसके बीजों मे से सबसे अच्छे निरोग और पुष्ट बीजों को चुनें और उन बीजों को वे अपने खेत बोवे, और उसमें योग्य खाद देने तथा सिंचाई करने का पूरा पूरा ध्यान रखे क्योंकि इनका बीजों की बनावट पर बहुत असर गिरता है। जब फ़सल आवे तब खेत मे से निरोग और पुष्ट भुट्टों को वे छांट ले और उनका बीज निकालें। उन बीजों मे से भी वे अच्छे से अच्छे बीज अलग करें और उन्हे फिर पहले की तरह बोवे। भुट्टा या फल आने पर फिर अच्छे बीजों का चुनाव करे। इस प्रकार कुछ वर्षों तक करते रहने पर बहुत ही अच्छे बीजों की एक जाति पैदा हो जायगी और उन्हे बोने मे फ़सल की काया पलट हो जायगी। पश्चिमी देशों ने इसके अनुभव किये है और उन्हे इस कार्य मे बड़ी सफलता मिली है। हम यहाँ पर जर्मनी का एक उदाहरण देते है। पाठक जानते है कि कुछ वर्षों पहले मनुष्य गन्ने या खजूर को छोड़कर किसी चीज़ की शक्कर नही बनाते थे। गन्ना अधिकतर उष्ण देशो मे होता है। युरोप के ठंडे देशो मे उसकी कम पैदायश होती है। इसलिये गरम देशो से युरोप को शक्कर जाया करती थी। इसमे अधिक खर्च पड़ता था और दिक़्क़त भी उठानी पड़ती थी। जब जर्मनी की सरकार ने यह देखा कि देश मे शक्कर की बहुत अधिक माँग है और गन्ने की खेती के लिए वहाँ की आबहवा अनुकूल नहीं है तो उसने बड़े बड़े कृषि-विद्या-विशारदों की एक सभा की और उनसे यह कहा कि गन्ने के सिवाय किसी ऐसे पदार्थ से शक्कर निकालने की योजना की जाय जो जर्मनी मे आसानी से

पैदा हो सके। बड़े बड़े कृषि-विद्या-विशारद इस खोज में लगे। बड़ी खोज के बाद उन्हे मालूम हुआ कि गन्ने के अतिरिक्त और भी बहुत से पेड़ों मे शक्कर का अंश होता है। परन्तु वह इतना कम होता है कि उसे निकालने का खर्चा बर्दाश्त कर मनुष्य उसे लाभ के साथ बाज़ारों मे नही बेच सकता। इस पर सरकार ने उनसे कहा कि आप लोग कोई ऐसी युक्ति निकालिये जिससे उन पेडों मे रहा हुआ शक्कर का भाग अधिक बढ़ाया जा सके। वैज्ञानिक इस बात की खोज करने लगे। उन्होने चुकन्दर के झाड़ को लिया। यह कहने की आवश्यकता नही कि चुकन्दर मे शक्कर का भाग बहुत कम होता है। वे उसे बढ़ाने का प्रयत्न करने लगे। अन्वेषण करते-करते उन्हे यह मालूम हुआ कि चुकन्दरो मे शक्कर एक ही परिमाण मे नहीं होती। किसी मे कम होती है और किसी मे अधिक। चुकन्दर का बीज पहले बिना जॉच-पडताल किये हुए उसी भाँति मिलवा बो दिया जाता था जैसा कि हमारे यहाँ के किसान बीजो को मिलवा बो देते हैं। इन वैज्ञानिकों ने रासायनिक विश्लेषण द्वारा जॉच पड़ताल करके जिन चुकन्दरो मे शक्कर का भाग कम था उन्हे अलग बोया और जिनमे अधिक था उन्हे अलग। जिस खेत मे अधिक शक्कर वाले चुकन्दर बोये गये थे उनके फलो की जाँच करने पर यह मालूम हुआ कि साधारण चुकन्दरो की अपेक्षा इनमें शक्कर का अधिक हिस्सा है। पर इन चुकन्दरो मे भी शक्कर का समान अंश नहीं मिला। किसी में ज्यादा और किसी मे कम मिला। फिर अधिक शक्कर वाले चुकन्दर

छाँट कर बोये गये। इनमें और भी अधिक परिमाण मे शक्कर का अंश मिला। इस प्रकार की क्रिया-प्रक्रिया से दिन ब दिन चुकन्दरों में शक्कर का अंश बढ़ाया गया। जब वह इतना अधिक बढ़ गया कि उनमे से शक्कर निकाल कर बेचने से उचित लाभ होसके, तब उनका बीज चारों ओर देश के किसानो मे बाँटा गया। वर्षों के परिश्रम और तजुर्बे के पीछे जर्मनी ने इस व्यवसाय मे खासी तरक्की करली। उसका प्रभाव युरोप के अन्य देशो पर भी पड़ा। इस समय वहाँ ५ लाख एकड़ भूमि मे चुकन्दर बोया जाता है। एक एकड मे लगभग ४०० मन चुकन्दर पैदा होता है। यहाँ पर यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि ५० वर्ष पहले मुश्किल से १०० मन चुकन्दर से ५ मन शक्कर निकलती थी। आज उसका परिमाण बढ़कर २० मन हो गया है। वैज्ञानिको ने विज्ञान के बल से चुकन्दरों मे शक्कर के अंश को चौगुना कर दिया और इस भाँति देश की सम्पत्ति मे आशातीत वृद्धि की।



आबपाशी

खेती की उन्नति के लिये आबपाशी की कितनी आवश्यकता है, यह बतलाने की जरूरत नहीं। दूसरे शब्दो में अगर हम यह कहे कि आबपाशी कृषि उन्नति का जीवन है, तो इसमे तिलमात्र भी अतिशयोक्ति न होगी। पाश्चात्य देशों मे कुछ वर्षो के पहले

जो लाखों एकड़ पड़त जमीन पड़ी हुई थी, वह आबपाशी के द्वारा हरी भरी और उपजाऊ बना दी गई है। हिन्दुस्थान में अकाल बहुत पड़ते हैं। इन अकालों का कारण, जहाँ तक हम समझते हैं, वर्षा की कमी के बजाय वर्षा की अनियमितता अधिक है। हिन्दुस्थान के एक नामी अर्थशास्त्रज्ञ का कथन है कि "हिन्दुस्थान में वर्षा काफी होती है, पर वह कभी २ अनियमित रूप से हो जाती है। इसी से अकाल पड़ते हैं। अगर जल संचय कर आबपाशी करने का यहाँ उचित प्रबन्ध हो तो इन अकालों की संख्या और भीषणता में बहुत कमी आसकती है।"

आबपाशी का प्रश्न अति महत्वपूर्ण है। इसमें कई प्रकार की जटिलताएँ भी हैं। कहीं २ के कुछ किसानों का कथन है कि फ़सल के लिये कुवे का जल (Well-water) हानिकारक होता है। पंजाब और यू०पी० के कई प्रान्तों के अनुभवी किसानों का कथन है कि जहाँ बहुत समय से नहरों के द्वारा आबपाशी (Canal Irrigation) की जारही है, वहाँ कुवे के जल द्वारा आबपाशी करने से विशेष लाभ होता हुआ दिखाई दिया है। साथ ही यह भी पाया जाता है कि वर्षा ऋतु के आरम्भ में फसल को जैसा फ़ायदा वर्षा के पानी से पहुँचता है, वैसा न तो नहरों के जल से पहुँच सकता है और न कुवों के जल से। अगर कुवे नहर तथा तालाब का जल किसी विशेष स्थिति में फ़सल के लिये हानिकारक होता है और वर्षा का जल लाभप्रद सिद्ध होता है, तो हमें आबपाशी की किसी भी योजना का निर्माण

करने के पहले इन सब प्रकार के लाभ व नुकसान पर पूरा २ विचार करना चाहिये। इसके अतिरिक्त आबपाशी की एक समस्या यह भी है कि जुदी २ फसलों पर आबपाशी के जुदे २ असर होते हैं। शिवपुर के प्रयोग-क्षेत्र में यह देखा गया है कि जहाँ नहरो का जल आलू व गोभी को फ़ायदा पहुँचाता है, वहाँ वह मटर, चवला तथा तुवर आदि की फसल को नुक़सान पहुँचाता है। मई व जून मे पैदा होनेवाली फसलों को नहरो की आबपाशी से अधिक फायदा पहुँचता है। इन सब बातो के अन्तर्गत वैज्ञानिक सिद्धान्त हैं, जिन पर विचार करने के लिये यहाँ अवसर नहीं है। हम यहाँ इस प्रकार की परिस्थिति मे कुछ व्यवहारिक बाते कहते हैं जिनकी ओर हमारे योग्य महानुभाव ध्यान देंगे।

हम पहले कह चुके है कि आबपाशी कृषि उन्नति का जीवन है। इसमे तिलमात्र भी संदेह नहीं कि अगर आबपाशी का प्रचार और प्रबन्ध हो जाय तो इस भूमि के देहातो मे सोने चाँदी की नदियाँ बहने लगे। पीयत की जमीन (Irrigated land) में जो फ़सलें पैदा होती है, उनका अधिक मूल्य आता है। पीयत का कपास, पीयत की मूँगफली, हलदी, सरसो, अदरक आदि चीजो की कीमत अधिक मिलती है। मानवी स्वास्थ्य के लिये विनाशकारी अफ़ीम की खेती बन्द हो जाने से किसानो को जो आर्थिक नुक़सान पहुँचा है, उसकी क्षतिपूर्ति उपरोक्त चीजों की बोनी से हो सकती है। और भी कई ऐसी चीजें यहाँ पर बोई जा सकती हैं, जिनकी पैदावार केवल पीयत से होती है और

जिनसे किसानों को आशातीत लाभ पहुँच सकता है। हमारा विश्वास है कि अगर हमारे मध्य भारत के देशी राज्य आबपाशी के कामों में काफी धन खर्च कर अपने राज्य मे रहे हुए आबपाशी के साधनों का पूरा २ उपयोग करे तो जहाँ किसानो की उन्नति मे एक प्रकार का आश्चर्यकारक परिवर्तन होगा, वहाँ राज्यो की आमदनी मे भी प्रशंसनीय वृद्धि होगी और इससे राज्यों के पास प्रजा-हितकारी अन्य योजनाओं को लेने के लिये साधन उपस्थित हो जायेंगे। अब हम इस बात पर विचार करना चाहते हैं कि देशी राज्यो मे यहाँ की मौजूदा परिस्थिति के अनुसार किस प्रकार आबपाशी का काम शुरू किया जावे। हमारा खयाल है कि सबसे पहले पुराने निवानों की मरम्मत का काम हाथ मे लेना चाहिये। देहातों मे हमने देखा है कि कई सौ निवान बेमरम्मत पड़े हुए है। अगर इन कुवा की मरम्मत की जावे और उनकी खुदाई की जावे तो इसमे खर्चा भी अधिक न होगा और कम खर्च मे किसानो और राज्यो दोनों को बहुत बड़ा लाभ पहुँचेगा।

इन विविध प्रकार के निवानो मे कुवे सस्ते बन सकते हैं और इसीसे किसान लोग कुवो को बनवाना ज्यादा पसन्द करते हैं। पर साथ ही मे यह बात भी है कि जहाँ पानी ज्यादा गहराई पर निकलता है, वहाँ उनके बनवाने मे अधिक मूल्य पड़ता है और सिंचाई मे मुश्किल होने से परिश्रम भी अधिक करना पड़ता है। ऐसे स्थानों पर जहाँ कुवो मे बहुत गहराई पर पानी निकलता

है, वहाँ नालों या छोटी नदियों मे बाँध बाँधकर सिंचाई का प्रबन्ध करने से अधिक लाभ हो सकता है। यह सिंचाई का प्रबन्ध नहरों द्वारा या छोटी ओडियो के द्वारा करना मुफीद है। इस प्रकार 'बाँध' बाँधकर जल संचय करने से या तालाब बनवाने से उसके आसपास के कुवो को भी विशेष लाभ पहुँचता है, क्योंकि उक्त जल संचय से झरनो द्वारा कुवो मे पानी जायगा और इससे उनमे भी पानी की इफरात हो जायगी। इस प्रकार के बाँध बाँधने से एक दूसरा फायदा यह भी है कि पशुओं को सुभीते से पानी मिल जायगा और उसके लिये कुवे मे पानी निकालने का जो परिश्रम होता है, उसकी बचत होगी। इतना ही नहीं, इसके द्वारा कम वर्षा होनेवाले वर्षों मे भी कुछ महीनो तक किसानो को पानी मिलेगा, जिससे उनके कुवों का पानी खर्च न होकर जैसा का तैसा बना रहेगा। और इस प्रकार बाँध का पानी सूख जाने पर किसान अपने कुवो के पानी का उपयोग मक्का की बोनी व कपास के खेत को सींचने मे कर सकेंगे। इस प्रकार ये बाँध बड़े उपयोगी होंगे और पानी की कमी के कारण सूखनेवाली फ़सल को जीवन-दान देंगे। यदि ये जल्दी सूख भी गये तो इनके सोतो द्वारा ज़मीन मे नमी बनी रहेगी और कुवों व झिरो का पानी कम न होने पायगा। ये बाँध खासकर उस ज़मीन के लिये उपयोगी होंगे, जिसके अन्दर की तह मे काले पत्थर होंगे अथवा जो अधिक गहरी व पीली होगी।

इस प्रकार बांधों या तालाबो का फायदा न केवल उसी ग्राम

के लोग उठा सकेंगे, जिसमें वे बने हों, वरन् आसपास के गांव के लोगों को भी उनका फ़ायदा मिलेगा और उनके मवेशी उनमें पानी पी सकेंगे। इस प्रकार के जलसंचय मे देश की बाग़ायत को भी बहुत लाभ होगा।

आबपाशी से कपास की पैदावार मे तिगुना फर्क पड़ जाता है। माल मे जितना कपास पैदा होता है उससे पीयत मे तिगुना होता है। कपास के लिये तीन पानी बस हैं। यदि खरीफ का कपास बोने के पहिले भी जमीन में एक दफा सिचाई कर दी जाय तो बरसात शुरू होने के पहले ही फसल बो दी जासकती है, जिससे वह ठंड व अन्य मौसमी हालतो मे होने वाले नुकसान से बचकर खूब बढ़ सके।

इसी प्रकार यदि निवानो की दुरुस्ती कर सॉटो की खेती की जाने लगे तो शक्कर व गुड तैयार हो सकते हैं और इससे किसानों का बहुत सा फायदा हो सकता है। इस प्रकार जिन चीजों के लिये हमारा हजारो रुपया विदेशो को जाता है और जिन चीजों को खरीदने के लिये हमे दूसरो पर निर्भर रहना पडता है, वे चीजें हम अपने आप तैयार कर सकेंगे।

ट्यूब कुंए और सिंचाई

हमने ऊपर यह दिखलाया है कि आबपाशी की क्या उपयोगिता है और वर्तमान परिस्थिति मे उसके लिये उपयुक्त साधन किस प्रकार उत्पन्न किये जा सकते हैं। हमने आबपाशी

या सिंचाई की व्यवहारिक योजना रखो है। अब हम अपने पाठकों का ध्यान आबपाशी की एक नई रीति की ओर आकर्षित करते हैं। यह रीति न तो निरन्तर बहने वालोनहरों को सी है और न साधारण कुओं की सी। किन्तु यह इन दोनो के बीच की कही जा सकती है। यह रीति टयूब* के कुओं की है। इन कुओ से भूमि का पानो छन कर बाहर आता है। इन कुंओ से जमीन की गहरी सतह का पानो पम्प लगा कर निकाला जाता है। ये पम्प तेल के इञ्जिन द्वारा चलाये जाते हैं। ये कुएं लगभग २५० फोट गहरे होते हैं। इनसे २०० से ४०० एकड़ तक भूमि सींची जा सकती है। इन्हे एक प्रकार की छोटी-मोटी नहरें समझ लीजिये। कृषि-विद्या-विशारदों का कथन है कि संयुक्त प्रदेश की सी पानी सोखने वाली भूमि मे इनसे बहुत अच्छी सिंचाई हो सकतो है। दिन रात बहने वाली नहरें ऐसी भूमि के योग्य नहीं होतीं। इसके दो कारण हैं। एक तो इनका पानी भूमि में अधिक समा जाने से मालगुजारी मे कमी आजाती है और दूसरा यह कि आसपास की भूमि मे पानी भर जाने से बहुत हानि होती है। टयूब के कुंए, अगर सफल हो जावे, तो वे अधिक भूमि को जोतने मे तो सहायता देते हो हैं, किन्तु इसके साथ ही यह भी सम्भव है कि इनसे सिंचाई के विषय की जांच करने में अधिक सहायता मिले। इन टयूब के कुओ से निम्न लिखित बातो का पता सहज ही में लग सकता है—

* टयूब का अर्थ नली होता है—

(१) इन कुओं से कितना पानी निकलता है।

(२) इस पानी के सींचने में कितना खर्च बैठता है।

(३) इनसे कितनी सिंचाई हो सकती है।

(४) इनसे निकला हुआ पानी खेतों तक पहुँचते पहुँचते कितना बर्बाद हो जाता है।

(५) इस पानी से जो फसलें होती हैं, वे कैसी होतीं हैं और भूमि धीरे-धीरे किस तरह सुधरती है।

इन सब बातों की खोज हो जाने से टयूब के कुओं की सिंचाई के लाभ और हानि ज्ञात होने लगेगी। इससे यह भी मालूम हो जायगा कि किस फसल के लिये कितने जल की आवश्यकता है।

देहातों की दशा सुधारने के लिये जिन बड़े-बड़े कामों को करने की आवश्यकता है, उनमें से टयूब के कुओं का उपयोग भी एक हो सकता है। पर अभी तक विशाल पाये पर इनका उपयोग नहीं किया गया। पंजाब के लिये यह सोचा जा रहा है कि सतलज के पानी से बिजली पैदा करके अमृतसर, लाहौर और देहली में पहुँचाई जावे। जिस प्रकार अमृतसर में टयूब के कुंए चलाये जाते हैं, उसी तरह सतलज के जल से पैदा की हुई बिजली की सहायता से टयूब के कुंए चलाये जासकते हैं और उनसे बहुत लाभ हो सकता है। पहाड़ों के पानी में जो शक्ति भरी हुई है और भूमि के अन्दर जो अथाह पानी भरा है, उसको टयूब के कुओं द्वारा काम में ला सकते हैं।

ट्यूब के कुओ में अभी तक कुछ न्यूनताएँ हैं। एक तो यह है कि इन कुओं को चलनियों के छिद्र कभी-कभी चूने की कंकरियो से बन्द हो जाते हैं। इनके बन्द होने से बड़ी हानि होती है। कोई ऐसा उपाय ढूंढ़ निकालना चाहिये, जिस से ये छिद्र बन्द न हो। अमेरिका में इन ट्यूब के कुंओं की चलनियों को आठवें दसवे वर्ष बदल देने की रीति प्रचलित है।

ट्यूब के कुओं के विषय में डाक्टर डायसन के विचार

बंगाल के स्वास्थ्य विभाग के भूतपूर्व कमिश्नर डॉक्टर डायसन ने इस सम्बन्ध में खोजकर एक नोट लिखा है उस में वे लिखते हैं ❀।

"ट्यूब के कुओं के सम्बन्ध में मेरा अनुकूल मत है। सैय्यदपुर (बङ्गाल) में जाँच पड़ताल कर मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि शुद्ध और स्वच्छ जल प्राप्त करने के ये बहुत ही सरल साधन हैं। इतने पर भी मै इस वक्त इनके सर्वत्र उपयोग (Universal use) की सिफारिश नही कर सकता। क्योकि सब प्रकार की भूमियों में ये सफल नही होते। हाँ, जिस भूमि मे ये सफल होते हैं, वहाँ तालाब या साधारण कुओ से ये अधिक लाभकारक होते हैं। वहाँ इन से बड़ी किफायत होती है और इनका काम भी बड़ा संतोषदायक होता है। ये सैयदपुर जैसी पोली और रेतीली भूमि

❀ Hand Book of Agriculture by Mukejee Page 133

के लिये अधिक उपयुक्त होते हैं। पत्थरीली भूमि या ऐसी भूमि में जिस के नीचे कड़ी चट्टानें हैं ये कामयाब नहीं हो सकते ! नदी नालों के रेतीले किनारों पर तथा सूखे हुए तालाबों के मध्य में यह बड़ा अच्छा काम कर सकते हैं और ऐसे स्थानों मे यह ऐसे जल-सञ्चय का पता लगा सकते है जो अथाह होता है,"

हिन्दुस्थान मे कई जगह यह कुवे सफलता पूर्वक कार्य कर रहे है। पाँडिचरी में इस प्रकार के कई कुवे हैं। बड़ौदे मे भी इस दिशा मे कुछ कार्य हुआ है। अभी दो तीन वर्षों के पहले इन्दौर मे भी दो ट्यूब कुओं की योजना हुई थी।

पम्प के द्वारा आबपाशी

पाठक जानते हैं कि कई स्थानों पर पम्पो के द्वारा खेतो की सिंचाई की जाती है। ये पम्प फायर एञ्जिन (अग्नि यन्त्र) द्वारा चलाये जाते हैं और इन से सिंचाई आसानी से हो सकती है। पर ये उन्हीं मनुष्यो के काम के है जिनके पास सैकड़ों एकड़ जमीन है और जो इन्हे खरीदने की ताकत रखते हैं। ग़रीब किसानो के लिये इनका प्राप्त करना दुर्लभ है। यही यन्त्र आग बुझाने में भी काम आसकता है।

इसके अतिरिक्त परशियन व्हील, वाटरलिफ्ट इजिप्शियन व्हील आदि अनेक यन्त्र है जिनका विस्तृत विवेचन करने की आवश्यकता नहीं।

सिंचाई की रीति

सिंचाई के समय इस बात पर अवश्य ध्यान देना चाहिये कि फ़सल को आवश्यकता से अधिक पानी न दिया जावे। हम देखते हैं कि खेत में बनी हुई पानी की नालियाँ इतनी ख़राब होती हैं कि खेत में पहुँचते-पहुँचते बहुतसा पानी ख़राब हो जाता है। इसलिये, अगर सम्भव हो, तो पानी की नालियों को पक्का बना लेना चाहिये। यदि कम खर्चे में काम निकालना हो तो चिकनी मिट्टी से नालियाँ बना ली जावे। नालियों को इतनी मज़बूत बना लेना चाहिये कि जिससे पानी बहकर बाहर न निकलने पावे। नालियों के दोनो बाज़ू पर दूब लगा दी जाय तो और भी अच्छा है। नालियाँ ऐसे स्थानों में बनाई जानी चाहिये कि जहाँ से सब खेतों में पानी पहुँचाया जा सके। नालियों का ढाल प्रति सौ फ़ुट की लम्बाई में ६ इञ्च से १२ इञ्च तक रखा जाय। नालियां काफ़ी चौड़ी होनी चाहिये।

सिंचाई की रीतियां

भिन्न-भिन्न प्रकार की फ़सलों को जुदी-जुदी रीति से पानी दिया जाता है। गमले, बक्स, नरसरी आदि में बोए हुए पौधों को महीन छेद वाले झारे से पानी दिया जाता है। अकसर किसान फ़सलें क्यारियों में बोते हैं और इन्हीं में सिचाई के वक्त पानी भर दिया जाता है। पहले लिख आये हैं कि क्यारियों में

फ़सल बोने से, निराई, गुड़ाई में मेहनत, वक्त और पैसा ज़्यादा ख़र्च होता है। इसके अलावा गोभी, करमकल्ला, सेम, आलू आदि कई फ़सलें ऐसी हैं जो क्यारियों मे बोने से उतनी अच्छी नहीं आतीं और इसीलिए इन्हे रागियो (Ridges) पर बोते हैं।

खेत के ढाल के अनुसार लम्बी नालियां बनाई जावे। रोपे नालियो पर लगाए जावे और पानी नालियों मे छोड़ दिया जावे। इससे लाभ यह होगा कि जड़ो को तो पानी मिलता रहेगा और पानी से पत्ते ख़राब नहीं होंगे। दूसरे लम्बी नालियों में पानी धीरे-धीरे भरता है, जिस मे मिट्टी खूब पानी सोख लेती है। कभी-कभी दो-दो, तीन-तीन नालियों मे एकदम पानी छोड़ दिया जाता है। ऐसा करने से नालियां जल्दी पानी से नहीं भर पातीं। इससे मिट्टी ज्यादा पानी सोख सकती है। यह पद्धति तभी काम मे लाई जाती है जब कि खेत ज्यादा ढालू न हो।

बड़ी नाली

छोटी नाली

छोटी नाली

छोटी नाली

यदि ढाल ज्यादा हो तो ऊपर लिखी रीति से नालियां बनाई जावें। इस प्रकार की सिंचाई की रीति का अनुकरण करने पर भी ऊपर दिये हुए फ़ायदे होते हैं।

कई फ़सलों को शुरू मे तो ज्यादा पानी लगता है, किन्तु बड़े हो जाने पर कम। ऐसी फ़सलें अधिकतर नालियों में बोई जाती हैं और पौधों के बड़े हो जाने पर नालियां तो भर दी जाती हैं एवं रागियों के स्थान में नालियां बना दी जाती हैं। इस रीति का अवलम्बन करने से पौधों को तो पानी मिलता रहता है किन्तु पत्ते तना आदि पानी से दूर रहते हैं, जिस से वे खराब नहीं हो पाते। इसके अलावा जड़ों पर मिट्टी चढ़ाने से कन्द खूब बढ़ते है।

अधिक सिंचाई से हानि

अधिक सिंचाई से लाभ के बदले नुक़सान होता है। कई कृषि-विद्या-विशारदों का कथन है कि हिन्दुस्तान मे रेहीली या ऊसर भूमि का बनना सिंचाई से बहुत सम्बन्ध रखता है। यदि अधिक पानी सोखने वाली भूमि को छोड़ कर दूसरी प्रकार की भूमि मे अधिक सिंचाई की जाय तो उस पर खार की मात्रा अवश्य ही बढ़ जाती है। यह खार अधिक बढ़ जाने पर भूरी या काली पपड़ी के रूप मे प्रकट होता है। इसे रेह या कलार कहते हैं। इसी से भूमि मे ऊसरपन आता है। सुप्रख्यात् कृषि-विद्या विशारद किग महाशय अपनी "सिंचाई और पानी का निकास"

नामक पुस्तक में लिखते हैं;— 'आजकल की निकाली हुई सिंचाई की रीतियों से ही भारतवर्ष, मिश्र और केलीफोर्निया की बहुत सी भूमि ऊसर हो गई है। ये रीतियां उन लोगों की निकाली हुई हैं जो प्राचीन लोगों के सिंचाई करने के उन नियमों से परिचित नहीं हैं, जिन से यहां की भूमि सहस्रों वर्षों से जोती जाने पर भी नहीं बिगड़ने पाई थी। इन देशों की भूमि के रेहीली या ऊसर हो जाने का कारण यही है कि आजकल की सिंचाई की रीतियां यहां की भूमि के लिये अनुकूल नहीं हैं।"

कृषि क्षेत्रों के अनुभवों से यह भी मालूम हुआ है कि आवश्यकता से अधिक सिंचाई से फसल में भी कमी आती है। क्वेटा में इस बात की जांच की गई। वहां गेहूँ बोने से पहले भूमि को एक ही बार पानी दिया गया था। ऐसा करने से पैदावार की औसत प्रति एकड़ १८ मन रही। इससे फिर यह देखा गया कि बीज बोने के बाद एक ही बार पानी देने वाली उपज से तीन बार पानी देने पर होने वाली उपज में कितना अन्तर पड़ता है तो ज्ञात हुआ कि जितनी बार अधिक सिंचाई की गई उतनी ही बार उपज में २६ प्रति सैकड़ा न्यूनता हुई। इस तरह के और भी उदाहरण हैं। कहने का अर्थ यह है कि जिस स्थान विशेष में जिस फसल को जितनी सिंचाई की आवश्यकता है, वहां उतनी ही सिंचाई करना चाहिये। क्वेटा में एक सिंचाई से काम चल जाता है तो इसका मतलब यह नहीं है कि सब ही जगह एक सिंचाई बस है। भूमि और फसल की परिस्थिति के अनुसार सिंचाई करना चाहिये। ज्यादा या कम नहीं।

फसल का हेर फ़ेर

(फ़सल चक्र)

पाठक जाते हैं कि जमीन मे निरन्तर एक ही फ़सल बोते रहने से उपज अच्छी नही होती। इस का कारण यह है कि एक ही भूमि मे लगातार एक ही फ़सल बोते रहने से उसमें रही हुई विशेष प्रकार की खुराक कम हो जाती है। जैसे कपास की फसल भूमि से नाइट्रोजन लेकर फलती-फूलती है। भूमि मे नाइट्रोजन की मात्रा नियमित रहती है। ऐसी हालत मे एक ही भूमि मे निरन्तर कपास बोते रहने का यह नतीजा होगा कि उसमें नाइट्रोजन की कमी आजायगी। इससे कपास की पैदावार कुदरती तौर से कम हो जायगी। यही बात दूसरी फसलों के लिये भी है। अतएव भूमि मे पौधो के भोजन की कमी न हो, इसलिये फ़सलें हेरफेर कर बोई जाती हैं।

फ़सल को हेरफेर कर बोने से खेत मे रहे हुए फसल के कीड़े नष्ट हो जाते हैं। इसका कारण स्पष्ट है। पहली फ़सल के जो कीटाणु खेत मे रह जाते हैं वही फ़सल फिर बोने से उन्हें अपनी खुराक मिल जाती है। इससे वे खूब बढ़ जाते हैं तथा फसल को नष्ट कर देते हैं। अगर उसी खेत मे दूसरी फ़सल बोई गई तो उन कीड़ों को खुराक न मिलने से वे अपने आप मर जावेंगे।

इस लिये हेरफेर कर फसल बोते समय इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिये कि एक के बाद दूसरी ऐसे फसल बोना चाहिये जिन पर गुजर बसर करने वाले कीड़े जुदे जुदे हों। जैसे गेहूँ की फसल पर गेरुआ रोग लगता है। तो गेहूँ के बाद ऐसी फसल बोना उचित होगा जिस पर गेरुआ रोग न लगता हो। इसका परिणाम यह होगा कि गेहूँ की फसल कट जाने के बाद भी गेरुए के जो कीटाणु भूमि मे होंगे वे अपने आप मर मिटेंगे अतएव उस खेत मे गेहूँ के बाद ऐसी फसल बोना चाहिये जिसमे गेरुए के जीवाणु अपना भोजन नहीं पा सके।

हेरफेर कर फसलें बोने मे जमीन को आराम मिलता है। उसकी जीवनी-शक्ति मन्द होने के बजाय तेज होती है। यही कारण है कि जिस जमीन मे हेरफेर कर फसलें बोई जाती हैं उसकी उपज शक्ति ज्यादा टिकती है और उसमे फसलो को रोग कम लगते हैं।

हेरफेर कर फसलें बोते समय नीचे लिखी हुई बातो पर अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

(१) इस प्रकार के क्रम मे फसले बोई जावे जिससे जमीन की उपजाऊ शक्ति कम न हो। इसके लिये खुराक लेने वाली फसल के बाद खुराक जमा करने वाली फसल बोना चाहिये।

(२) गहरी जड़ें फैलानेवाली फसलो के बाद कम जड़े फैलाने वाली फसलें बोना चाहिये।

(३) हेरफेर कर फसलें बोने के क्रम में एक चारे की फसल भी अवश्य होना चाहिये।

(४) बाजार की मांग के अनुसार फ़सलें बोना चाहिये।

(५) जमीन के गुण धर्म को देख कर हेर फेर कर बोई जाने वाली फसलों का निश्चय करना चाहिये।

(६) फ़सल चक्र का निश्चय करते समय खाद व आबपाशी के इन्तजाम की ओर पूरा ध्यान देना चाहिये।

फ़सल के हेर फेर से होने वाले फ़ायदे

(१) जमीन को जुदी-जुदी प्रकार की जुताई मिलती है।

(२) किसी एक ही प्रकार की खुराक का खजाना खाली नहीं होता।

(३) फ़सल को नुकसान पहुँचाने वाले कीड़े और खरपतवार की वृद्धि मे रुकावट होती है।

(४) बाजार के रुख के मुआफ़िक जुदी-जुदी जाति की फ़सले पैदा की जा सकती है।

(५) कम खर्च मे ज्यादा आमदनी होती है।

(६) एक फसल की जुताई व काश्त की मेहनत दूसरी फ़सल के काम आ जाती है। जैसे आलू के बाद गन्ना बो देने से आलू की खुदाई गन्ने के काम मे आ जाती है।

(७) भिन्न-भिन्न प्रकार का अनाज किसानो के पास आ जाता है।

इस प्रकार हेर फेर कर फसल बोने से और भी कई तरह के लाभ हैं।

फ़सलों को पाले से बचाने के उपाय

यह एक मानी हुई बात है कि जब कभी जमीन में नमी की कमी होती है, तभी फसलों पर पाले का हानिकारक प्रभाव दिखलाई पड़ता है। पाले में हवा इतनी ठंडी हो जाती है कि पौधों के अन्दर का रस जम जाता है, जिससे वे मर जाते हैं। यदि उक्त रस की गर्मी किसी तरह बढ़ाई जा सके तो पाले से उतनी हानि नहीं हो सकती। गर्मी दो तरह से बढ़ाई जा सकती है। एक तो हवा को गरम करके और दूसरे जमीन के अन्दर पानी की मात्रा बढ़ा कर। इसके लिये यह आवश्यक है कि जब पाला पड़ने के आसार नजर आवे तब पश्चिम की बाजू पर धुआँ कर देना चाहिये। यह धुआँ खेतों के ऊपर छाया रहता है और आसपास की तथा बीच की हवा को गर्म रखता है, जिससे कि पाले से नुकसान नहीं हो पाता। इस रीति से बागों और भाजी तरकारी की बाड़ियों की फसलें पाले से बचाई जा सकती हैं। अगर सब किसान मिल कर यह काम करें तो और भी दूसरी फसलों की रक्षा की जा सकती है। इसमें किसानों का परस्पर सहयोग देकर अपनी फसलें बचाने की कोशिश करना चाहिये। खास कर उन गांव के किसानों के लिये जहां कि सिचाई की

व्यवस्था न हो, यह रीति बड़े काम की है। इसके साथ ही यह भी बहुत जरूरी है कि खेत की निंदाई गुड़ाई बराबर की जावे। क्योंकि ऐसा करने से खेतों की नमी नहीं उड़ने पाती और उसके कारण पौधों के भीतर ज्यादा गर्मी बनी रहती है। खास कर बरसात के बाद तुअर (अरहर) के खेतों की जरूरी गुड़ाई कर देना चाहिये। जिस साल बरसात कम होती है, उस साल पाले से ज्यादा नुकसान होता है; क्योंकि उस समय खेत में नमी कम रहती है और पौधे जल्दी ही उसके शिकार बन जाते हैं।

पाले से बचने की दूसरी उम्दा तरकीब 'सिचाई' है। यह तरकीब बड़ी ही उपयोगी है, लेकिन सब जगह सिंचाई की व्यवस्था होना बडा कठिन है। ताहम भी जहां कहीं सम्भव हो, इसका अवश्य उपयोग करना चाहिये। पानी में ज्यादा देर तक गर्मी रखने की शक्ति होती है, जिस से खेतों में सिंचाई करने पर पाले का असर नहीं होने पाता। जिन किसानों को सिंचाई करने का जरिया हो, उन्हें पाला गिरने की सम्भावना का पता लगने पर अथवा पाला गिरने पर बराबर सिंचाई करते रहना चाहिये। अरहर, कपास, तम्बाकू, आलू, बैंगन, सरसों, मटर, चना, आदि को पाला ज्यादा सताता है।

मि० जोशी के अनुभव।

जयपुर राज्य के कृषि-विभाग के अध्यक्ष श्रीयुत के० आर० जोशी ने उक्त राज्य के बसी नामक स्थान में पाला से फ़सल को

बचाने के कुछ प्रयोग किये। उन्होंने हमारे द्वारा संपादित 'किसान' में इन प्रयोगों के आधार पर एक मननीय लेख लिखा है। उसको हम यहां अत्यन्त लाभकारक समझ कर उद्धृत करते हैं। यह लेख ईसवी सन १९२९ के मई मास के "किसान" में प्रकाशित हुआ है।

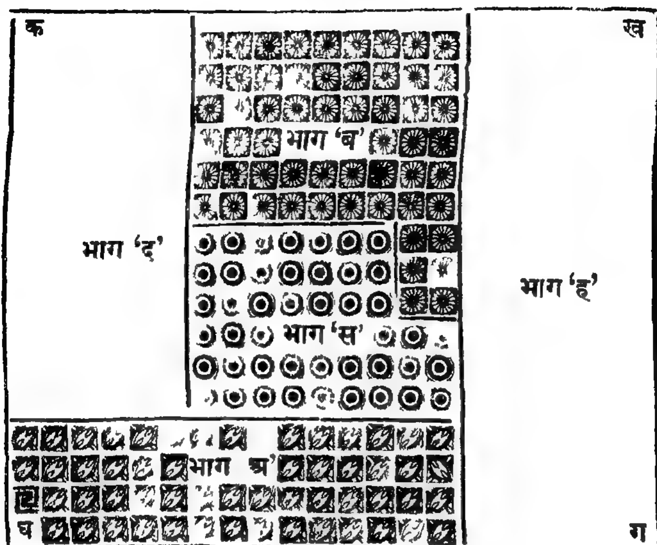
पाले से किसानों का कितना नुकसान होता है, इससे उनकी फ़सल की कैसी बरबादी होती है, इसका वर्णन यहां करने की आवश्यकता नहीं। किसान जानते हैं और खूब अच्छी तरह समझते हैं कि इस भयङ्कर बला के आगे किसी का वश नहीं। उदाहरण के लिये इसी वर्ष शुरू माघ में कई स्थानों में पाला पड़ा, उससे किसान बरबाद होगये। जयपुर राज्य के अंतर्गत वसी नामक स्थान में एक खेत के अलग २ टुकडों पर इस पाले का किस प्रकार असर पडा और उससे फसल की क्या हालत हुई उसका संक्षिप्त वर्णन यहां देते हैं। इससे किसानों को पता लगेगा कि पाले से किस प्रकार उनके फसल की रक्षा की जा सकती है। हम इस खेत का खाका इस लेख के अन्त में दे रहे हैं। इससे खेत की हालत किसानों के ध्यान में सहज ही आ सकेगी।

क, ख, ग, घ, एक गेहूँ का खेत है। इसके 'ब' के भाग में दोज को सिंचाई की गई। 'स' भाग में तीज को, 'अ' भाग में चौथ को और 'द' और 'ह' भाग बिना सिंचाई के रखे गये। पंचमी को पाला पड़ा जिससे क़रीब १५ दिन बाद जब खेत को देखा तब मालूम हुआ कि पाले से 'अ' भाग में, जिसमें कि एक ही

दिन पहले सिंचाई हुई थी, बहुत ही कम नुकसान हुआ। 'स' और 'व' भाग में जहाँ दोज व तीज को अर्थात् पाला पड़ने के दो और तीन दिन पहले सिंचाई हुई थी, बारह चौदह आना नुकसान हुआ और 'द' और 'ह' भाग में जहाँ सिंचाई बिल्कुल नहीं हुई थी, फसल बिलकुल बरबाद हो गई।

ऊपर बतलाये हुए उदाहरण से किसानो के ध्यान में यह बात पूरी तौर से आ जायगी कि वहीं सिंचाई फायदेमन्द होती है और उनके फसल की रक्षा कर सकती है, जहां कि वह पाला गिरने के पहले ही दिन की गई हो। सुना जाता है कि यू० पी० के किसान पाला गिरते समय खेतों मे पानी देने का काम दिन रात चालू रखते हैं और यही कारण है कि उनका बहुत कम नुकसान होता है। लेकिन अफसोस है कि राजपूताना व मध्य-भारत के किसान पाला पड़ते समय अपना और अपने जानवरों का बचाव करने के लिये सिंचाई का काम बन्द कर घर में बैठ जाते हैं और बहुत ज्यादा नुकसान उठाते हैं। अतएव उनको चाहिये कि पाला गिरने के समय सब काम छोड़ कर खेतों में लगातार दिन व रात सिंचाई जारी रक्खें। उन्हे यह खूब अच्छी तरह ध्यान मे रखना चाहिये कि सिंचाई ही एक ऐसा उपाय है, जिसके द्वारा पाले से फसल बचाई जा सकती है।

जयपुर राज्य में बसी गाँव के एक खेत का खाका।



कुआ O

वह भाग जहाँ पानी नहीं दिया गया।


वह भाग जहाँ पानी पाला गिरने के तीन दिन पहले दिया गया।


वह भाग जहाँ पानी पाला गिरने के दो दिन पहले दिया गया।


वह भाग जहाँ पानी पाला गिरने क एक दिन पहले दिया गया।

ऊसर भूमि का सुधार ।

ऊसर भूमि का दूसरा नाम रेहिलो भूमि भी है। हिन्दुस्थान के आगरा, अवध, पंजाब, सिन्ध और पश्चिमोत्तर प्रदेश में ऊसर भूमि का मिलना एक बहुत ही साधारण बात है। मुख्यतः उत्तरीय भारत की उपजाऊ और घनी आबादी के बीच में ऐसी भूमि के बड़े बड़े भाग अधिकता से पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त दक्षिण में नीरा नदी की नहर के आस पास और बम्बई प्रान्त के खेडा जिले मे भी ऐसी भूमि के बड़े बड़े भाग बहुत मे मिलते हैं। इस प्रकार की निकम्मी भूमि से देश की जो आर्थिक हानि होरही है उस पर कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। कृषि-विद्या-विशारदों का ध्यान इस प्रकार की भूमियों को सुधारने की ओर जा रहा है और उन्हे इसमे सफलता भी होरही है।

अलीगढ़ मे इस प्रकार की भूमि को सुधारने के प्रयत्न किये गये। वहाँ गोबर या दूसरे प्रकार के सेन्द्रिय खाद बहुत मिल सकते हैं। कृषि-विद्या-विशारदों ने ऊसर भूमियों में इन खादों का उपयोग किया जिससे वे जोतने के योग्य बन गईं। जिप्सम के खाद को काम मे लाने से भी बहुत कुछ लाभ हुआ है। कहीं कहीं ऐसी भूमि में रेत मिलाने से भी वह खेती के काम के लायक होगई है। पश्चिमोत्तर प्रदेश मे लूसर्न की फसल उगा देने से भी

ऊसर भूमि में उपजाऊपन आगया है। इसके अतिरिक्त खेत में बबूल उगा देने से भी ऊसर भूमि मे सुधार होता है। इसका कारण यह है कि इन फसलों को उगा देने से भूमि की बनावट सुधर जाती है और वह हवादार भी हो जाती है। इस प्रकार की सुधारी हुई भूमि तब तक अच्छी बनी रहती है जब तक कि वह बार बार की सिंचाई से खराब न करदी जाय। अमेरिका के युक्त प्रदेश के खेतो मे नालियाँ बनाकर ठीक तरह पानी का निकास कर ऊसर भूमि को सुधारते है। परन्तु दुआब की भूमि मे इस उपाय से कुछ भी लाभ नहीं हुआ।

यू० पा० के प्रतापगढ नामक स्थान मे वहाँ के कृषि विभाग ने ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाने के अनेक प्रयोग किये। उक्त विभाग द्वारा प्रकाशित सहयोगी 'किसानोपकारक' ने उन्ही प्रयोगो के आधार पर ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाने की जो रीतियाँ प्रकाशित की हैं उन्हे हम नीचे उद्धृत करते है।

(१) जो भूमि ऊसर हो उसमे बरसात के दिनो मे खूब गहरी जुताई करनी चाहिए और उसके बरसाती पानी को बहा देने के लिये रास्ता बना देना चाहिए ताकि उस पानी के साथ हानिकारक नमक, जिसके कारण भूमि ऊसर होगई है, बह जावे।

(२) ऊसर भूमि में ऐसी फ़सलों को बोना चाहिए कि जिनकी जड़े अधिक गहराई तक जाती हों और जो नमक चूस लेती हों। ऐसी फ़सलें अरहर, ढेचा, जावा की नील, मदार (आक) और रेंडी आदि हैं।

(३) मेंड बना कर ऊसर भूमि मे पानी जमा कर लिया जावे और उस मे धान की खेती की जावे और धान कट जाने के पश्चात् उसमें चने या देशी मटर की काश्त की जावे।

(४) ऊसर भूमि की ऊपरी सतह में ठीकरे मिला दिये जावे। ताकि अधिक हवा भूमि मे प्रवेश कर सके। तत्पश्चात् उसमे जावा की नील बो दी जावे। यह रीति मि० ए० होवर्ड साहब सी० आई० ई० की अनुमति से ग्रहण की गई है। उपरोक्त भिन्न-भिन्न प्रकार की रीतियो के प्रयोग से जो फल प्राप्त हुए हैं, वे आशाजनक है।

प्रयाग के सुप्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र सहयोगी 'अभ्युदय' में "ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाने की रीति" नामक एक छोटा सा लेख प्रकाशित हुआ है। उसे उपयोगी समझ कर हम यहां उद्धृत करते है।

(१) जिस समय भूमि जुताई योग्य हो उस वक्त उसे जोत कर अरहर आदि ऐसी फसले, जिनकी खुराके नमक हों, बो देना चाहिये। (२) जब वर्षा शुरू हो तब ऊसर भूमि को छोटे छोटे भागों मे बांट कर चारो तरफ पुश्तेबन्दी कर देना चाहिये। पानी भर जाने पर आदमियो और मवेशियां से उसे खूब गन्दला करवा कर एक तरफ को राह बना कर उसे बहा देना चाहिये और बाद मे फलोदार फसल बोनी चाहिये। इसकी फली तोड़ लेनी चाहिये और शेष भाग को खेत ही मे लोहे के हलों से जोत देना चाहिये। (३) खुश्की के समय में इसके

ऊपर जो रेह होती है उसे खुरच लेते हैं और फिर रेह से सज्जी बनाते हैं। (४) केलेशियम सलफेट के डालने से भी इसकी दुरुस्ती हो जाती है। (५) जमीन मे कुछ गहराई पर कंकर मिला देते हैं और बाद का उसमे जावा को नील या अरण्डी आदि की काश्त करते हैं। इस प्रकार काश्त करने से कुछ ही समय में भूमि ठीक हो जाती है। (६) भूमि का निकास अच्छा बनाना चाहिये। (७) इस भूमि में बबूल के पेड़ बो कर भी लाभ उठा सकते हैं। (८) ऊसर भूमि को वर्षा के समय में गहरी जुताई करके छोड़ देना चाहिये और चारों तरफ से पानी रोके रहना चाहिये। बाद को पानी एक तरफ निकाल कर धान बो देना चाहिये।

फ़सल को नुकसान से बचाने के उपाय।

अकसर देखा जाता है कि जब फ़सल बिगडती है या पैदावार कम होती है तो उसके तीन मुख्य कारण होते हैं:—

(१) पानी की कमी या बिलकुल वर्षा न होना।

(२) बहुत पानी बरसना व उससे फ़सल को नुक़सान पहुँचना।

(३) किसी ऐसे रोग का लग जाना, जिससे या तो पैदावार कम हो या वह बिलकुल बिगड़ जाय।

अब तक हम विज्ञान में इतनी अधिक उन्नति नहीं कर पाये हैं कि जिससे हम बरसात पर अपना अधिकार कर सकें अर्थात् जिस समय जहाँ जितनी ज़रूरत हो वहाँ उतना ही पानी बरसा सकें। यह सम्भव है कि किसी दिन हम वर्षा को भी अपने वश में करले, परन्तु जब तक हम ऐसा नहीं कर सकते तबतक तो हमे कम से कम दूसरी बातों के ज़रिये ही अपनी फ़सल का बचाव करना होगा।

जैसा कि हम ऊपर कह आये है, हमारे सामने खेती की तरक्की के लिये दो मुख्य बातें पेश होती हैं, जिनको सुलझाना हमारे लिये अति आवश्यक होजाता है। एक वर्षा की कमी व ज्यादती से फसल को बिगड़ने न देना व दूसरी फ़सल को कीड़ों व दूसरे रोगों से बचाना। यह सब कोई जानते हैं कि फसल तैयार करने के लिये नमी या सील सब से ज्यादा काम की चीज़ है। यदि ज़मीन व वायुमंडल मे सील न हुई तो कुछ भी पैदा-वार नहीं हो सकती। वैसे तो फ़सल की पैदावार में प्रकाश, हवा आदि की भी ज़रूरत होती है। पर आजतक के अनुभवों से पता लगता है कि अकसर इनमे ऐसा हेर फेर नहीं होता, जिससे कि फ़सल बिलकुल नष्ट हो जावे। अतएव केवल बरसात की कमी व ज्यादती का सवाल फ़सल की पैदावार के लिये बड़ा महत्व रखता है। साल के शुरू मे अथवा फसल बोते समय बरसात का अन्दाज़ा नहीं लगाया जासकता। किसानों को अच्छी बरसात

की उम्मीद पर अपनी जमीन में बीज बोदेना पड़ता है। इसी प्रकार किसान पहले से यह भी अन्दाज नहीं लगा सकते कि कितने कितने समय से कितनी वर्षा होगी। अतएव उन्हें इस प्रकार के उपाय काम मे लाने की आवश्यकता है, जिनसे बरसात कम या ज्यादा होने पर उन्हें नुकसान न उठाना पड़े और यदि दुर्भाग्यवश उन्हे कुछ नुकसान उठाना ही पड़ा तो वह इतना ज्यादा न हो, जिससे कि वे बर्बाद होजावे। ये उपाय तीन हैं:—

(१) कम बरसात में अपनी फसल को नुक़सान से बचाना।

(२) अगर बरसात अधिक हुई तो उसके लिये व्यवस्था कर रखना।

ऊपर बतलाई हुई बातों के लिये तीन तरह से जमीन की तैयारी करने की आवश्यकता है। इसके लिये जमीन को तीन हिस्सो मे विभक्त कर देना चाहिये। पहले हिस्से मे इस प्रकार की व्यवस्था करना चाहिये, जिससे ज्यादा आल जमीन मे टिक सके। इसके लिये जमीन को गर्मी मे जोत कर मिट्टी खुली कर देना चाहिये, जिससे कि बरसात शुरू होने के समय जमीन का मुँह खुला हो जाय और जितना भी पानी गिरे, सब जमीन में समा जाय। अगर गर्मी के दिनों मे जमीन जोत कर तैयार न की गई तो बहुत सा पानी फ़िजूल निकल जायगा। अगर किसी तरह यही पानी जमीन सोख सके तो आगे चलकर पानी को खींच पड़ने पर फसल को बढ़ने के लिये काफी आल मिल सकेगी। अतएव जब एक झड़ी बन्द हो जावे, तब फिर खेत को जोत कर जमीन

को उथल पुथल कर देना चाहिये, जिससे कि पानी भाप बनकर उडने न पावे। अकसर किसान अपनी जमीन को बरसात शुरू होने के बाद जोतना शुरू करते हैं, जिससे पहली वर्षा का बहुतसा पानी बह जाता है। आबपाशी के बिना गेहूँ या रब्बी की फ़सले लेने की जो प्रथा कई प्रान्तो मे जारी है, उससे साफ़ २ मालूम होता है कि हमारे किसान 'आल' के महत्व को खूब समझते हैं। पर वे लकीर के फ़कीर बने रहना पसन्द करते हैं और इसी कारण जो कुछ उनके बापदादो के वक्त से होता आया है, उसी के मुताबिक काम करते हैं। यदि वे अपने खेत मे पहले ही से ज्यादा से ज्यादा आल इकट्ठा करने की व्यवस्था कर रखें तो उन्हें कम वर्षा में भी बर्बाद होने का मौक़ा न आयगा।

बहुत अधिक बरसात से फ़सल की रक्षा करने के लिये जमीन के दूसरे हिस्से मे नालियों के जरिये फालतू पानी निकालने का इन्तजाम करना चाहिये।

इससे खूब बरसात होने पर भी फसल गल न सकेगी। अगर इस अवधि मे बरसात कम हुई तो नालियों को बन्द करके पानी रोक देना चाहिये, जिससे फसल मे आल बनी रहे। इस उपाय को काम मे लाने से ज्यादा व कम बारिश होने की हालत मे किसानों को अपनी फसल बिगड़ जाने या सूख जाने का डर न रहेगा।

किसानों को चाहिये कि ऊपर बतलाये हुये तरीकों से खेत तैयार कर उन मे फ़सल बो दें। उन्हें बरसात कम व ज्यादा होने के अंदाज मे न पड़ना चाहिये। जब जैसी हालत उनके सामने

हों, उस मुताबिक़ उन्हें अपनी फ़सल के बचाव का उपाय करना चाहिये।

अब रहा कीड़ो या दूसरी बीमारियों से फ़सल की रक्षा करने का सवाल। इसके लिये हमेशा चुनी हुई जाति के बीज बोना चाहिये। जिससे कीड़े व दूसरे रोग फ़सल को सताने न पावें। इसी तरह गर्मी के मौसिम में खेत की अच्छी तरह जुताई कर डालना चाहिये। इतने पर भी यदि खेत में कीड़ों का दौरा हो जावे अथवा कोई रोग फ़सल को लग जावे तो उसके लिये ख़ास तरकीबें काम में लाना चाहिये। ये तरकीबें आगे दी जावेंगी।

काँस को जड़ से नष्ट करने की तरकीब

भारतवर्ष के कुछ हिस्सो में कपास व दूसरी फ़सल की बढ़ती को रोकने वाला काँस नामक एक घास है। यह बड़ी गहरी जड़वाला होता है और ऊपर २ से काट डालने पर भी हर साल बढ़ता रहता है। जिस खेत में यह दुखदायी घास होता है, उस खेत की कपास की फ़सल लगभग एक तृतीयांश कम होजाती है। हिन्दुस्थान के किसानो के पास जितने खेती के औजार हैं वे सब काँस को जड़से नहीं निकाल सकते। अलबत्ता वे इसकी बढ़ती को रोक सकते हैं। इसलिये काँस का रोग जड़से खो देने के लिये कई जगह 'ट्रक्टर्स' काम में लाये जाते हैं। मगर इसमें ख़र्च बहुत पड़ता है। इससे मामूली किसान इन से फायदा

नहीं उठा सकते। इसलिये मध्य भारत के सुप्रसिद्ध खेती के विशेषज्ञ मि० हॉवर्ड ने कांस को जड़ से उखाड़ने की एक आसान तरकीब निकाली है। जब हावर्ड महोदय ने पहले पहल इन्दौर में खेती के प्रयोग शुरू किये तो आपको ऐसी जमीन मिली, जिसमें लगभग आधे से ऊपर रकबे मे कांस खड़ा था। इससे आपको कांस उखाड़ने की तरकीब सोचनी पड़ी। उस समय प्रयोग शाला में इतने पैसे न थे कि मामूली तरीके पर हाथ से सारी जमीन का कांस खुदाया जा सके। ऐसा करने से प्रति एकड़ ८० रुपये खर्च बैठने का अन्दाज था। अतएव इसके लिये और सरल तरकीब ढूंढी गई। पहले पहल अंग्रेजी ढंग के हल [रैंन सम्स स्टील बार प्लौ सी० टी० प्लौ, साइल इन्व्हर्टिंग प्लौ आदि] इस्तेमाल किये गये। ये हल दो बैलों की दो जोड़ियों से खींचे जाने वाले थे। परन्तु ये भी सन्तोषदायक काम न दे सके। इनसे काम भी बहुत थोड़ा हुआ। इन हलों के नाकामयाब होने के दो कारण थे। एक तो इनमे दो बैल की दो जोड़ियां लगती थी, जिससे चारों बैलो की बराबर ताक़त नही लग सकती थी। इसके सिवा दूसरे गहरा कांस निकालने में बहुत ज्यादा ताकत की जरूरत थी। इन सब बातो से मालूम हुआ कि कॉंस को नाश करने के लिये पश्चिमी देशों में जिन तरीको की जरूरत होती है वे तरीके यहाँ ज्यादा काम नहीं दे सकते।

इसके बाद 'बखर' का उपयोग किया जाने लगा। इसमे चारो बैल एक ही कतार मे जोते जाते हैं और यह ८,९ इंच की गहराई

तक ज़मीन मे घुस जाता है। यह 'बखर' पी एल. ओ. नाम के रम इङ्गी हल मे कुछ फेर बदल करके बनाया गया है। इसके द्वारा कांस की तमाम जड़े निकल आती हैं। इस बखर के आगे एक छोटा सा पहिया लगा रहता है जैसा कि आगे दिये हुए चित्र मे मालूम होगा। इस बखर मे एक जंजीर के द्वारा चार बैलो की एक जूड़ी बांधी जाती है। इस जूड़ी के लगने मे चारो बैलों की ताकत बराबर २ लगती है। इससे एक एकड़ का काँस एक दिन मे निकल जाता है।

ऊपर बतलाये हुए सब अनुभवो से हॉवर्ड महोदय ने यह नतीजा निकाला है कि हिन्दुस्थान की गहरी काली जमीन तथा दूसरी तरह की जमीनों का काँस निकालने के लिये यह बखर बड़ा उपयोगी है। यह केवल ४०, ५० रुपयो मे मिल सकता है। मामूली हैसियत का किसान भी इसे खरीद सकता है। इससे ट्रैक्टर या भाफ से चलने वाले सब हलों के काम सहज में निकल सकते हैं।

इस बखर की लगभग १०० जाड़िये इन्दौर के प्लॅंट रिसर्च इन्स्टिटयूट मे है। इस स्थान को सहायता देने वाली रियासतो के कारतकारो के लिये इस बखर की कीमत लगभग ५० रुपया रखी गई है।

खरपतवार

"कांस" का जिक्र हम पहले कर चुके है। इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकार के बिना बोये हुए पौधे खेत में उग आते

हैं जो फ़सल को नुकसान पहुँचाते हैं। इन्हें खरपतवार कहते हैं। जङ्गली भींडी, सावरी, मोथा, बाथची, अगिया घास, दूब आदि पौधों का शुमार खरपतवार में किया जाता है।

सभी प्रकार के खरपतवार खेत की जगह घेर लेते हैं, जिससे फसल के पौधों की बाढ़ रुक जाती है और बहुत से पौधे मर भी जाते हैं। परिणाम यह होता है कि पैदावार कम होती है। खर-पतवार फसल को ढक लेते हैं, जिससे उसे काफ़ी हवा और प्रकाश नहीं मिलता है। इसके अलावा ये ज़मीन मे से खुराक सोखते हैं, जिस से फ़सल को काफ़ी खुराक नहीं मिल पाती। परिणाम यह होता है कि फसल पीली पड़ जाती है। इनके कारण फसल के पौधो पर शाखाएं भी कम निकलती हैं। कुछ खर-पतवार ऐसे भी हैं, जो फसल के पौधों पर लिपट जाते हैं। इससे भी फसल की बाढ़ में रुकावट पहुँचती है।

खर-पतवार की कुछ जातियां ऐसी भी है, जो अपना भोजन ज़मीन से न लेकर दूसरे पौधो की देह मे से ग्रहण करती हैं। कुछ पौधे आधा भोजन ज़मीन मे से ग्रहण करते हैं और कुछ दूसरे पौधे की देह मे से। 'आगिया' घास इसका उत्तम उदाहरण है। ऐसे खर-पतवार परोपजीवी कहे जाते हैं। कुछ पौधो के बीज जहरीले होते हैं।

खरपतवार को खेत मे या खेत के आस पास बढ़ने देना अत्यन्त हानिकर है। फ़सल को नुकसान पहुँचाने वाले कीड़े इन

पर जीते हैं तथा वे फ़सल पर हमला करते हैं। इससे फ़सल को बहुत नुकसान पहुंचता है।

खरपतवार के जीवन पर विचार करना भी जरूरी है। अवस्था के मान से खरपतवार दो प्रकार के होते हैं। १—वर्षायु और २ बहुवर्षायु।

वर्षायु खरपतवार की जिन्दगी एक वर्ष से अधिक नहीं होती। कुछ पौधे तो पांच छः महीने से ज्यादा जी नहीं सकते। बीज पकते ही पौधा सूख कर मर जाता है। इनकी जड़े ज़मीन में गहरी नहीं पैठतीं। बहुवर्षायु खरपतवार बरसों तक जीवित रहते हैं और अपनी जिन्दगी में कई बार फूलते-फलते हैं। खेती और बगीचों में बहु-वर्षायु खरपतवार ही ज्यादा नुकसान पहुचाते हैं और इन की वृद्धि रोकने के लिये ज्यादा मेहनत और पैसा खर्च करना पड़ता है।

खरपतवार कई प्रकार के होते हैं। जङ्गली भिंडी आदि कुछ पौधे सीधे बढते हैं। दूब आदि जमीन पर फैलते हैं। चांदवेल आदि सहारे से ऊपर चढते है। नागरमोथा आदि कुछ के तने भूमि के अन्दर रहते हैं, जिनसे नवीन पौधे पैदा होते रहते हैं। कांस के भौमिक तने से भी नये पौधे जन्म लेते हैं। कुछ खर-पतवार ऐसे भी हैं, जो उखाड़ कर खेत मे पटक देने से चट जड पकड लेते हैं। खरपतवार कैसे फैलते हैं। १ अधिकांश वर्षायु खर-पतवार के पौधे बीज से ही पैदा होते हैं। इनके बीज कई तरह से फैलते हैं। बहुत से पौधों के बीज उडकर ज़मीन में फैल

जाते हैं। बहुत से खर-पतवार के बीज फ़सल के बीज के साथ खेतों में पड़ जाते हैं। मींगनी के खाद या पशु पक्षियों के विष्ठा के साथ ये खेतों में फैल जाते हैं। गोबर और कचरे के खाद के कारण भी खेतो मे बहुत से खर-पतवार उग आते हैं।

बहु वर्षायु खर-पतवार भौमिक तनों के टुकड़ो से फैलते हैं कुछ बहु-वर्षायु खर-पतवार कन्द मूल आदि द्वारा भी फैलते हैं।

खेतों में वर्षायु खर-पतवार घास पात आदि उग आते हैं। इन्हें फूल आने के पहले ही उखाड़ कर फेंक देना चाहिये। यदि खेत मे फ़सल नहीं बोई गई हो तो पानी बरसने के बाद ही खर पतवार के उगने पर बखर या हैरो या हल चलाकर खेत को जोत देना चाहिये। ऐसा करने से कम मेहनत और थोड़े खर्च में खेत साफ किए जा सकते हैं। फ़सल बोने के बाद मे खेतो मे खर-पतवार घास पात उग आवे तो पहले डोरा कुलिया आदि चलाकर दो कतारों के बीच का घास पात नष्ट किया जा सकता हैं। फसल की कतार मे उगे हुए खर-पतवार को हाथ मे उखाड़ डालना चाहिये। फूल आने के पहले ही इनको उखाड डालना चाहिये। साफ़ बीज ही खेतो में बोया जाना चाहिये और इस बात पर विशेष ध्यान रखा जाना चाहिये कि खाद के ढेर पर सत्यानाशी, आँधी झाड़ा आदि पौधों के पके हुए बीजवाले पौधे न डाले जावे। यदि खर-पतवार के बीज खाद के ढेर पर भूल से फेंक दिए जाँयँ, तो उन्हें उगने के बाद फूल आने के पहले ही उखाड़ डालना चाहिये।

खेतों से या अन्य किसी स्थान से उखाड़े हुए खर-पतवार या घास पात के पौधे जमीन पर फेकना नहीं चाहिये। यदि पौधे पर फल लग जावे, तब तो हरगिज उसे खेत में नही फेकना चाहिये। इन पौधों को उखाड़ कर जला देना चाहिये। जलाते समय इस बात पर विशेष खयाल रखना चाहिये कि पौधों का कोई भाग अध जला न रह जाय। बीजों के जल जाने से दूसरे वर्ष खेतों मे खर-पतवार बहुत ही कम लगेंगे। अकसर देखा जाता है की किसान लोग खर-पतवार के पौधों को फूल फल आने तक खेतों मे ही खडे रहने देते हैं। पकने पर उनके बीज खेतों में ही गिरते हैं। इससे साल दर साल खर-पतवार की संख्या बढ़ती जाती है और दो ही तीन साल मे वे इतने ज्यादा फैल जाते हैं कि खेत मे फ़सल होने ही नही पाती। इसलिये हर एक किसान को चाहिये कि सत्यानाशी, बिच्छू आदि वर्षायु खर-पतवार के पौधों को फूल आने से पहले ही उखाड कर फेक दे या फल आने पर उखाड कर जला डाले।

बहु वर्षायु खर-पतवार का नाश करना कुछ मुश्किल है। काँस कुन्दा, दूब नागरमोथा आदि खर-पतवार ऐसे हैं, जो कम मेहनत और थोड़े खर्च मे नष्ट नहीं किये जा सकते। इनको नष्ट करने का उत्तम उपाय तो यह है कि फसल काट लेने पर खेतों मे मिट्टी उलटने वाले हलों से गहरी जुताई कर दी जाय। यदि सम्भव हो तो काँस, कुन्दा, दूब आदि के भौमिक तने कन्द आदि जमा करके जला दिए जावे। किन्तु इसमें खर्च ज्यादा बैठता है और

भारत के किसान लोहे के हलों का उपयोग भी नहीं कर सकते। इसलिए दूसरे ही उपायों को काम मे लाना चाहिये।

खेतों मे तिल, सन आदि जल्दी उगने वाली फ़सले लगातार दो चार बरसो तक बोते रहने से बहु वर्षायु खरपतवार नष्ट किये जा सकते हैं। तिल, सन, उड़द, मुंग, कुलथी आदि के पौधे घने होते है। इनके पत्ते जमीन को ढक लेते हैं, जिस मे खर-पतवार के पौधों को प्रकाश, धूप और हवा नहीं मिल पाती है। पौधे की बाढ़ के लिये प्रकाश, धूप और हवा बहुत ही जरूरी है। इन के अभाव मे पौधा दम घुट कर मर जाता है। ६ इञ्च से ९ इञ्च गहरी जुताई करने, भौमिक तनो और शाखाओ को इकट्ठा कर जला डालने और लगातार कुछ वर्षों तक सन तिल आदि फसले बोते रहने से बहु वर्षायु खर-पतवार घासपात नष्ट किये जा सकते हैं।



पौधों की बीमारियाँ और उन्हें रोकने के उपाय

मनुष्यो की तरह पौधों को भी अनेक प्रकार की बीमारियाँ होती हैं। जिस प्रकार मनुष्यो की अधिकांश बीमारियों के कारण सूक्ष्म जीवाणु हैं, उसी प्रकार पौधो की बीमारियों के कारण भी सूक्ष्म जीवाणु या विविध प्रकार की इल्लियाँ हैं। पाठक जानते हैं कि जब प्लेग हैजा आदि बीमारियो का प्रकोप होता है तो लाखों मनुष्य इनकी भेंट चढ़जाते हैं। इसी तरह फसलो पर भी जब भीषण रोगो का आक्रमण होता है तो वे चौपट होजातीं हैं। करोड़ों रुपयों का नुक़सान होजाता है। किसानो मे हाहाकार मच जाता है !! विज्ञानविद् सज्जन मानव रोगो की तरह फसलों के रोगों का भी अनुसन्धान कर रहे हैं। हर्ष की बात है कि पिछले कुछ वर्षों से भारतवर्ष मे भी इस सम्बन्ध मे बहुत कुछ अनुसन्धान हुए हैं। इस विषय पर अंग्रेजी भाषा मे, बहुत सा साहित्य भी, प्रकाशित हुआ है। पौधों मे रहने वाले हानिकारक कीटाणुओं के जीवन की जाँचे कीगई हैं। उनसे होनेवाली हानि पर भी प्रकाश डाला गया है। रोग कीटाणुओं को नष्ट करने के उपाय भी निकाले गये हैं। इसके अतिरिक्त बीमारियों को रोकने के उपायो मे भी बहुत

कुछ उन्नति हुई है। इतना ही नहीं वे उपाय काम में भी लाये जाने लगे हैं। फसलो के रोग दो तरह से दूर किये जासकते हैं।

(१) ऐसी औषधियों या औषधियों के मिश्रण को काम में लाना जिन्हे कीड़े या फफूँद (फंगस) लगे हुए स्थान पर छिड़कने से कीड़े नष्ट होजावें और फफूद दूर होजाय।

(२) "बीमारी की चिकित्सा" के बजाय उसे होने ही न देने की पद्धति को काम मे लाना।

जब कि फसलों पर लगने वाले इन विविध जन्तुओं की जीवन लीला की सब बात मालूम हो जाती हैं, तब इन्हें मिटा देने का प्रश्न विशेष कठिनाई उपस्थित नही करता। देखा गया है कि इनके जीवन में एक ऐसा विशेष अवसर आता है कि जब इन्हें नष्ट करने के प्रयोग विशेष सफल हो सकते हैं। उदाहरण के लिये ताम्बा मिश्रित गन्धक की बूकनी याने कॉपर सल्फेट को छिड़क कर पौधे पर लगे हुए कीड़े तथा फफूद नष्ट किये जा सकते हैं। इसी प्रकार बीज को बोने के पहले उसे तूतिया के पानी मे भिगो देने से छोटे पौधे अनेक रोगो से बचाये जा सकते हैं। पौधो पर लगनेवाली हरे रंग की इल्लियां साबू आदि के पानी तथा मिट्टी के तेल से नष्ट की जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त कीड़े और फफूँद को (फंगस), उनके आराम करने की हालत में, इकट्ठा कर खेत से बहुत दूर कही धूप मे छोड़ देने से भी काम निकल सकता है।

पर क्या ये उपाय भारतवर्ष के ग़रीब किसानों के व्यवहार

में आने योग्य हैं ? इन्हें काम मे लाने से जो खर्च होगा क्या वह फसल की रक्षा से होने वाले लाभ से कहीं अधिक नहीं बढ़ जायगा ? इन उपायो को काम मे लाना क्या भारतवर्ष के दरिद्री और अपढ़ किसानो के बूते के बाहर नहीं है ? किसानो की बात अलग रहने दीजिये। जमीदार या अन्य बड़े आदमियो को लेलीजिये। वे भी तो आर्थिक लाभ ही के लिये खेती करेंगे। उन्हें उन दवाओं से क्या फायदा होगा जो फसल से भी महगी पड़े। हाँ, चाय, काफी, रबड़, और फलों के समान कुछ ऐसी मूल्यवान फसले हैं कि जिनकी चिकित्सा का खर्च इन्ही के लाभ से पूरा हो सकता है।

पर अधिकांश फसलो के लिये आर्थिक दृष्टि से उपरोक्त उपायो का व्यवहार लाभप्रद नही है। तो भी हमने हर एक जाति के फसल की खेती के साथ साथ उसके रोगो की औषधियो का भी उल्लेख किया है। इसमें हमारा उद्देश्य यह है कि हमारे पाठक इस सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त करे और जहाँ सम्भव हो वहाँ इनका उपयोग भी करें।

अब हम दूसरे उपाय की ओर अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करते है। वह है पौधो को बीमारी न होने देना। अंग्रेजी मे एक कहावत है कि "बीमारी के इलाज के बजाय उसकी रोक कहीं ज्यादा अच्छी है।" यह कहावत मनुष्यों की तरह पौधो पर भी घट सकती है और अच्छी तरह घट सकती है। जिन सज्जनो ने वैद्यक विज्ञान (medical science

का थोड़ा बहुत भी अध्ययन किया है, वे जानते हैं कि मनुष्यों के अन्दर रोग प्रतिकारक शक्ति (Power of resistance) रही हुई है। यह शक्ति किसी मनुष्य मे कम होती है और किसी में ज्यादा। खास उपायों के द्वारा यह शक्ति बढ़ाई भी जा सकती है। ठीक यही बात पौधों के लिये भी लागू है। किसी जाति की फसल मे यह शक्ति ज्यादा होती है और किसी मे कम। इसलिये बोना के लिये किसी भी अनाज की ऐसी जाति को चुनना चाहिये, जिस मे रोग निवारक शक्ति अधिक हो। इससे फसल की बीमारियो या जीवाणुओ से अपने आप रक्षा हो जायगी। कभी-कभी दो जातियो के पौधों के संयोग Hybridization) से इस प्रकार की किस्म पैदा भी की जा जाता है। पूसा गेहूँ नम्बर ४ इसी प्रकार की दोगली जाति है। इसमें गेरुआ आदि रोग नहीं लगते। फसलो को बीमारियों से बचाने का दूसरा तरीक़ा यह है कि कृषि की पद्धतियों में उन्नति करना। ऐसा करने से पौधो की शक्ति इतनी बढ़ जायगी कि वे बीमारियो को दबा सकेंगे। जावा मे गन्ने की बीमारियो का सामना करने के लिये इन्ही रीतियो को अधिकांश रूप से काम मे लाया जाता है। भारत सरकार की ओर से शक्कर के अनुसन्धान के लिये एक कमेटी बैठी थी। इसने गन्ने की पैदायश और शक्कर के उद्योग के कई पहलुओं पर बड़ा ही अच्छा प्रकाश डालने वाली एक रिपोर्ट लिखी है। उसमें एक जगह ध्यान देने योग्य ये विचार प्रकट किये हैं—

"जान पड़ता है कि योग्य रीति से खेती करना तथा अच्छी *क़िस्मों को काम में लाना ही बीमारियों को वश में रखने और उन्हें दूर करने का महत्व-पूर्ण उपाय है*॥" हम भी पहले कह चुके हैं कि खेतों में अगर गहरी जुताई की जाय और योग्य रीति से फ़सल हेरफेर कर बोई जाय तो फसल को बीमारी लगने की बहुत ही कम सम्भावना रहेगी। गर्मी के मौसम की जुताई भी फसल के रोगों को रोकने का एक उपाय है। कहने का सारांश यह है कि योग्य रीति से खेती की पद्धतियों मे सुधार करने मे बीमारियों का डर बहुत कम रह जाता है। हाल ही मे जावा से हिन्दुस्थान को लौटे हुए एक साहब ने कहा था;—"जावा मे यदि गन्ने की इस्टेट मे लाल रंग का फफूँद लग जाय तो वहां के मैनेजर को नौकरी से अलग कर दिया जाता है। क्योंकि वहां अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि उक्त बीमारी या तो खेती करने की बुरी और अयोग्य रीतियों से होती है या ऐसी अयोग्य जाति के गन्नों की खेती करने से, जिन मे इस बीमारी का सामना करने की ताक़त नहीं है।"

कहने का मतलब यह है कि बीमारी की रोक के लिये जहां खेती की पद्धतियों मे सुधार करने की जरूरत है, वहां ऐसी किस्मों को ढूँढ़ने की भी आवश्यकता है जिनमें बीमारियों का मुकाबला करने की ताकत हो। मि० हॉवर्ड अपने "भारत की फ़सलें" (Crops in India) नामक ग्रन्थ मे लिखते हैं—"यहां

॥ Sugar Committe's Report)

हिन्दुस्थान में बीमारियों से बचने का सब से अच्छा उपाय फफूँद (फंगस) को नष्ट करने या उससे पौधे को बचाने की अपेक्षा उस क़िस्म को ही बदल देना है"।

इसके सिवाय भूमि में वायु प्रवेश के प्रबन्ध से ये बीमारियाँ कम हो सकती हैं। यह बात कुछ उदाहरणों से और भी स्पष्ट हो जायगी। खेती करनेवाले पाठक जानते होंगे कि गन्ने को लगने वाली फफूंद हिन्दुस्थान के कुछ भागों में अधिकता से पाई जाती है। मध्य-प्रान्त की काली, उत्तरी बिहार के द्वाबे की बहुत सी ज़मीनों में वायु का प्रवेश ठीक न होने से गन्ने को फफूंद लग जाती है। इससे इनमें निकलने वाली शक्कर की तादाद बहुत कम हो जाती है। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं उक्त भूमि में वायु प्रवेश की गुंजाइश कम होने से ये बलाएँ लगती हैं। जिस भूमि में वायु-प्रवेश ठीक तरह होता है वहाँ बीमारी का जोर कम रहता है। इसका एक उदाहरण लीजिये। मध्य-प्रान्त के "सिडबाही" नामक स्थान की काली मटियार भूमि में होने वाली गन्ने की काश्त पर अक्सर फफूँद लग जाती थी और इससे गन्ने की उपज भी कम बैठती थी। वही खेती जब चन्दखुरी की पोली हवादार ज़मीन में की गई तो दो आश्चर्यजनक बातें मालूम हुईं। पहली यह कि काली ज़मीन की अपेक्षा उक्त ज़मीन में गन्ना शीघ्र बढ़ा और छिले हुए गन्ने की उपज प्रति एकड़ लगभग ४० टन हुई। दूसरी आश्चर्य की बात यह हुई कि वहाँ गन्ने को फफूंद बिलकुल नहीं लगी। यहाँ यह बात भी न भूलना चाहिये कि दोनों जगह वर्षा

की औसत समान है और सिडवाही की काली जमीन मे, रासायनिक दृष्टि मे, चन्दखुरी की जमीन की अपेक्षा ज्यादा उर्वरा शक्ति है। फिर क्या कारण है कि बढ़िया वाली जमीन स हलकी जमीन मे गन्ना अच्छा पैदा हुआ ? इसका कारण है। वह यह है कि सिडवाही की मटियार काली जमीन की बनावट वर्षा क समय आसानी मे बिगड़ जाती है। उसमे हवा का प्रवेश प्राय: बन्द हो जाता है। इससे पौधो की बाढ़ कुदरती तौर से कम हो जाती है। वे कमजोर पड़ जाते है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कमजोरो पर दुश्मन जल्दी हमला कर बैठता है और वह कामयाब भी हो जाता है। बस यही दशा उक्त भूमि मे उगने वाले पौधों को होजाती है। यही कारण है कि इस भूमि मे पैदा होने वाले गन्नो मे बीमारी लग जाती है। इसके विपरीत चन्दखुरी की जमीन की बनावट कुछ ऐसी हैं कि उस पर ७० इञ्च वर्षा का बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। इससे उसमे प्रवेश होने वाली वायु का मार्ग भी बन्द नहीं होता। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि वहाँ न तो पौधों की बाढ मे कोई रुकावट होती है और न उन पर कोई रोग ही लगता है। जावा देश के सम्पूर्ण अनुभवो से यही सार निकलता है कि जिस भूमि मे पानी का ठीक बहाव हो जाता है, जिसमें अच्छी जुताई की जाती है और इन कारणो से जहाँ भूमि मे ठीक तरह से वायु प्रवेश होता रहता है, वहाँ फ़सले भली प्रकार फलती फूलती हैं और उन पर रोगों के आक्रमण भी नहीं होते।

क्वेटा मे भी कुछ इसी प्रकार के अनुभव हुए। पाठक जानते हैं कि वहाँ बादाम तथा आडु आदि मेवे की खूब काश्त होती है। देखा गया कि जाड़े के दिनो मे इन पौधो पर अधिक सिंचाई करने से इनमे इल्लियाँ लग जाती हैं पर साथ ही मे यह भी अनुभव हुआ कि जिन खेतो मे गहरी जुताई की गई वहाँ इन इल्लियों का उपद्रव नहीं हुआ। इतना ही नहीं जहाँ ये इल्लियां लग भी गईं थीं, वहाँ भी गहरी जुताई करने से इनका जोर बहुत कम हो गया। इन पेड़ों मे पहले आई हुई पत्तियो मे अधिक हानि हुई, पर उन्हीं वृक्षो की शाखो मे. जुताई करने के बाद, आई हुई पत्तियाँ अच्छी और निरोग बनी रहीं। इसके अतिरिक्त एक विशेषता यह रही कि बीमारी पुरानी पित्तयो से नई पत्तियों की ओर कभी नहीं फैली।

कहने का सारांश यह है कि खेत की अच्छी और गहरी जुताई करने से, भूमि मे वायु प्रवेश के लिये उचित प्रबन्ध कर देने से, भूमि का तैयार करने को रीतियों मे परिवर्तन करने से, पौधों की रोगनिवारक शक्ति पर बहुत प्रभाव पड़ता है और वे बहुत सी बीमारियो के शिकार होने से बच जाते हैं।

इसके अतिरिक्त काश्त के लिये फ़सल की ऐसी जाति का बीज चुनना चाहिये जिसमे अधिक से अधिक रोग निवारक शक्ति हो। अनुभव से यह बात भी प्रकट हुई है कि जब बीमारी लगनेवाली और न लगनेवाली किस्मों की खेती पास ही पास की जाती है तो बीमारी न लगनेवाली क़िस्म में बीमारी नहीं फैलती।

जैसे पूसा नं० ४ की जाति का गेहूँ, जिसे गेरुए की बीमारी नहीं लगती, अगर ऐसी जाति के गेहूँ के पास बो दिया जावे जिसे उक्त रोग लगता है, तो यह निश्चित है कि पूसा नम्बर ४ उक्त रोग के मुक्त रहेगा।

फ़सल को योग्य हेरफेर के साथ बोने से भी बीमारी के आक्रमण का डर कम रहता है।



गेहूं की खेती

संसार के गेहूँ पैदा करनेवाले देशों मे भारतवर्ष का आसन बहुत ऊँचा है। अमेरिका के संयुक्त प्रदेश और केनड़ा को छोड़ कर भारतवर्ष ही दुनियां मे सब से अधिक गेहूँ पैदा करता है। बृटिश-भारत मे २ करोड़ पचास लाख एकड़ भूमि में गेहूँ की काश्त होती है। पर अफ़सोस इस बात का है कि गत बीस वर्षों से भारत मे गेहूँ के रक़बे मे न तो कहने सरीखी कोई वृद्धि हुई और न उसकी पैदावार ही मे विशेष अन्तर पड़ा। संसार के अन्य सभ्य देशों मे खेती की वैज्ञानिक पद्धतियों द्वारा गेहूँ की उपज मे आश्चर्य-जनक वृद्धि हुई है। एक एकड़ में भारतवर्ष के किसान जितने गेहूँ पैदा करते हैं, उससे अमेरिका, केनड़ा, आस्ट्रेलिया प्रभृति देश दुगुने तिगुने गेहूँ पैदा करते हैं। भारतवर्ष की जन-संख्या बढ़ती जा रही है और इससे यहाँ भोजन की समस्या अधिकाधिक जटिल होती जा रही है। ऐसी दशा में गेहूँ प्रभृति अनाज की उपज में वृद्धि करना आवश्यक हो गया है।

इसके अतिरिक्त महायुद्ध के पश्चात् लोग गेहूँ के खाद्य का ज्यादा काम मे लाने लगे हैं। इससे देश में गेहूँ की खपत बहुत

बढ़ गई है। इसी कारण विदेशो मे माल चढ़ानेवाले कितनेही व्यापारियों का यह कथन है कि कुछ ही वर्षों में वह समय आ पहुँचेगा, जबकि भारतवासी न केवल अपना गेहूँ विदेशो को भेजने में असमर्थ हो जावेगे वरन उनको अपने खर्च के लिए भी विदेशों मे गेहूँ खरीदने की आवश्यकता होगी।

कृषि-विशारदो का कथन है कि अगर भारतवर्ष मे विशाल पाये पर गेहूँ की खेती की जाय तो उसकी उपज मे इतनी वृद्धि हो सकती है कि वह अपनी आवश्यकताओं को भली प्रकार पूरी कर सके। भारत मे इस पदार्थ की पैदावार मे कमी आने का कारण यह है कि यहाँ इसकी खेती वैज्ञानिक ढग से नहीं की जाती। इसके अतिरिक्त यहाँ किसानो के खेत छोटे २ रहते हैं जिससे किसानो को काश्त का खर्च तो ज्यादा पडता है और पैदावार कम होती है। अतएव यहाँ के किसानो को चाहिये कि वे चकबन्दी मे वैज्ञानिक पद्धतियो के आधार पर खेती करे, जिससे कम से कम खर्च और रकबे मे अधिक से अधिक उपज हो सके। देखा गया है कि जहाँ वैज्ञानिक पद्धति मे खेती की गई है वहाँ उपज मे अच्छी वृद्धि हुई है। शाहजहाँपुर मे नवीन वैज्ञानिक पद्धति से खेती की गई और उसका नतीजा यह हुआ कि पैदावार मे दूनी वृद्धि हुई।

——

निम्नांकित तालिका मे इस बात का पूरा पता लगता है:—

फ़सल का नाम	नवीन पद्धति के द्वारा उपज	साधारण पद्धति के द्वारा उपज
गेहूँ (नं० १२)	३००३ पौंड	१५०२ पौंड
चना	२४०१ ,,	११०५ ,,
गन्ना	८४१०० ,,	४५०६ ,,

गेहूँ की खेती के लिये जमीन

गेहूँ की खेती के लिये वह जमीन ज्यादा अच्छी होती है जिसमे बालू (रेत) का कम हिस्सा हो तथा जिसमें आल (नमी) रखने की अधिक शक्ति हो। काली मिट्टी वाली भूमि मे ये गुण पाये जाते हैं। अतएव अनुभवी किसान गेहूँ की अच्छी पैदावार के लिए काली मिट्टी वाली जमीन को सबसे ज्यादा पसन्द करते हैं। दूसरे शब्दो मे यों कह लीजिये कि जिस भूमि की मिट्टी जितनी अधिक काली होगी उसमे गेहूँ की पैदावार भी उतनी ही अच्छी होगी। इसके अतिरिक्त गेहूँ की खेती के लिये दुम्मट भूमि भी अच्छी मानी गई है। दुम्मट भूमि में एक विशेषता यह है कि उसकी मिट्टी न तो चिकनी मिट्टी के समान चिपकने वाली ही होती है और न इतनी कड़ी ही होती है कि जिसको जुताई करना कठिन हो।

जमीन की तैयारी

अन्य पदार्थों की खेती के समान गेहूँ की खेती में भी जहां अच्छी और गहरी जुताई की जाती है, वहाँ गेहूँकी पैदावार अच्छी होती है। बिना आबपाशी की खेती में तो जुताई का सब से अधिक महत्व है। जमीन की जितनी अधिक जुताई की जायगी, उसमे उतनी ही अधिक नमी बनी रहेगी। इसके अलावा जमीन की गहरी जुताई से पौधों की जड़ें जमीन में अधिक घुस जाती हैं और वे अपना खाद्य द्रव्य जमीन की तह में से आसानी से खींच सकती हैं। इसलिये जमीन में बार बार हल व बक्खर चला कर सात आठ इञ्च गहरी जुताई कर देना चाहिये। कई किसान केवल चार पाँच इञ्च गहरी जुताई कर गेहूँ बो देते हैं। इससे पैदावार अच्छी नहीं होती; क्योंकि एक तो बरसात का अधिक से अधिक पानी भूमि में समा नहीं सकता, दूसरे पौधों की जड़ें जमीन के अन्दर गहरी नहीं पैठ सकती। इस प्रकार काफी खुराक न मिलने के कारण पौधे नहीं बढ़ सकते। कानपुर के कृषि प्रयोग-क्षेत्र के अनुभवों से पता लगता है कि नवीन ढङ्ग के हलो द्वारा गहरी जुताई करने के पश्चात् देशी हलो द्वारा जुताई करने से अधिक फायदा होता है। क्योंकि ऐसा करने से जमीन खूब पोली हो जाती है और उसमे काफी नमी इकट्ठी हो जाती है। जुताई से यह भी लाभ होता है कि नीचे की तह की मिट्टी ऊपर आ जाती है और उसे धूप व हवा मिल जाती है, जो कि

जमीन की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने में सब से अधिक आवश्यक है। इस प्रकार वह भूमि उपजाऊ बन जाती है। इसके अतिरिक्त गहरी जुताई से खेत मे उगने वाले घासपात जड़ो सहित निकल कर मिट्टी मे मिल जाते हैं और सड़ जाने पर खाद का काम देते हैं।

इस फसल के लिये जमीन की जुताई अकसर बरसात मे होती है। ज्यो ही बरसात बन्द हो जावे, त्यो ही उसमें जुताई शुरू कर देना चाहिये। इस के लिये जमीन में ग्रीष्म ऋतु मे भी हल चला दिये जावे तो बहुत फ़ायदा होता है। इसके निम्न लिखित कारण हैं।

(१) ग्रीष्म ऋतु की तेज धूप से जमीन बड़ी उपजाऊ हो जाती है।

(२) वह बरसात का सारा का सारा पानी सोख सकती है। इससे उस मे काफी नमी बनी रहती है।

(३) यदि कहीं बरसात कम भी हो तो भी फसल अच्छी हो सकती है। यहाँ तक कि कई प्रदेशों में जहाँ केवल दस पन्द्रह इञ्च वर्षा होती है, इसी जुताई के कारण गेहूँ की फसल होती है।

कोई-कोई भूमि बहुत कड़ी होती है। इससे उसमें गरमी के मौसम मे हल चलाना असम्भव सा हो जाता है। अतएव इस प्रकार की जमीन में जुताई करने से पहले गर्मी के दिनों मे एक बार सिचाई कर देना चाहिये, और सबेरे के समय उसमे बक्खर फेर देना चाहिये जिस मे उथल-पुथल हुए हुए ढेले एक सरीखे हो

हो जावें। इस से सूर्य की तेज धूप मिट्टी की नमी का न सोख सकेगी।

गेहूँ का खाद

मनुष्य के लिये जिस प्रकार खाद्य की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार जुदी जुदी फसलों के लिये भी खाद्य की आवश्यकता होती है। कई कृषि-विद्या विशारदों ने गेहूँ की फ़सल पर विभिन्न प्रकार खादों का उपयोग कर जो नतीजे निकाले हैं, उनका वर्णन हम आगे चल कर करेंगे। गाय का गोबर, कंडों की राख, गांव या शहर से निकाला हुआ कूड़ा कचरा, मनुष्य का विष्टा, शोरा मिश्रित गाय का गोबर, हड्डी का खाद और हरी खाद गेहूँ की फ़सल के लिये मुफ़ीद खाद समझे गये हैं। इन्दौर के "प्लेन्ट रीसर्च इन्स्टीट्यूट" के भूतपूर्व डायरेक्टर मि० अल्बर्ट हावर्ड सी० आई० ई०, एम० ए०, गेहूँ की फसल को जिस प्रकार का खाद देना चाहिये। उसके विषय में लिखते हैं—

"गेहूँ बोने से पहले खेत मे खाद डालना चाहिये। यदि गेहूँ की फसल बोने से पहले उसी खेत मे कोई दूसरी फसल बोई जा चुकी हो और उस समय उसे खाद दिया गया हो तो फिर इस समय खाद देने की आवश्यकता न होगी। खाद तैयार करने की बड़ी सीधी तरकीब है। चीन की पद्धति के अनुसार झाड़ों के पत्ते कपास के डंठल, कूड़ा, कचरा, सांटे के पत्ते, छिलके अथवा अन्य चीजें जो कि पशुओं के खाने के काम मे न आती हो, एक

गड्ढे में डाल कर 'कम्पोस्ट' खाद तैयार कर लिया जाय। ये चीजें गड्ढे में डालने के पहले खूब बारीक कर ली जावें। इसके लिये उन्हें बारीक बारीक काट कर ढोरो के नीचे बिछादी जाय और ढोरों के मूत्र से मली हुई मिट्टी, गोबर व राख आदि चीजें उनमे मिलाते रहना चाहिये। ये सब चीजे गड्ढे मे यथा विधि डालदी जाय और फिर आवश्यकतानुसार उस पर पानी डाला जाय। इससे कुछ मास मे अच्छा कम्पोस्ट खाद तैयार होजायगा। हिंदुस्थान की भूमि को ऐसे खाद की बडी आवश्यकता है। यह खाद गेहूं की खेती के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है।"

बङ्गाल कृषि-विभाग के भूत पूर्व डेप्यूटी डायरेक्टर मि० डी० एन० राय, एम० ए० एम० आर० ए० सी०, एम० आर० ए० एस० अपने "Crops in Bengal" नामक ग्रन्थ मे गेहूँ की खेती के लिये निम्न लिखित खादों की सिफारिश करते हैं।

(१) गाय के गोबर की राख और शोरा का मिश्रण।

(२) कूड़ा कचरा।

(३) गाय का गोबर।

इन सब मे गाय के गोबर से सबसे अच्छे नतीजे निकले हैं। गेहूं की काश्त मे गाय, भैंस प्रभृति ढोरो का गोबर इतना उपयोगी सिद्ध हुआ है कि उसके अधिक प्रचार की सिफारिश बड़े जोरो के साथ की जासकती है। हां, बिना पीयत के गेहूं की खेती मे गोबर के खाद से उतने अच्छे नतीजे नहीं निकले जितने कि पीयत के गेहूं की काश्त मे निकलते हैं।"

बङ्गाल के सुप्रसिद्ध कृषि-विद्या-विशारद मि० एस० सी० सेन महाशय ने गेहूं की काश्त के विषय मे जो तजुर्बे किये हैं उनके आधार पर आप लिखते हैं:—

"मेरी राय मे हर बीघे के पीछे जुताई के समय २० बोरे गोबर या एक मन हड्डी का खाद डालना चाहिये। जब गेहूं के पौधे फलने फूलने लगे तब ५ सेर शोरा भी डाल दिया जाय। इससे फसल पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। तालाब की मिट्टी भी गेहूं की फसल के लिये उम्दा खाद है।"

शिवपुर कालेज के भूतपूर्व प्रोफेसर स्वर्गीय नित्यगोपाल मुकर्जी अपने "Hand Book of Indian Agriculture" नामक विख्यात ग्रन्थ मे लिखते हैं:—

"गेहूं के खेत में प्रति एकड़ डेढ़ मन शोरा छिड़कने से बहुत ही अच्छा परिणाम निकलता है। यह गेहूं का सब से अच्छा खाद है। इसके अतिरिक्त देश की परिस्थिति और जमीन की अवस्था पर खाद का निश्चय किया जा सकता है।"

मि० अल्बर्ट हावर्ड, सी० आई० ई०, एम० ए० ने "Wheat in India" नामक एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में गेहूं की काश्त के सम्बन्ध जो प्रयोग हुए हैं उनका आपने बड़ा मनोरञ्जक वृत्तान्त इस ग्रन्थ मे दिया है और साथ ही साथ अपने अनुभव भी प्रकाशित किये हैं। उक्त ग्रन्थ मे गेहूं के खाद के सम्बन्ध मे एक विस्तृत अध्याय है। गेहूं

को काश्त मे काम आने वाले विभिन्न खादों के प्रयोगों पर प्रकाश डालने के पश्चात् आप लिखते हैः—

"यह बात स्पष्ट है कि गेहूं की अंकुरण शक्ति के विकास के लिये जमीन मे नमी और उचित मात्रा मे नाइट्रोजन का होना आवश्यक है। इन दोनो बातो की पूर्ति ढोरो के गोबर से भली भाँति होसकती है। गोबर का खाद शोरे के खाद से अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है, क्योंकि इससे जमीन को अधिक नमी रखने की शक्ति प्राप्त होती है, जो गेहूँ की खेती के लिये अत्यन्त आवश्यक है। शोरे का खाद भी इसके लिये एक अच्छा खाद है परन्तु इसे योग्य समय पर उचित सीमा मे देना चाहिये। इसके बार २ देने से नुक़सान होने का डर रहता है। गेहूँ की काश्त के के लिये हरी खाद की भी सिफ़ारिश की सकती है। पर इसका भी निरन्तर उपयोग विशेष लाभकारी नहीं, क्योंकि हरा खाद जिन फसलों से बनता है उनसे जमीन की नमी पर हानिकारक प्रभाव गिरता है।"

मतलब यह है कि मि० हावर्ड, गत पृष्ठों मे बतलाया हुआ, कम्पोस्ट खाद या यथा विधि तैयार किया हुआ गोबर का खाद ही गेहूँ की फ़सल के लिये सर्वोत्कृष्ट समझते हैं।

भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशो में गेहूँ की फ़सल पर विभिन्न खादों के प्रयोगों के जो परिणाम निकले हैं उन पर प्रकाश डालना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है।

कानपुर में गेहूँ की फ़सल पर विभिन्न प्रकार के कृत्रिम व साधारण खादों के प्रयोग किये गये, उन सबके वर्णन करने से यहाँ विशेष लाभ नहीं है। इन प्रयोगों से सुप्रख्यात कृषि-विद्या विशारद मि० हावर्ड ने जो नतीजे निकाले हैं, उन्हें हम उन्हीं के शब्दों में नीचे देते हैं—

"गेहूँ के खाद में सबसे अधिक आवश्यकता नाइट्रोजन की है और यदि नमी व आबहवा अच्छी हुई तो यही केवल एक ऐसा पदार्थ है, जिस पर गेहूँ की उपज की वृद्धि निर्भर है। पशुओं के मल-मूत्र मे नाइट्रोजन रहता है। अतएव विधि अनुसार तैयार किया हुआ गोबर का खाद देने से गेहूँ की फ़सल की तरक्की की जा सकती है। कानपुर के प्रयोगो से यह भी मालूम हुआ कि पोटेशियम नाइट्रेट का खाद लगातार देते रहने से उसका ज़मीन पर बुरा असर पड़ता है। यहाँ पर पाठकों का ध्यान इस बात पर भी खीचना ज़रूरी है कि सन् १८९४ ई० के बाद जब से कानपुर मे गहरी जुताई के प्रयोग जारी किये गये हैं, गेहूँ की फ़सल मे बढ़ती होने लगी है। अतएव इससे यह बिलकुल निश्चित है कि खाद का असर तभी हो सकता है, जब कि खेत की गहरी जुताई की जावे।"

"इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि (१) गर्मी के दिनों की अच्छी व गहरी जुताई (२) अच्छी वर्षा और (३) विधि-पूर्वक तैयार किया हुआ गोबर का खाद ये ही तीन बातें गेहूँ की अच्छी उपज

के प्रश्न को हल कर सकतीं हैं। जहाँ मुमकीन हो वहाँ सन का हरा खाद देने से भी गेहूँ की उपज में सहायता मिल सकती है।"

अन्य स्थानों के प्रयोग

नागपुर के कृषि-क्षेत्र मे भी कई प्रयोग किये गये। सन् १८८३-८४ ई० मे मि० फूलर नामक एक कृषि-विद्या-विशारद ने गेहूँ की फ़सल में लगनेवाले खादों के सम्बन्ध मे अन्वेषण शुरू किये। पहले दो वर्षो मे कुछ ऐसी दैवी दुर्घटनाएं हो गईं जिस से उनके अन्वेषण का कोई फल दिखलाई नहीं पड़ा। सन् १८८५-८६ ई० में गेहूँ बोने के समय वर्षा की कमी रही और दिसम्बर मे आवश्यकता से अधिक वर्षा हुई और खूब ठंडी हवा चली। इससे सरकारी फार्म के गेहूँ की फ़सल पर गेरुआ रोग लग गया। यहाँ यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि यह रोग उन स्थानों में अधिक लगा जहाँ एमोनियम क्लोराइड का कृत्रिम खाद दिया गया था। इसके दूसरे साल फसल बोने के समय अधिक वर्षा हुई और इससे खेत मे डाला हुआ सारा खाद बह गया। इससे उस खाद का कोई असर दिखलाई नहीं पड़ा। इसके बाद कई वर्षों तक प्रयोग जारी रहे। नागपुर के पिछले प्रयोगों से यह बात स्पष्ट रूप से प्रकट हुई कि गेहूँ की खेती के लिये नाइट्रोजन एक आवश्यक पदार्थ है। नाइट्रोजन युक्त खाद से वहाँ बहुत ही अच्छे नतीजे निकले। खाद और आबपाशी का मेल हो जाने से गेहूँ की पैदावार मे और भी अधिक वृद्धि हुई।

अन्य प्रयोग

बिहार के डुमरांव प्रयोग क्षेत्र में गेहूँ की खेती पर शोरा, गोबर तथा अन्य खादों के प्रयोग किये गये। इन सब के परिणामो से यह प्रगट हुआ कि उन खादो ने फसल की बढ़ती पर सब से अच्छा असर डाला, जिन मे नाइट्रोजन की मात्रा सब से अधिक थी। नाइट्रोजन युक्त खाद और आबपाशी के मेल से सब से अधिक फसल पैदा हुई। हरी खाद से उस समय अच्छा फ़ायदा हुआ, जब बोनी के समय अच्छी वर्षा हो गई थी।

खाद से फ़सल के गुण में वृद्धि

आधुनिक कृषि-विद्या-विशारदो ने निरन्तर प्रयोगो के द्वारा यह सिद्ध किया है कि उचित प्रकार का खाद देने से अनाज के गुण में वृद्धि होती है। केवल भारतवर्ष हो मे नहीं, वरन् संसार के अनेक देशो के अनुभवों से यह प्रगट हुआ है कि जिन फ़सलों को उचित प्रकार का खाद दिया गया, उनके दाने हृष्ट पुष्ट हुए। जहां ऐसा नहीं किया गया, वहां न केवल फसल ही कमज़ोर हुई वरन् दाने भी कमज़ोर हुए। यूरोप के 'राथेमस्टेड' नामक स्थान के प्रयोगों ने यह सिद्ध किया है कि उचित प्रकार के खाद से गेहूँ की केवल पैदावार ही ज्यादा नहीं होती वरन् गेहूँ भी हृष्ट पुष्ट होता है।

युरोप में गेहूँ की पैदायश

युरोप में कई जगह पोटाश जनित खादों से भी गेहूँ की फसल पर अच्छा असर पड़ा। पर भारत के लिये वह उतना उपयुक्त नहीं है। दक्षिण हैदराबाद के कृषि विभाग के भूत-पूर्व डायरेक्टर मि० जान कीनी अपनी "Intensive Farming in India" नामक ग्रन्थ मे लिखते हैं—

"संसार भर में डची ऑफ् एनहल्ट नामक स्थान में गहूँ की सब से अधिक पैदायश होती हैं। वहां प्रति एकड़ के पीछे ९९६ सेर गेहूँ की पैदायश होती है। उक्त प्रदेश मे पोटाश की बड़ी बड़ी खाने हैं। यहां पोटाश सस्ता होने के कारण लोग इसे खाद के काम मे लेते हैं।"

प्रोफेसर वागनर और मार्कर ने यह प्रगट किया है—

"पोटाश जनित खादों के प्रयोग से (Potashic manre) उस भूमि की अपेक्षा जिस से खाद नहीं दिया गया है, १४७० पौंड या ७३५ सेर गेहूँ अधिक पैदा हुआ है। चाहे जमीन अच्छी हो चाहे खराब हो, पोटाश जनित खादो से उसकी उपजाऊ शक्ति बढ़ती है और उपज अच्छी होती है। बेल्जियम की भूमि में पोटाश का ज्यादा अंश है और यही कारण है कि वहां की भूमि में बहुत गेहूँ पैदा होते हैं।"

डा० स्केडी विन्ड के मत से खाद्य द्रव्या के लिये पोटाश जनित खाद बहुत ही लाभदायक हैं। म्यूरियट ऑफ़ पोटाश

जिस में साधारण नमक की अपेक्षा पोटाश का चौगुना हिस्सा रहता है, अत्युत्तम खाद का काम दे सकता है।

बेल्जियम के सुप्रसिद्ध प्रोफेसर एच० बोरियट खाद्य द्रव्यों के जल्दी पकने के लिये और पुष्ट दानों की उत्पत्ति के लिये फॉस्फरिक एसिड की सिफारिश करते हैं।

आस्ट्रेलिया के किसान फास्फरिक जनित खाद (Phosphetic manures) पर अधिक अवलम्बित रहते हैं; परन्तु इससे आगे चल कर जमीन में रहे हुए नाइट्रोजन और पोटाश की मात्रा कम हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि गेहूँ की फ़सल में बहुत कमी आ जाती है और किसानों को नुकसान पहुँचता है। परन्तु वहां फास्फरिक एसिड की उपयोगिता बहुत कुछ सिद्ध हो चुकी है।

प्रोफेसर जान बेली जिन्होंने प्रति एकड़ ७७ मन गेहूँ पैदा किया है लिखते हैं कि—

"फास्फरिक एसिड जनित खादों से गेहूँ की खेती में आश्चर्यजनक वृद्धि होती है।"

बोने के लिये बीज

किसी भी फ़सल का दारोमदार बहुत कुछ उसके बीज पर है। खेत की चाहे जितनी अच्छी जुताई की जाय, उसमें चाहे जितना उत्तम खाद डाला जाय, पर यदि बीज अच्छा न होगा तो फ़सल अच्छी न आयगी। इसलिये हमारे किसान भाइयों

का सब से प्रथम कर्त्तव्य यह है कि वे खेती के लिये अच्छे से अच्छा बीज चुनें। बीज चुनने के लिये नीचे लिखी विशेषताएं ध्यान मे रखना चाहिये—

(१) बीज हृष्ट पुष्ट और निरोग हो।

(२) ऐसे गेहूँ का बीज हो, जिस मे गेरुआ लगने की कम सम्भावना हो।

(३) ऐसे बीज में पाले का मुकाबला करने की ताक़त हो, अर्थात् उस बीज से पैदा होनेवाली फसल को पाले से कम हानि पहुँचे।

(४) शीघ्र पकने वाले गेहूँ का बीज हो।

(५) ऐसे गेहूँ का बीज हो, जिस का आटा लसदार हो, चापड़ कम निकले व साथ हो रोटी मीठी और स्वादिष्ट हो और वह पिसाई मे भी अच्छा हो।

जिस बीज मे ये सब गुण हो, उसे ही अच्छा समझना चाहिये। इस प्रकार का बीज पूसा नं० ४ और १२ है। इनकी उपरोक्त विशेषताओं को देख कर बहुत से कृषि क्षेत्रो पर इनका प्रयोग किया गया। तथा ताल्लुकेदारो व जमींदारो ने भी इन्हें बो कर अनुभव किया तो बहुत अच्छी पैदावार हुई।

इन्दौर के सेन्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट के डायरेक्टर महोदय की सलाह के अनुसार इन्दौर राज्य के सांवेर परगने के पालिया नामक स्थान के किसान मि० मंगतराय गुप्ता ने अपने फ़ार्म पर पूसा नं० ४ का अनुभव किया और उन्हे इसमे आशातीत

सफलता मिली। इससे यह सिद्ध होता है कि यहां की भूमि के लिये पूसा नं० ४ व १२ आदि गेहूँ उपयुक्त हैं। मुजफ्फरनगर के सफेद गेहूँ की जाति भी अच्छी होती है, पर वह पूसा नं० ४ व १२ की सानी नहीं रखती। यह गेहूँ बिना आबपाशी के भी हो सकता है।

बीज के चुनाव के समय नीचे लिखी हुई बातों पर ध्यान देना चाहिये।

(१) बीज फसल के पक जाने के बाद प्राप्त किया गया हो और सर्दी से बचा कर रखा गया हो। फसल के अच्छी तरह पकने के पहिले निकाला हुआ बीज अच्छा नहीं उगता और उससे पैदावार हलकी होती है।

(२) बीज ज्यादा पुराना न हो। जहाँ तक बन सके नये साल की फसल का हो।

(३) कीड़ो का खाया हुआ या कुतरा हुआ न हो।

(४) बीज मे किसी तरह का रोग न हो।

(५) उसमे से अच्छे बीज अलग छाँट लिये गये हों।

अच्छे बीज की परीक्षा।

(१) गेहूँ के १०० बीज लेकर गुनगुने पानी मे डाल दो। यदि ६० या ७० से अधिक दाने पानी में बैठ जावें तो बीज को अच्छा समझना चाहिये अन्यथा नहीं।

(२) गेहूँ के १०० बीज लकर किसी बर्तन में थोड़ी सी मिट्टी डालकर बोदो, और उसमे थोड़ा सा पानी छिड़क दो। जब सब दाने उग आवें तो उन्हें गिनो। यदि उनमे ६० या ६० से अधिक दाने उग आवें तो बीज चुनलो।

(३) कच्चे दानो कों दाँतों से चबाकर देखो कि दानो में लस और गोंद पूरा है या नहीं और उसकी लज्जत अच्छी है या नहीं। यदि इस प्रकार जाँच नहीं कर सको तो आटा पिसवा कर उसकी रोटी खाकर परीक्षा करलो।

(४) दस या बीस बीज पानी मे भिगो दो। जब बीज भली भाँति भीग जावे तो देखो कि वे अच्छी तरह फूले हैं या नहीं। यदि सब दाने एक सरीखे फूल कर खूब मोटे हो गये हों और उनमें से साफ़ सफेद दूध निकलता हो तो समझ लो कि बीज अच्छे हैं। जब यह परीक्षा हो जावे तब उन दोनो को गिनकर भूमि मे बो दो। जब पौधा बड़ा हो जावे तब उसके पत्तों को ध्यान पूर्वक देखो। यदि पत्ते सुहावने और अच्छे रंग के हों तो निश्चय कर . क बीज बहुत बढ़िया हैं।

गेहूँ के बीजों की अंकुरण शक्ति जाचने की रीति

किसानों के लिये यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि कौन बीज में किस प्रकार की अंकुरण शक्ति है। इस विषय पर पजाब सरकार के इकॉनोमिक बॉटेनिस्ट लाला जयचन्द्र लूथ्रा आय० ए०/एस० ने हमारे द्वारा संम्पादित 'किसान' मे एक अत्यन्त व्यव-

हारिक एवं उपयोगी लेख लिखा है। उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं।

"कभी २ गाहनी के (दाना निकालने) समय पानी गिर जाने से गेहूँ के दाने खराब हो जाते हैं और इससे बीज पूरी तरह से अंकुरित नहीं होने पाते। यदि इस प्रकार के बीज मामूली परिमाण मे खेतों मे बो दिये गये तो पौधे दूर २ पर उगते हैं और पैदावार भी कम होती है। अतएव इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि बोने से पहले या बोते समय बीज के अंकुरित होने की तादाद मालूम करली जाये और उसी मुताबिक बीज बोये जावें।

अनुभवों से निम्न लिखित दो तरकीबें इस काम के लिये लाभदायक साबित हुई हैं:—

(१) चार पाँच इञ्च लम्बाई चौड़ाई का एक कटोरा लो। यह कटोरा हिन्दुस्थान के हर एक किसान के घर मे मिल सकता है। इसको साफ रेती से भर दो। इस रेती को भिगो दो। जब रेत पानी से तर हो जावे तब पानी डालना बन्द कर दो। इसमें थोड़ा सा भी फालतू पानी मत रहने दो। इसके बाद बीज के ढेर में से छः अलग२ स्थानों से मुट्ठी २ भर दाने निकाल लो और उन्हें अच्छी तरह मिला लो। इनमें से कोई १०० बीज चुन लो और उनको एक २ कर कटोरे की रेत की तह पर जमा दो। इस पर एक पतली सी रेत की तह और जमा दो। इस कटोरे को एक कमरे में रख दो और उस पर प्रति दिन थोड़ा २ पानी छिड़कते रहो जिससे रेती गीली रहे। कटोरे को रोज देखते रहो और

इसमें यदि कुल बीज अंकुरित हो जावें तो उन्हे कटोरे से निकाल कर गिनलो। इन बीजों को प्रति दिन गिन कर नीचे दी हुई तालिका में दर्ज करते रहो।

बीज का नमूना	बोये हुए बीजों की तादाद	अंकुरित होने की संख्या दिवस										मीजान (कुलजोड़)	औसत फी सैकड़ा अंकुरित होने की
		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०		
गेहूँ नं०	१००	—	—	—	३०	[illegible]	२०	५	—	—	—		

"इस प्रकार दस दिन तक प्रयोग जारी रखना चाहिये। जो बीज इस मुद्दत में न उगें उन्हें निकम्मे समझना चाहिये। ११ वें दिन अंकुरित हुए बीजो की संख्या जोड कर यह देखना चाहिये फी सैकड़ा कितने बीज अंकुरित हुए हैं। उदाहरण के लिये यदि फी सैकड़ा ७५ बीज अंकुरित हुए तो समझ लेना चाहिये कि चौथाई हिस्से के बीज खराब हैं। इसलिये बोनी के समय मामूली परिमाण की अपेक्षा सवाया बीज बोना चाहिये। मसलन यदि अच्छे बीज फी एकड़ २४ सेर बोये जाते हो तो ७५ सैकडा अंकुरित होने वाले बीज एक एकड मे ३० सेर बोना चाहिये। उस समय यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि बीज मे से घास पात के डंठल आदि अलग निकाल दिये जावें और दाने बाल मे पूरी तरह अलग कर लिये जावें।"

(२) "दूसरी तरकीब यह है कि कटोरे मे रेती न भर कर ब्लाटिंग (स्याही सोख) का टुकड़ा या खुरदरे मोटे कपड़े को पानी मे भिगो कर रख दो। इसमे एक २ करके १०० बीज जमा दो और उनके ऊपर पहले की तरह ब्लाटिंग या खुरदरे मोटे कपड़े की पट्टी गीली करके रख दो। इस कटोरे को एक दूसरे कटोरे से ढक दो जिसमे कि पानी भाफ बन कर उड़ने न पावे। इस कटोरे को हर रोज देखते रहो और यदि आवश्यकता हो तो थोड़ा पानी और मिला दो इस कटोरे में अंकुरित हुये बीजो को भी हर रोज गिन कर उनको ऊपर दिये हुये तालिका मे दर्ज करते रहो। अगर इनमे अधिक से अधिक बीज अंकुरित हो जावे तो बोने योग्य समझ लो।"

"ऊपर बतलाये हुए तरीके दूसरे अनाजो की उत्पादक शक्ति जानने के लिये भी काम मे लाये जा सकते हैं पर कटोरे की रेती को हर प्रयोग के बाद बदलना आवश्यक है।"

बीज की तादाद

भारत वर्ष के विभिन्न कृषि क्षेत्रो मे इस बात के भी तजुर्बे किये गये हैं कि किस २ तादाद मे बीज डालने से फसल की उपज पर क्या २ असर पड़ता है। तजुर्बे से यही पाया गया कि जिस खेत मे बीज बिलकुल गिचपिच यानी बहुत ही पास २ न बोये जाकर एक दूसरे से उचित अन्तर पर बोये जाते हैं वहाँ गेहूँ के पौधे अच्छी तरह से फूलते फलते हैं।

ई० स० १८९१ से लगाकर १८९३ तक नागपुर में गेहूँ के बीजों की तादाद के सम्बन्ध में कई तजुर्बे किये गये। जुदे २ खेतों में ३० सेर से लगा कर ६० सेर तक प्रति एकड़ के हिसाब से बीज बोये गये और उनके नतीजे देखे गये। अन्तिम निरीक्षण के बाद यह साबित हुआ कि फी एकड़ ४५ सेर बीज बोना सबसे अच्छा है।

ई० स० १९०७ मे पंजाब के लायलपुर नामक स्थान मे भी बीजों के सम्बन्ध मे अनेक तजुर्बे किये गये और उन सब मे कृषि-विद्या विशारदो ने यह नतीजा निकाला कि वहाँ की भूमि के लिये प्रति एकड़ ३५ सेर बीज कॉफी होत है।

मालवा देश मे प्र ते एकड़ ३५ सेर बीज डाला जाता है।

बोनी के लिये खेत की तैयारी

बोनी के समय खेत की किस प्रकार तैय्यारी करना चाहिये, इस विषय पर साधारण तौर से हम ऊपर प्रकाश डाल चुके हैं। अब हम इस सम्बन्ध मे जुदे २ स्थानों मे जो प्रयोग हुए हैं उन पर भी थोड़ी सी रोशनी डालना आवश्यक समझते हैं। कानपुर के प्रयोग-क्षेत्र मे इस सम्बन्ध मे उपयोगी अनुसन्धान हुए हैं। अधिक गहरी जुताई से या हल्की जुताई से फसल पर क्या असर होता है इसके वहाँ अच्छे तजुर्बे किये गये। ये तजुर्बे सन् १८८२ ई० से १९०० तक होते रहे।

जुताई का समय	सुधरे हुए हल से ८ इच गहरी जुताई ४ वक्त	सुधरे हुए हल से ५ इच गहरी जुताई ४वक्त	देशी हल से ४ इच गहरी जुताई ८ वक्त
	सेर	,,	,,
सन १८८३ से १८८६ तक की औसत	९८०	६२९	४८१
सन १८८७ से १८९० तक की औसत	८३४	८६२	६०२
सन १८९१ से १८९४ तक की औसत	१०२५	९९६	८६९
सन १८९५ से १८९८ तक की औसत	८८१	७८४	८६७

उपरोक्त तालिका से अथवा अन्य इसी प्रकार के कई तजुर्बों से यह स्पष्टतया प्रगट हो गया है कि जहां जहां गहरी जुताई की गई, वहां उपज में अच्छी वृद्धि हुई। बिहार के डुमरांव नामक स्थान के कृषि-प्रयोग क्षेत्र मे भी इस सम्बन्ध में प्रयोग (Experments) किये गये। वहां भी गहरी जुताई के अच्छे फ़ायदे नज़र आये। हां ! कहीं कहीं कभी कभी किसी विशेष परिस्थिति के कारण गहरी जुताई से फ़सल पर कुछ विपरीत

परिणाम भी देखे गये हैं। पर ऐसे अवसर कचित ही उपस्थित होते हैं। अकसर गहरी जुताई से फ़ायदे ही नजर आये हैं।

यहां एक और महत्व की बात ध्यान में रखने योग्य है। वह यह है कि बोनी के पूर्व एल्यूवियम (Alluvium) जमीन को तैयार कर लेना चाहिये। मि० हावर्ड साहब का कथन है कि पूसा मे हम ने इस बात के प्रयोग किये कि जमीन की तैयारी के साथ ही साथ उसमे बिना खाद ही के नाइट्रोजन की पूर्ति हो जावे। यह बात पहिले पहल असम्भव जची। पर अनुभव से इसकी सत्यता प्रगट हुई। उक्त कार्य की सफलता निम्न विधि से हुई। जमीन की कई बार जुताई करने के बाद उसे अप्रैल, मई और जून की बिलकुल सूखी हुई गर्म हवा और सूर्य की धूप मे खुला छोड़ दिया। इसका भावी फ़सल पर अत्यन्त आश्चर्यकारक प्रभाव गिरा। देखा गया कि जब जब खेत की मिट्टी हल से उथल-पुथल कर गर्म धूप और हवा के अभिमुख नहीं की गई तब २ फ़सल पर बुरा असर पड़ा। अनुभव से यह भी जाना गया है कि गेहूँ की फ़सल कट जाने के बाद जमीन को उन्हाले की गर्म गर्म हवा और धूप खिलाई जावे तो इसका फ़सल पर बहुत ही बढ़िया प्रभाव पड़ता है। इङ्गलैण्ड मे यहाँ की तरह गर्म मोसम नहीं होती। इसलिये वहां गेहूँ कीखेती में कृत्रिम उपायों के द्वारा यह क्रिया की जाती है। जमीन की मिट्टी को इस प्रकार गर्म हवा और धूप खिलाने से फ़सल तो ज्यादा आती ही है पर इसके साथ साथ ऊँचे दर्जे का अनाज भी पैदा होता है।

गर्मी के दिनो मे गेहूँ के खेत को गर्म हवा और धूप खिलाने से तथा वर्षा ऋतु में जब जब वर्षा बन्द हो, तब तब हल बखर चलाने से गेहूँ की फसल पर, उसके बीज की बनावट पर, बहुत ही उत्तम प्रभाव देखा गया है। इसका कारण स्पष्ट है। इससे जमीन मे जल शोषण को अधिक शक्ति उत्पन्न होती है।

बोनी।

गेहूँ की बोनी १५ अक्टूबर यानी कार्तिक से आरम्भ होकर १५ नवम्बर यानी अगहन के मास तक समाप्त हो जाना चाहिये। बीज बोने के पहले भूमि को भली भाँति जोत कर एक सरोखी कर लेना चाहिये जिससे पौधो की जड़े भूमि मे बिना रोक टोक गहरी जा सके। यदि इस समय भूमि सूखी जान पड़े तो बक्खर फेर कर उसकी मिट्टी उलट पलट कर देना चाहिये जिससे बीज को नीचे से तरी जल्दी मिल सके।

बीज बोते समय यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि बीज जमीन मे इतना गहरा डालना चाहिये कि उसे ओल मिलती रहे। ओल से गेहूँ का पौधा भली भाँति बढ़ता है। हमारा ख्याल है कि कि बीज चार पाँच अंगुल गहरा डाला जावे। यदि इस जिन्स की बोनी 'उन्हालू फड़क' से की जाय तो विशेष फायदा हो सकता है। बीज को बहुत पास २ न बोना चाहिये। यदि कहीं कहीं ऐसा हो जावे तो जब पौधे उगें उस समय फालतू पौधों को भूमि से उखाड़ कर फेक देना चाहिये जिससे प्रत्येक पौधा भली भाँति

बढ़कर सम्हल सके। कम से कम हर एक पोधे के बीच में ४, ५ इञ्च का फासला रखा जावे, जिससे कि पोधे अच्छी तरह से बढ़ सकें। हम यह निश्चय पूर्वक नहीं कह सकते कि प्रति बीघा कितना बीज डालना चाहिये। इसका कारण यह है कि हर एक स्थान की हालत व आबहवा जुदी २ रहती है। बंगाल में प्रति बीघा २० सेर से ३५ सेर तक, पञ्जाब मे ३५ सेर से ४५ सेर तक बम्बई में २४ सेर से भी कम, संयुक्त प्रान्त, आगरा और अवध में ४० सेर से ५० सेर तक, मालवे में ३० सेर से लगाकर ४० सेर तक बीज बोया जाता है। जिन स्थानों में बीज के सड़ जाने का डर हो वहाँ ज्यादा बीज बोना चाहिये। यदि देर से बोनी की जावे तो भी बीज कुछ अधिक बोना चाहिये।

बीज बोने के बाद खेत को एक या दो दिन तक पड़ा रहने देना चाहिये और इसके बाद फिर बक्खर फिराना चाहिये। जिन खेतों में आबपाशी होती हो उनमें बक्खर फेरने के बाद पानी के लिये नालियाँ बना देना चाहिये।

आबपाशी

गेहूँ एक ऐसी फ़सल है जिसमे आबपाशी विशेष लाभदायक होती है। पञ्जाब व संयुक्त प्रदेश में जहाँ नहरों के द्वारा आबपाशी में आश्चर्यजनक उन्नति हो गई है, वहाँ आधी से ज्यादा फसल आबपाशी के द्वारा पैदा होती है। पर मध्य-प्रदेश, मध्यभारत, बम्बई तथा बरार आदि स्थानो मे नहरों द्वारा होने

वाली आबपाशी का विशेष प्रचार नहीं है ।कई कृषि-विद्या-विशारदों के अनुभवों से यह बात सिद्ध हुई है कि आबपाशी द्वारा मामूली पैदावार से ड्योढ़ी या दुगनी पैदावार होती है। अतएव आबपाशी के द्वारा इस जिन्स को पैदा करना विशेष लाभकारक है।

आबपाशी के लिये केवल चार बार पानी देने की जरूरत होती है। पानी पहली दफा बीज बोते वक्त दिया जाता है। यदि बरसाती पानी काफी मात्रा मे गिर गया हो तो इस समय पानी देने की आवश्यकता नहीं होती। यह पानी बीज बोने के २-४ दिन पहले दिया जाता है, जिससे खेत मे पौधो के उगने तक बराबर आल बनी रहे। दूसरा पानी गेहूँ के पौधे एक दो इञ्च लम्बे होने पर दिया जाता है। इसके बाद तीसरा पानी गेहूँ की बालियाँ निकलने के समय दिया जाता है। जब बालियो मे दाने निकलने लग जावे तब पानी बिलकुल बन्द कर देना चाहिये। इसका कारण यह है कि इस समय पानी देने से पौधों मे बड़े भयंकर रोग (जैसे गेरुआ आदि) पैदा हो जाते है। किसी २ जाति के गेहूँ की केवल २ या तीन बार सिंचाई करने से पैदावार आजाती हैं। इन जातियों मे से, जैसा हम पहले कह आये हैं, पूसा नं० १२ भी एक है।

कानपुर के कृषि प्रयोग क्षेत्रो मे इस बात की जाँच की गई थी कि अधिक से अधिक गेहूँ की फसल को कितने पानी की आवश्यकता होती है। उससे हमे पता लगता है कि गेहूँ को अधिक से अधिक ५ पानी की जरूरत होती है। यदि इससे अधिक पानी दिया गया तो फसल बिगड़ जाती है। अधिक पानी

देने से इस फ़सल का उतनी ही हानि होती है कि जितनी कम पानी देने से होती है। यदि बहुत ज्यादा पानी दिया गया तो गेहूँ के दानों की बनावट बराबर नहीं होती और उसकी क़ीमत भी बराबर नहीं आती। मि० हावर्ड महोदय अपने 'Wheat in India' नामक ग्रन्थ मे लिखते हैं कि 'पिसाई की बुराई' विलायत में बहुत बड़ी बुराई गिनी जाती है। अतएव बोये हुए खेत में इस प्रकार सिंचाई करना चाहिये कि पानी रेंगता हुआ व भूमि से सूखता हुआ आगे बढ़े और एक ही स्थान पर न भर जाये। इसी एक खास सहूलियत के कारण कुँए की सिंचाई से नहरों की सिंचाई की अपेक्षा अधिक पैदावार होती है। इसके अतिरिक्त कुँए के पानी में कुछ ऐसे तत्त्व होते हैं जो खाद का काम देते हैं। हमारे कई अनुभवी पञ्जाबी किसानों का मत है कि कई साल तक नहरों द्वारा सिंचाई करने के पश्चात् जब कुवों के पानी से सिंचाई की गई तो बहुत अधिक पैदावार हुई।

सिंचाई में यह बात अवश्य ध्यान मे रखनी चाहिये कि अधिक पानी के निकास के लिये नालियाँ अवश्य बना दी जावें।

गेहूँ की खेती में आबपाशी के प्रयोग

भारतवर्ष के जुदे २ मुल्कों मे खेती विभाग के जरिये आबपाशी के जो प्रयोग हुए उनका संक्षिप्त परन्तु मनोरञ्जक इतिहास हम नीचे देते हैं।

युक्त प्रदेश

युक्त प्रदेश के सीतापुर और अवध जिलों में गेहूँ की खेती में आबपाशी के जुदे २ प्रयोग किये गये। सीतापुर मे पाव २ बीघे के ४ टुकड़े लिये गये और उनमें तालाब के पानी से सिंचाई की गई। इस सिचाई के प्रयोग में यह देखा गया कि जहाँ हर महीने सिंचाई की गई वहाँ की पैदावार सब से अच्छी हुई। इससे अधिक बार सिंचाई करने का नतीजा संतोषजनक नहो हुआ। उससे पैदावार में कमी होगई। जमीन के उक्त टुकड़ों पर आब-पाशी से जो नतीजे देखे गये वे नीचे की तालिका में दिये जाते हैं।

खेत का नं०	पानी देने की अवधि	सिंचाई का नं०	अनाज की पैदावार
१	प्रति सातवें दिन	१५	३२ सेर
२	प्रति १५ वें दिन	७	४० ,,
३	प्रति २८ वें दिन	४	५५ ,,
४	बिना सिचाई के	०	१३ ,,

कानपुर के प्रयोग क्षेत्र में भी गेहूँ की खेती पर सिचाई के बहुत से प्रयोग हुए। उन मे भी नहर के पानी की अपेक्षा कुओं का पानी अधिक लाभदायक साबित हुआ है। इसका कारण यह है

कि कुँए के पानी में पोटेशियम नाइट्रेट नाम का द्रव्य रहता है जो कि एक अच्छे खाद का काम करता है। कुँए का पानी जमीन में धीरे २ रंजता है। वह जमीन में रखे हुए कूड़े करकट को बाहर नहीं बहाता। इससे कुँए के पानी से ज्यादा पैदावार होना स्वाभाविक है। इसके विपरीत नहर का पानी वर्षा की झड़ी के समान एक दम बहता है और अपने साथ बहुत कुछ कूड़ा करकट और मिट्टी बहा लेजाता है। इससे पैदावार में कमी आजाती है। क्योंकि इससे कूड़ाकरकट के रूप मे बहुत सा खाद बह जाता है जो कि जमीन की उपजाऊ शक्ति का बढ़ाने वाला होता है।

गेहूँ की खेती में सिंचाई का काम करते समय यह बात न भूलनी चाहिये कि सिंचाई के पहले जमीन की जितनी अच्छी तैयारी की जायगी, जितनी अच्छी जुताई की जायगी और जमीन जितनी ज्यादा इस योग्य बना दी जायगी कि वह अपने में नमी रख सके, उतनी ही अधिक उसमें पैदावार होगी। अगर खेत सितम्बर मास तक बिना जुताई के छोड़ दिये गये या उनमें देर से जुताई की गई तो गेहूँ की पैदावार अच्छी न होगी। ई० सन १८८१ के कानपुर के प्रयोगों ने इस बात को पूर्ण रूपेण सिद्ध कर दिखाया है। उक्त साल में जमीन के दो टुकड़े प्रयोगों के लिये चुने गये। एक टुकड़े में जुलाई मास में जुताई की गई और दूसरे मे आधे सितम्बर मे। जमीन के इन दोनों टुकड़ो में गेहूँ की जैसी पैदावार हुई उसका फल नीचे दिया जाता है:—

जुताई	उपज
जुलाई में जोता हुआ टुकड़ा	८१५ सेर
सितम्बर मे जोता हुआ टुकड़ा	४९१ सेर

इस तालिका मे दिये हुए हिसाब मे मालूम होगा कि जिस ज़मीन में जल्दी जुताई की गई उसमे उस ज़मीन की अपेक्षा जिसमे देर मे जुताई की गई लगभग दूनी पैदावार हुई।

पंजाब के प्रयोग

सन १९०४, ०५ ई० मे पञ्जाब में भी गेहूँ की खेती पर सिचाई के कई प्रयोग हुए। कई कृषि क्षेत्रों पर नहर के पानी के प्रयोग किये गये। हर जगह दो खेत लिये गये। पहले खेत में नहर के पानी द्वारा सिचाई की गई और उस पर नहर के अधिकारियों की देख रेख रखी गई। दूसरे खेत में १० × ७० फुट की क्यारियाँ तैयार की गई और उसको एक किसान के सुपुर्द कर दिया गया। उन दोनो खेतो की ज़मीन समान गुणवाली थी और उनमे जुताई भी एक ही सरीखी की गई थी। इनमें केवल यही प्रयोग करना था कि ज्यादा सिचाई करने मे क्या असर होता है। नहर के अधिकारियो ने अपने खेत की ज़मीन की योग्य समय पर सिचाई की। इसका परिणाम यह हुआ कि पहले खेत मे अच्छी पैदावार हुई और दूसरे खेत मे उससे बहुत कम।

सन् १९०५-०६ ई० मे भी इस प्रकार के प्रयोग जारी रखे गये। उस वर्ष यह मालूम हुआ कि क्यारियां बना कर व जमीन के ढेलों को तोड़ कर सिंचाई करने से पानी की बचत होती है या नहीं। बिना ढेले की साफ व क्यारियोंवाली जमीन मे इस वर्ष सिंचाई के लिये जितने पानी की आवश्यकता हुई उस से दूने पानी की आवश्यकता ढेलों वाली व बिना क्यारियों वाली जमीन में हुई। सन १९०६-०७ ई० में भी इसी प्रकार के प्रयोग जारी रखे गये। इन प्रयोगो से मालूम हुआ कि किसान सिंचाई में बहुत ज्यादा पानी खर्च करते हैं। इससे बहुत सा जल निरर्थक बह जाता है। साथ ही वह खाद्य-द्रव्य को भी बहा ले जाता है।

इसी अवधि मे दूसरे खेतो मे गेहूं की सिंचाई के बारे में अन्य प्रयोग किये गये। यहाँ यह देखा गया कि नई आबाद की हुई जमीन को पुरानी जमीनों की अपेक्षा ज्यादा पानी की आवश्यकता होती है। पुरानी जमीनो मे केवल तीन बार सिंचाई करने मे गेहूँ को फसल तैयार हो जाती है और जब पांच या उससे अधिक बार सिंचाई की जाती है तो उससे उपज कम होती है। इसी प्रकार यहाँ यह भी देखा गया कि बहुत गहरी सिंचाई करने से कोई फायदा नहीं होता। सन १९०६-०७ ई० में और दूसरी सत्रह जगहों पर इसी प्रकार के प्रयोग शुरू किये गये पर बीच में जोर की बारिश व ओलों के गिर जाने से फसल खराब हो गई और इस प्रकार केवल ८ स्थानों को छोड कर बाक़ी के प्रयोग किसी काम मे न आ सके।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानों के प्रयोगों से मालूम हुआ है कि बार बार व गहरी सिंचाई करने से गेहूं की फ़सल को ज्यादा फायदा नहीं पहुँचता। इतना ही नहीं इससे उपज भी कम बैठती है। इसके साथ ही पानी व मेहनत अकारथ जाते हैं। बहुत ज्यादा पानी की सिंचाई करने से दूसरे खेतों को पानी नहीं मिल सकता और इस प्रकार पीयत्त के रकबे मे कमी आती है। इससे किसान व सरकार दोनों ही को नुकसान होता है। खास कर पञ्जाब में व युक्त प्रदेश मे ज्यादा सिंचाई के कारण गेहूं का दाना खराब हो जाता है। उसकी बनावट एक सी नहीं रहती। इसी प्रकार सारे खेत मे बराबर सिंचाई न करने से एक ही खेत के अनाज के दानों में फर्क पड़ जाता है।

गेहूँ का गेरुआ रोग

गेहूं की फ़सल को जितने रोग होते हैं उनमे गेरुआ सब से अधिक भयङ्कर और हानिकारक है। एक वैज्ञानिक ने अनुमान लगाया है कि इस फ़सल को जितना गेरुआ नुकसान पहुँचाता है, उतना अन्य सब रोग मिल कर भी नहीं पहुँचाते। यह बात केवल भारतवर्ष ही की नही है। अमेरिका के संयुक्त-प्रदेश, युरोप और आस्ट्रेलिया जैसे गेहूं पैदा करने वाले देशों मे भी गेरुए की समस्या भयङ्कर रूप से उपस्थित है।

इस रोग ने सारे संसार मे गेहूं की फ़सल को जितना नुकसान पहुँचाया है, वह चिन्तनीय है। सन् १९०१ को प्रुशिया की

सरकारी रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि उक्त साल में वहां इस रोग के कारण गेहूं की फ़सल मे ३५,९३,७३९ पौंड का नुकसान हुआ। १ पौंड लगभग १५) रुपये के बराबर होता है। इस हिसाब से जर्मनी के केवल एक प्रदेश मे एक वर्ष के अन्दर ५, ३९, ०६, ०७० का नुकसान हुआ। उक्त रिपोर्ट से यह भी मालूम होता है कि अगर गेहूं के साथ-साथ इस रोग से अन्य खाद्य पदार्थों की फ़सलों को जो नुकसान पहुँचा, वह भी इस मे मिला दिया जावे तो वह ३०, ९४, २२, २०५) का हो जाता है। प्रुशिया के एक अंक-शास्त्री का कथन है कि वहाँ एक तृतीयांश फ़सल इस रोग के कारण नष्ट हो जाती थी। आस्ट्रेलिया एक मशहूर गेहूँ पैदा करनेवाला देश है। वहाँ इस रोग के कारण प्रति वर्ष २००, ००, ०००) से लगा कर ४, ५०, ००,००० तक का नुकसान होता है। अमेरिका के संयुक्त-प्रदेश के कृषि-विभाग से मि० कार्लेटन लिखित 'Division of vegetable Physiology and Pathology' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, उसमे लिखा है कि अमेरिका मे सब रोगो से मिला कर भी खाद्य पदार्थ की फ़सल को उतनी हानि नही पहुँचती है जितनी अकेले गेरुआ रोग से पहुँचती है।

भारतवर्ष मे इस रोग के द्वारा भयकर विनाश होता है। गत वर्ष पूर्व हमारे इन्दौर राज्य के रामपुरा-भानपुरा जिलो मे इसने गेहूँ की फ़सल को बरबाद कर दिया, जिस से किसानो के घरों मे हाहाकार मच गया! उनके करे कराये परिश्रम पर पानी

फिर गया !! इस रोग से हिन्दुस्थान में कभी कभी एक वर्ष मे ही सात आठ करोड़ रुपयो का नुकसान हो जाता है।

यह बीमारी भारतवर्ष के लिये कोई नई नहीं है। पहले भी यह बीमारी ऐसे ही भयङ्कर रूप मे होती थी। ई० सन् १८३९ में मि० स्लीमन ने मध्य प्रदेश मे इस बीमारी से होनेवाले विनाश का उल्लेख करते हुए लिखा था—"मैंने नर्मदा की घाटी के आस पास की २०० वर्गमील जमीन में गेरुआ रोग के कारण गेहूँ की फसल की भयङ्कर बरबादी के दृश्य देखे। एक चतुर्थांश फसल नष्ट होगई।" यही महाशय आगे चल कर फिर लिखते हैं:— "गेरुए के कारण ई० सन १८३७ मे जितना बीज बोया गया, उतनी भी फसल नहीं हुई।

ई० सन १८८३ मे भारत सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। इसी साल उसको ओर मे मि० केरयूथर की लिखी हुई एक पुस्तिका प्रकाशित कीगई और उसका चारो ओर प्रचार किया गया। जुदे २ प्रदेशो से गेहूँ के गेरुए के नमूने मँगवाये गये और वे परीक्षा के लिये इङ्गलैण्ड की 'रायल एग्रीकलचरल सोसाइटी' (Royal Agricultural Society) के पास भेजे गये। उक्त जांच का परिणाम क्या निकला, यह अभी तक ज्ञात नहीं हुआ।

इसके बाद गेरुए रोग की परीक्षा का कार्य बार्कलिक नामक वैज्ञानिक ने अपने हाथ में लिया। आपने गेरुए रोग तथा अन्य फसल के रोगों पर एक ग्रन्थ लिखा, जो ई० १८९५ मे मि० वारन द्वारा प्रकाशित किया गया। आपने अन्य कई बातों के साथ साथ

यह भी प्रकट किया कि जनवरी, फरवरी और मार्च की हवा का इस रोग पर बहुत प्रभाव गिरता है।

ई० सन् १८९६ मे कनिङ्गहेम और प्रेन नामक सज्जनो ने भारत सरकार के संकेत से इस रोग के अनुसन्धान का कार्य्य अपने हाथ मे लिया। आपने भारतवर्ष के जुदे जुदे प्रदेशों में होने वाले गेरुए की बीमारियो को जांच की और उनके आपसी सम्बन्ध और विभेद पर प्रकाश डाला। इस अनुसन्धान मे यह मालूम हुआ कि गेहूँ मे लगने वाले गेरुए और घास पर लगने वाले गेरुए मे बहुत अन्तर है।

ई० सन् १८९७ मे महाशय प्रेन ने भारत सरकार के आदेशानुसार उन सब व्याख्यानों के सारांश को प्रकाशित किया, जो आस्ट्रेलिया मे ई० १८९० से लगा कर १८९७ तक गेहूँ के सम्बन्ध में होनेवाली पॉच कान्फ्रेंसो मे दिये गये थे। इन कान्फ्रेसो में संसार के बड़े बड़े कृषि-विद्या-विशारद और वनस्पति-शास्त्रज्ञ पधारे थे। इन लोगो ने निरन्तर पांच वर्षो तक गेरुए रोग पर बहुत विचार किया था।

आस्ट्रेलिया देश मे इस रोग के कारण इतनी जबर्दस्त हानियाँ हुई थीं कि वहाँ के किसानों की दशा अत्यन्त शोचनीय होगई। यही कारण था कि वहाँ की सरकार ने ई० सन १८९० में अपने यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय औपनिवेशिक कान्फ्रेस की योजना की थी। इसके बाद वहाँ पर इस विषय पर अनेकों कान्फ्रेंसें हुईं।

उक्त कान्फ्रेसो मे संसार के बड़े २ कृषि-विद्या-विशारदो ने इस

बात पर विचार किया कि गेहूँ की फसल को गेरुआ नामक प्लेग से किस प्रकार बचाया जाय। कई कृषि-विद्या-विशारदों ने इस विषय पर अपने मत प्रकट किये पर कोई रामबाण उपाय न दिखाई दिया। हां, इस बीमारी को रोकने के कुछ उपाय सोचे गये और उन्हे आस्ट्रेलिया देश मे सफलता भी मिली। ई० सन् १८९१ मे आस्ट्रेलिया के सिडनी नामक स्थान मे उक्त कान्फ्रेन्स का दूसरा अधिवेशन हुआ। उसमें फेरार नामक एक किसान ने कहा कि गेरुए से लड़ने का सबसे अच्छा और सरल उपाय यह है कि गेहूँ की कोई ऐसी जाति पैदा की जावे जिस पर गेरुए की बीमारी आक्रमण ही न कर सके। इसके अतिरिक्त गेहूँ की उस जाति मे आटा अधिक पैदा करने की शक्ति हो। फेरार ने इस दिशा मे अपने प्रयत्न शुरू किये। ई० सन् १८९९ मे वह न्यू साउथ वेल्स के कृषि-विभाग का मेम्बर होगया और उसी समय से वह आस्ट्रेलियन सरकार की सहायता से अन्वेषण करने लगा। उसके अन्वेषण का फल ई० सन् १८९८ के एग्रीकल्चरल ग्याभेट आफ न्यू साउथ वेल्स (Agricultural Gazette of New South wales) में छपा है।

हिन्दुस्थान में भी गेहूँ की ऐसी जाति पैदा होने लगी, जिन पर गेरुआ आक्रमण न कर सके। इस विषय पर सब से पहले महाशय प्रेन का ध्यान गया। आप लिखते हैं:—

'हिन्दुस्थान के गेहुँओं की कई जातियों में से कोई एसी जाति चुनी जावे जिस पर गेरुए का असर न हो या कम हो। यही एक

एसी पध्दति है जिससे गेरुए का मुक़ाबला करने की आशा की जा सकती है। यद्यपि यह बात सच है कि कोइ गेहूँ की जाति ऐसी नहीं है जो सोलहों आने इससे बची रहे, पर यह एक मानो हुई बात है कि कहीं २ किसी विशेष जमीन में कुछ ऐसी गेहूँ की जातियाँ पैदा होती हैं जो इस गेरुए रूपी भयङ्कर प्लेग से बची रहती हैं। इस प्रकार की विभिन्न जाति के गेहुँओं के पौधों का संयोग करवा कर कोई ऐसी वर्णसंकर नई जाति निकाली जाय, जिसमें यह खासियत हो कि उसमे गेरुआ न लगे और आटा भी उसमे अच्छा निकले।"

ई० सन १८९६ से १९०९ तक भारत सरकार ने आस्ट्रेलिया के किसान फेरार के द्वारा तैयार किये हुए तथा कई ऐसे गेहुँओ के नमूने मँगवाये जो उक्त देश मे गेरुए से रक्षित समझे जाते थे। ये गेहूँ कानपुर, नागपुर और पंजाब के कृषि-क्षेत्रों में बोये गये। अब इस प्रकार के गेहूँ पंजाब मे कहीं कहीं बोये जाते हैं, पर भारत वर्ष मे इन के आशाजनक अनुभव नहीं हुए। इनमे से ऐसी कोई भी जाति दिखाई न दी, जो गेरुए से पूरी तरह से बची रहे।

आस्ट्रेलिया में फेरार नामक किसान को इस सम्बन्ध मे जो सफलता प्राप्त हुई उस पर भारत सरकार का ध्यान आकर्षित हुआ और उसने ई० सन १९०० में उत्तर पश्चिम प्रान्त के कृषि विभाग के डायरेक्टर को इस विषय का अध्ययन करने के लिये आस्ट्रेलिया भेजा। दूसरे वर्ष इन्होंने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की। उन्होने इस बात की सिफारिश की कि किसी मध्यवर्ती कृषि-प्रयोग क्षेत्र

में गेहूँ की विभिन्न जातियों के संयोग के द्वारा कोई ऐसी जाति पैदा की जावे जो इस रोग से अपना बचाव कर सके। ई० १९०१ में कानपुर मे आस्ट्रेलिया के ढंग पर गेहूँ की ऐसी जाति पैदा करने के प्रयाग शुरू हुए, जाकि इस दुर्दमनीय रोग की शिकार न बन सके।

इस के कुछ ही समय बाद भारत सरकार ने एक बनस्पति विद्या-विशारद की नियुक्ति की, जो विभिन्न पोधों पर लगने वाली भयंकर बीमारियों का अध्ययन करे। ई० सन् १९०३ मे महाशय बटलर ने हिन्दुस्थान में होने वाले गेरुए रोग पर एक ग्रन्थ लिख कर प्रकाशित किया। ई० सन १९०६ मे इन्हीं महाशय बटर ने मि० हेमन की सहायता से गेरुए पर एक अन्य ग्रन्थ प्रकाशित किया। इसमे मि० मूरलेंड का एक नोट है, जिसमे उन्होंने विभिन्न प्रकार की वायु और गेरुए के सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है। उक्त सज्जनो ने इस सम्बन्ध पर जो नये अन्वेषण किये है उनकी विवेचना हम आगे चलकर करेंगे।

गेरुआ रोग की जातियाँ

महाशय बटलर और हेमन ने गेहूँ की फसल को होने वाले गरुआ रोग को तीन जातियों मे बांटा है।

(१) काला गेरुआ।

(२) पीला गेरुआ।

(३) नारंगिया गेरुआ।

इनमें से काला और पीला गेरुआ प्रायः सारे हिन्दुस्थान में देखा जाता है और नारंगिया गेरुआ खास कर बंगाल और संयुक्त प्रदेश मे देखा गया है।

काला गेरुआ गेहूँ के पौधे के डंठल पर जार से आक्रमण करता है। इससे डंठल पर काले दाग पड़ जाते है। पीला गेरुआ गेहूँ के पौधो के पत्तों पर भयंकरता से लगता है। इससे पत्तों पर पीले २ दाग और लकीरें पड़ जातीं हैं। नारंगिया गेरुआ केवल पत्तो पर ही लगता है। इससे पत्तो पर नारंगी के रंग के समान धब्बे व लकीरे दिखाई देतीं हैं। सारांश यह है कि जब गेहूँ के पत्तो व डंठलो पर काले, पीले और नारंगी के रंग के धब्बे या लकीरे दिखाई दे तो जानना चाहिये कि इसमे गेरुआ लग गया है।

गेरुए का प्रचार—गेरुए की बीमारी किस प्रकार फैलती है? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिस पर वैज्ञानिकों मे मत भेद है। कुछ लोगो का कथन है कि फसल के कट जाने पर भी गेरुए के जीवाणु शेष रह जाते हैं और अनुकूल परिस्थिति पाकर वे फिर ताकत पकड़ते हैं तथा दूसरे समय बोई जाने वाली गेहूँ की फसल पर आक्रमण करते हैं।

मि० मार्शल वार्ड अपने 'Annals of Botany' नामक ग्रन्थ मे लिखते हैं कि गेरुए के जीवाणु सूख जाने के बाद भी अनुकूल परिस्थिति पाकर अपनी गति-विधि प्रकट करने लगते हैं। एक दूसरे वैज्ञानिक मि० गिब्सन ने अपने निजी अनुभव से यह

प्रकट किया है कि गेरुए के जीवाणु ८४ दिन तक केवल जीवित ही नहीं रखे जा सकते हैं, वरन् उस समय तक उनको उत्पादन शक्ति भी कायम रहती है। मि० बर्कले का कथन है कि गेरुए के जीवाणु में दो माह से लगा कर ८ माह तक उत्पादन शक्ति बनी रहती है। पर अभी तक यह प्रश्न बाकी है कि क्या एक साल का गेरुआ दूसरे साल की फसल को नुकसान पहुँचा सकता है? विज्ञान की भावी अन्वेषणाएँ इस विषय पर प्रकाश डालेगी।

कुछ कृषि-विद्या विशारदों का यह मत है कि गेरुए के जीवाणु बहुत ही हलके और सूक्ष्म होते हैं। वे हवा के झोकों के साथ उड़ कर इधर-उधर फैल जाते हैं। मान लीजिये कि एक खेत मे गेरुआ लगा। वायु उस खेत के जीवाणुओं मे से बहुतों को उड़ा कर इधर उधर फैला देगी और इससे दूसरे खेतों में भी उसका असर पहुँचेगा। क्लेबान नामक एक जर्मन विद्वान ने लिखा है कि गेरुए के जीवाणु वायु के साथ उड़ कर बहुत दूर दूर चले जाते हैं और फसल पर अपना विनाशकारी और जहरीला असर डालते हैं।

कुछ कृषि-विद्या-विशारदों का मत है कि गरम हवा में गेहूँ पैदा करनेवाले खेतों के आस पास के पौधों पर ये जीवाणु परवरिश पाते हैं और जब गेहूँ की फसल लगती है तब ये उन पर आक्रमण कर देते है। पर इस सम्बन्ध मे भी अभी कोई निश्चित वैज्ञानिक मत प्रकट नहीं हुआ है।

महाशय एरिकसन का कथन है कि गेहूं के जिस खेत मे गेरुआ

लग जाता है उस खेत के बीज अगर दूसरे साल बोये जावें तो उन पर भी गेरुए का असर होता है। अति सूक्ष्म रूप में गेरुए के जीवाणु उन पर रहते हैं और अनुकूल समय पर शक्तिशाली होकर वे फसल को नुकसान पहुँचाते हैं। पर इस मत का समर्थन भी अभी तक वैज्ञानिक प्रयोगों में नहीं होसका है।

गेरुआ पर आबहवा का प्रभाव।

कृषि-विद्या-विशारदों ने इस विषय पर भी अन्वेषणाएँ की हैं कि जुदी २ आबहवा का गेरुआ पर क्या प्रभाव गिरता है। बहुत खोज पड़ताल के बाद वे इस नतीजे पर पहुँचे कि जनवरी और फरवरी में बहुत और निरन्तर वर्षा का होना, बरसाती हवा का चलना, वायु मंडल का बादलों से घिरा रहना इत्यादि बातें गेरुए के फलने फूलने में सहायक होती हैं। इस प्रकार के वायु-मण्डल में गेरुआ रोग बड़ी तेजी के साथ फैलता है। कुछ लोगों का यह भी मत है कि आवश्यकता से अधिक सिंचाई करने में भी यह रोग होता है।

गेरुए के रोकने के उपाय।

लम्बे अनुभव के बाद कृषि-विद्या-विशारदों ने यह मत स्थिर किया है कि गेरुए को रोकने का सब से अच्छा उपाय यह है कि गेहूँ की ऐसी जाति बोई जावे, जिस पर यह रोग असर न कर सके।

निरन्तर प्रयोग (Experiments) करने के बाद पूसा के कृषि-प्रयोग क्षेत्र में गेहूँ की एक ऐसी जाति उत्पन्न की गई है, जिस पर इस रोग का बिलकुल असर नहीं होता तथा जिसकी पैदायश अन्य गेहूँ की जातियों की अपेक्षा बहुत ही सरल ढंग से हो सकती है। इस जाति के गेहूँ का नाम पूसा नं० ४ है। इसके अतिरिक्त सूडिया, पिस्सी, बन्सी, नागपुर का बत्ती और बंगाल के माझी नामक गेहूँ की जातियों पर भी इसका कम असर होता है। मि० अल्बर्ट हावर्ड ने तो सब से अधिक जोर इसी बात पर दिया है कि गेरुए को रोकने के लिये इसी प्रकार की जाति बोना चाहिये, जिस पर यह रोग अपना असर ही न जमा सके।

अब हम यहाँ इस रोग से फसल को बचाने की कुछ तरकीबें लिखते हैं। ये तरकीबें भारत सरकार की तरफ से नियुक्त किये हुए कृषि-विद्या विशारद मि० प्रेन और मि० केनिङ्गहेम ने निकाली थीं।

(१) खेत जब सूखा हो, तब बीज बोने से बीमारी की रुकावट बहुत कुछ सम्भव है।

(२) गेहूँ के खेत में दूसरे प्रकार की जिन्से उलट-पलट कर बोते रहने से भी यह बीमारी नहीं होती।

(३) सब से बड़ी बात बीज का छाँट कर बोने की है। उस समय यह देख लेना चाहिये कि कोई बीज का दाना इस बीमारी से लगे हुए बीज का तो नहीं है।

(४) नये नये प्रकार के बीज बोते रहने से भी यह बीमारी दूर हो जाती है।

(५) एक छटाक तूतीया लेकर भली भांति कपड़े में छान लेना चाहिये और दो सेर पानी मिला कर दूध की भांति बिलो कर उसे पिचकारी द्वारा छिड़कना चाहिये।

(६) पौधों पर प्रातःकाल, जब कि ओस गिरी हो, कंडों की राख छांटना चाहिये।

कुंडवा (SMUT)

कुंडवा नामक रोग से भी गेहूँ की फसल को नुकसान पहुँचता है। इस रोग में गेहूँ की बालें ऊपर से तो अच्छी दीखती हैं, परन्तु उनके भीतर बीज की जगह काला चूरा भर जाता है। इस रोग का जिन २ बालों पर असर हुआ हो उन सबको जला देना चाहिये या अलग कर देना चाहिये, जिससे यह रोग बढ़ने न पावे। प्रायः देखा गया है कि कई किसान इन बालों को अपने गाय बैलों को खिला देते हैं, पर उनकी यह बड़ी भूल है। क्योंकि इस प्रकार कुंडवा लगे हुए बीज गोबर के साथ बाहर निकल आते हैं और उस गोबर को खाद के उपयोग में लाने पर सारे खेत में फैल जाते हैं। इस प्रकार जब दूसरी वक्त कोई फसल बोई गई, तो उसमें भी यह रोग फैल जाता है।

इस रोग के बचाव के लिये सबसे सरल तरकीब यह है कि बोने के पहिले बीज को नीला थूता के पानी में डुबो लिया जावे।

दीमक।

दीमक गेहूँ के अँकुर निकलने के समय फसल को लग जाता है। इससे पौधे की बाढ़ मारी जाती है। इस कीडे के लग जाने का प्रमुख कारण पानी की कमी है। जब पौधे के अँकुर निकलने लगते हैं, तब इन कीड़ो का आक्रमण होता है। पर यदि पौधे काफी बड़े हो गये हों तो इन से कोई नुकसान नहीं होता। इन कीड़ों से पौधों की जड़ों को उतना नुकसान नहीं होता, जितना कि बीज व पौधे के अँकुर के बीच के भाग को होता है। इस रोग से फसल को बचाने के लिये बीज बोते समय खेत में काफी ओल होना चाहिये। प्रायः यह रोग पानी की कमी के कारण होता है। इसलिये इस रोग के होते ही अच्छी सिंचाई कर देना चाहिये। यदि इस समय माहुटे का पानी गिर गया तो पौधे की बड़ी जल्दी वृद्धि होगी। जहाँ सिंचाई की व्यवस्था न हो तथा माहुटे के पानी की भी सम्भावना न हो, वहाँ निम्नलिखित उपाय काम में लाना चाहिये।

(१) यदि बन सके तो दीमक का छत्ता ढूंढना चाहिये, और उसमे से नर मादी अलग निकाल देना चाहिये। ये नर मादी सब दीमकों से बड़े होते हैं। यदि ये छत्ते से अलग कर लिये गये तो सब दीमक खत्म हो जाते हैं।

(२) गरम पानी से भी इनका निवारण होता है।

(३) बार बार सिंचाई करना चाहिये जिससे दीमक मिट जावें।

गेहूं इकट्ठा करने के लिये सूचनाएँ ।

अकसर देखा जाता है कि किसान घुन या खपरिया लगन के डर से अपना माल बहुत ही जल्दी सस्ते से सस्ते भाव में बेच देते हैं। उन्हें यह डर रहता है कि यदि अधिक दिनो तक माल रखा रहा तो उसकी कीमत और भी उतर जायगी। इस डर के मारे वे प्रतिवर्ष बहुत सा नुक़सान उठाते हैं। वास्तव मे उनका डर ठीक भी है। पर यदि वे गेहूँ को इकट्ठा करने की तरकीबों पर अमल करने लग जावे तो सम्भव है कि उनका भय रफा होजायगा। प्रायः देखा गया है कि फसल पूरी तौर से पकने के पहले ही काट लीजाती है, जिससे गेहूँ अधिक दिनो तक अच्छी हालत मे नहीं रह सकते। अतएव गेहूँ की फसल को पूरी तरह पक जाने पर काटना चाहिये। इसके बाद अनाज का कोठों, बोरियों या बखारियों मे भरते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि उनमें ओल अथवा सडन तो नहीं है। इसके अतिरिक्त जब गेहूँ भरे जावे, तो मकान अथवा बरतन साफ कर लेना चाहिये और जो कुछ कूडा करकट निकले उसे दूर फिंकवा देना चाहिये। कूडा करकट साफ न करने के कारण गेहूँ मे "घुन" लग जाता है और बहुत से दानों मे वह छेद कर देता है। खास कर जिन कोठों मे हर साल अनाज भरा जाता है, उनमे तो घुन अवश्य ही अपना घर बना लेता है। अतएव अनाज भरने के पहले खाली कोठा या बखारी में कुछ छिछले बरतनों मे थोडा २ कारबन बाय सलफाइड

(Carbon by Sulphide) रख देना चाहिये और बाद में उसे चारों ओर से अच्छी तरह २४ घंटे तक बन्द रखना चाहिये। उसके बाद फिर ३, ४ घंटे तक उसे खुला रखना चाहिये, जिससे पहले के सब "घुन" नष्ट होजावे। कोठे को खोलते समय यह ध्यान में रखना चाहिये कि कोठे की विषैली हवा खोलने वाले के नाक में प्रवेश न कर जाय। यदि अनाज भरने के बाद यह मालूम हो कि गेहूँ में घुन लग गई है तो अनाज के ऊपर छिछले (कम गहरा) बरतनों में प्रति टन पीछे आधा सेर कारबन बाय सल-फाइड भर कर रख देना चाहिये। इसके बाद उस कोठे को चारों ओर से दो रोज तक इस प्रकार बन्द रखना चाहिये कि उसकी हवा बाहर न निकलने पावे। ऐसा करने से उस कोठे के सब कीड़े मरजावेंगे और अनाज को किसी प्रकार की हानि न पहुँचेगी।



कपास की खेती

कपास हिन्दुस्थान की सब से महत्व-पूर्ण फ़सल है। अफ़ीम की खेती बन्द होने के बाद अगर कोई ऐसी फ़सल है, जिस से किसानों को सब से ज्यादा पैसा मिलता है तो वह कपास ही है। इस वक़ हिन्दुस्थान में दो करोड़ एकड़ भूमि में कपास बोया जाता है। अलग-अलग प्रान्तों के कपास की खेती का ब्योरा इस तरह है।

बम्बई प्रान्त	६०००,०००	एकड़
मध्य प्रान्त	१२००,०००	,,
बरार	३०००,०००	,,
मद्रास-प्रान्त	१५००,०००	,,
पंजाब	१०००,०००	,,
युक्त-प्रान्त	१२५०,०००	,,
बर्मा	२००,०००	,,
हैदराबाद (दक्षिण	३४००,०००	
अजमेर मेरवाड़ा)	४०,०००	
मध्य-भारत	१०००,०००	
राजपुताना	४५० ०००	

यह तो वर्तमान समय की खेती के अङ्क हैं। पर कपास की खेती की उन्नति का अब भी यहां सुविशाल क्षेत्र पड़ा हुआ है। कपास की खेती से सम्बन्ध रखनेवाली विभिन्न दिशाओं में बहुत कुछ काम करने की जरूरत है। यह एक ऐसी फसल है कि अगर इसकी सर्वाङ्गमुखी उन्नति की जाय तो भारत की आर्थिक स्थिति पर बड़ा ही अच्छा प्रभाव पड़ सकता है। गरीब किसान हरे भरे हो सकते हैं। कृषि और औद्योगिक संसार में नई चमक-दमक आ सकती है। भारत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का नया अध्याय शुरू हो सकता है।

हिन्दुस्थान के किसान अपढ़ हैं। वे पुराने तरीक़ों से खेती करते हैं। विज्ञान की रोशनी उन तक नहीं पहुँच पाई है। उनका दृष्टि-कोण बहुत सकीर्ण है। वे नहीं जानते कि आधुनिक विज्ञान खेती में कितने विस्मयकारक परिवर्तन कर रहा है। इससे वे अपनी उपज को नहीं बढ़ा पाये हैं। युरोप और अमेरिका के किसानों ने बड़ी तरक्क़ी की है। यहां के किसान एक एकड़ में जितनी फसल पैदा करते हैं, उससे वे तीगुनी चौगुनी करते हैं। कभी-कभी इससे भी ज्यादा। आप कपास ही की फसल को ले लीजिये। दूसरे देशों की तुलना में यहां बहुत कम रुई पैदा होती है। यदि हिसाब लगा कर देखा जाय तो यहां रुई की औसत प्रति एकड ८२ पौंड (लगभग १ मन) पड़ती है। यह अमेरिका की एक तिहाई है। दूसरे शब्दों में यों कह लीजिये कि अमेरिका इससे तीगुनी रुई पैदा करता है।

यह तो हुई पैदावार की बात। इसके अलावा अमेरिका, मिश्र आदि देशों में जितनी बढ़िया रुई होती है, उसके मुकाबले में हिन्दुस्थान की रुई बहुत ही घटिया है। हिन्दुस्थान मे अगर रुई की खेती की तरक्की करना है तो केवल उसकी उपज बढ़ाने से काम नहीं चलेगा। पर उसके दूसरे गुणो को भी बढ़ाना होगा। रेशे (yınt) की लम्बाई, मजबूती तथा उसका एकसा बारीक व अच्छे रंग का होना आदि गुण रुई मे प्रधान रूप से देखे जाते हैं

इसके सिवाय और भी बाते है जिनकी ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। आप मालवा को ले लीजिये। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह प्रान्त रुई प्रधान है। यहां के कपास की खेती मे कई प्रकार के सुधारों की जरूरत है। वैज्ञानिक खोज द्वारा ऐसे तरीके निकाले जाने चाहिये, जिस से प्रति एकड रुई की पैदावार भी बढ़े और साथ ही मे वह ऊँचे दर्जे की भी हो। उसमे वे सब गुण हों, जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। इसके सिवा मि० हॉवर्ड के शब्दो मे मालवा मे सब से बड़ी आवश्यकता इस प्रकार के कपास की है जो जल्दी तैयार हो जावे और जाड़ा शुरू होने के पहले जिसकी चुनाई शुरू हो जाय। इस प्रकार का कपास न होने से किसानो को बहुत नुकसान उठाना पड़ता है। दुर्भाग्यवश अगर माहूटे का पानी गिर गया तो उनकी खेती चौपट हो जाती है।

इसके अतिरिक्त विविध बीमारियों से भी कपास की फ़सल

को कई वक्त भारी नुकसान पहुँचता है। अतएव हमें कपास की खेती के सुधार का विचार करते समय निम्नलिखित बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

(१) इस प्रकार के कपास की जाति ढूँढ़ निकालना या पैदा करना चाहिये, जो अधिक से अधिक तादाद में पैदा हो और जो गुण में भी सब से बढ़िया हो।

(२) ऐसा कपास होना चाहिये जिस में अधिक से अधिक रुई निकले और जिस के रेशे की लम्बाई मजबूती और मुलायमपन अधिक हो।

(३) जिस में विविध प्रकार की बीमारियों का मुकाबला करने की ताकत हो।

(४) जो जल्दी पकनेवाली हो।

(५) इसके लिये ऐसी बातें ढूढ निकाली जावें, जिनके द्वारा फसल के जल्दी तैयार होने में सहायता मिले।

फ़सल का सुधार।

युरोप और अमेरिका के बड़े बड़े विज्ञानविदों के दिमाग़ अपने अपने देशों की फसलों को सुधारने की ओर लग रहे हैं। महायुद्ध के बाद तो पाश्चात्य देश खेती की तरक्क़ी में बहुत ज्यादा दिलचस्पी लेने लगे हैं। वहाँ के बड़े बड़े मुत्सद्दियों का

यह खयाल है कि भविष्य के अन्तर्राष्ट्रीय कलह में वही राष्ट्र अधिक दिन तक टिक सकेगा जो अपने भोजन की सामग्री को इतनी तादाद में पैदा कर सकेगा कि इसके लिये उसे दूसरे राष्ट्रों का मुँह न देखना पड़े। यही कारण है कि इस वक्त खेती को तरक्की मे भी युरोप की राजनीति ने विज्ञान का बड़ा साथ दिया है। अमेरिका के येल विश्व-विद्यालय के प्रो० जि० बर्ट महोदय का कथन है कि "विज्ञान के संयोग से कृषि उन्नति के इतिहास मे एक नये युग का आरम्भ हो रहा है।" कहने का मतलब यह है कि भारतवर्ष को भी उन्नति की इस घुड़दौड़ मे आगे बढ़ने की कोशिस करना चाहिये। उसे संसार से नये से नया प्रकाश ग्रहण करने मे उत्सुक रहना चाहिये। भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है। उसकी आर्थिक उन्नति का दारोमदार कृषि पर है। अब पुराने गयेगुजरे तरीकों से काम नहीं चल सकता। हम बीसवीं सदी मे रह रहे हैं। हमें अपनी खेती की उन्नति मे नवीन से नवीन वैज्ञानिक पद्धतियो से लाभ उठाना चाहिये। हमे यहाँ रुई की खेती के सुधार से खास मतलब है। हम पहले कह चुके हैं कि अमेरिका, मिश्र आदि देशों की रुई भारतवर्ष से बहुत ज्यादा बढिया होती है। हमे यह देखना चाहिये कि उन देशो ने रुई की फसल के सुधार के लिये किन पद्धतिया से काम लिया। पाश्चात्य देशो की रूई का इतिहास पढ़ने से मालूम होता है कि उन देशो ने फसल की जाति को सुधारने के लिये खास तौर से निम्न लिखित दो पद्धतियो पर ज्यादा जोर दिया।

(१) 'चुनाव पद्धति' (Mass Selection)

वर्ण 'शङ्कर पद्धति' (Hybridization)

अब हम इन दोनों पद्धतियों पर कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं।

(१) वाशिंगटन विश्वविद्यालय के कृषिशास्त्र के आचार्य्य प्रो० वेबर महोदय लिखते हैं "मनुष्यों की तरह पौधों में भी अपनी अपनी खासियत होती है। उनमें भी व्यक्तित्व है। यह खासियत उनकी सन्तान-पौधों (Progeny) पर भी उतर आती है। दूसरे शब्दों में यों कह लीजिये कि अगर किसी खास पौधे में कोई खास विशेषता है तो वह विशेषता थोड़े बहुत अंशों में उस पौधे के बीजों से उत्पन्न होने वाली फसल में भी आयगी। कृषि-विद्या विशारदों ने देखा है कि एक ही खेत में कुछ पौधे ऐसे होते हैं जो अधिक हृष्ट पुष्ट, निरोग होने के सिवाय जिनमें बीमारियों से मुक़ाबला करने की भी अधिक शक्ति होती है। इनमें और भी कई विशेषताएँ देखी जाती है। कुशल कृषिशास्त्री खेतों में जाते हैं और वे उसमें सबसे अच्छे पौधों को चुनते हैं। एक एकड़ जमीन में सबसे अच्छे कोई ५० रुई के पौधों को चुन लेते हैं और उन पर नम्बर लगा देते हैं। फिर दुबारा उन पचास पौधों में से भी ज्यादा अच्छे देखकर २५ पौधे चुन लिये जाते हैं। फिर वे इन्हें तोड़कर ले आते हैं और उनमें से कपास निकाल लेते हैं। अलग अलग पौधों की रुई अलग अलग रखी जाती है। मौसम के अन्त में उस रुई की परीक्षा की जाती है और वह

तोली जाती है। जिन पौधों की रुई सब बातो मे सबसे अच्छी निकलती है, उसी के बीज दुबारा फसल मे बोये जाते हैं। इन बीजों को फसल मे फिर ऊपर की पद्धति के मुताबिक सबसे अच्छे पौधे चुनेजाते हैं और फिर उसी तरह अच्छे मे अच्छे चुने हुए पौधों के बीज दूसरी फसल मे बोये जाते हैं। फिर भी यही क्रिया की जाती है। इस तरह कपास की एक श्रेष्ट जाति पैदा की जाती है।"

"इसके अतिरिक्त कपास की जाति भी ऐसी चुनना चाहिये जिसमे अधिक से अधिक उत्पादक शक्ति हो जिसमे रुई का हिस्सा अधिक से अधिक हो, जिसके रेशे मे मुलायमपन और लंबाई अधिक पाई जावे, जिसमे रोगो का सामना करने की कॉफी ताकत हो। पर इस जाति के पौधो मे भी चुनाव की पद्धति द्वारा और भी श्रेष्ठता लाने का यत्न करना चाहिये।

बस पौधों के चुनाव की उपरोक्त क्रिया को चुनाव पद्धति (Selection) कहते हैं।

वर्णसंकर पद्धति।

अर्थात

दोगली जाति पैदा करने की रीति।

फसल के सुधार के लिये-उसे उन्नत करने के लिये-जिन दो पद्धतियो की आवश्यकता है—उसमें से एक के विषय में ऊपर

लिखा जा चुका है। अब वर्णसङ्कर पद्धति पर कुछ पंक्तियां लिखना आवश्यक है। पाठक जानते हैं कि मानवी संसार की बहुत सी क्रियाएँ वानस्पतिक संसार में भी होती हैं। संसार प्रसिद्ध विज्ञानाचार्य डॉक्टर जगदीशचन्द्र बोस ने तो इस पर बड़ा ही अच्छा प्रकाश डाला है। मानवी तथा पशु संसार की तरह वनस्पति संसार में भी संयोग क्रिया होती है। माता पिता के खून का—उनके अच्छे बुरे गुणों का—जिस प्रकार उनकी सन्तानों पर असर होता है ठीक वही बात पौधों में भी होती है।

मि० हॉवर्ड के मतानुसार चुनाव पद्धति से जब अन्तिम सीमा की उन्नति होजाती है अर्थात जब उस पद्धति से फसलों की उन्नति उस सीमा तक आकर पहुँच जाती है कि जिसके आगे बढ़ना सम्भव नहीं होता तब उन्नत की हुई दो जातियों के पौधों के संयोग से नई प्रकार की फसल पैदा करने के प्रयोग काम में लाये जाते हैं। इससे दोनों जातियों के पौधों की खासियत या विशेषताएँ उस नई उत्पन्न होने वाली फसल में आजाती है। पर अभी यह विज्ञान बाल्यावस्था में है। हर आदमी इस काम को नहीं कर सकता। इस लिये भारत सरकार द्वारा नियुक्त कृषि कमिशन ने भी इस विषय पर लिखा है —

"दो नसलों जाति तैयार करने की रीति चुनाव की रीति से बहुत धीमी है। उसमें वैज्ञानिक अनुभव और लगन की विशेष आवश्यकता है। हमारा खयाल है कि पौधों की उन्नति करने वाले कार्य्यकर्त्ता जब तक मुमकिन हो, तब तक चुनाव की प्रथा ही को

काम मे लाते रहेंगे तो अच्छा होगा। दो नसलो जाति पैदा कर कृषि की उन्नति करने का कार्य केवल उन्हीं अधिकारियो को हाथ में लेना चाहिए जिन्होंने इस विषय की पूरी तालीम ली हो और जिन्हे हिन्दुस्थान की फसलो का अच्छा तजुर्बा हो

कपास के लिये भूमि।

कृषि-विद्या-विशारदो का कथन है कि कपास की खेती के लिये पोली और ऐसी जमीन की जरूरत है, जिस में हवा का प्रवेश बराबर होता रहे। पूसा मे यन्त्रो द्वारा परीक्षा करने से यह ज्ञात हुआ कि कपास की जडो मे हवा की कमी होने से उसकी बाढ़ रुक जाती है, पर भूमि को पोली कर देने से उसकी अधिक बाढ होने लगती है। यह बात वैज्ञानिकों ने अपने लम्बे अनुभव के बाद निश्चित कर ली है कि भूमि मे यथोचित वायु-प्रवेश के होने से कपास की पैदावार पर बहुत ही अच्छा असर गिरता है। इसके प्रत्यक्ष अनुभव हुए हैं। मध्य-प्रान्त के कृषि विभाग के पूर्व डायरेक्टर क्लाऊस्टन महाशय ने उक्त प्रान्त के छत्तीसगढ़ जिले के चन्दखुरी स्थान मे इस सम्बन्ध मे जो जांचें की हैं वे बड़े महत्व की हैं। इस जिले मे वर्षा बहुत होती है और सिंचाई का प्रबन्ध भी अच्छा है। पर यहाँ उक्त दोनो जमीनो मे पानी के शोषण की शक्ति अलग-अलग है। भट्ट जमीन कंकरीली (लैटेराइटिक) तथा अधिक पोली होती है। इसलिये इसमे पानी शीघ्र समा जाता है और बचा हुआ पानी बह कर निकल जाता है। इसके विपरीत

काली भूमि ठोस होती है। वह पानी के निकास को रोकती है। चन्दखुरी में जब इन दोनो प्रकार की जमीनो मे गोजियम नामक कपास बोया गया, तब यह देखा गया कि भट्ट जमीन मे पैदा होने वाला कपास रेशे की लम्बाई और अन्य गुणो की दृष्टि से ज्यादा अच्छा रहा। वहां के व्यापारियो ने इसे ऊंचे दर्जे का बतलाया। इसका कारण यह है कि भट्ट जमीन में जहां वायु प्रवेश की अधिक गुंजाईश है, वहाँ उसमें पानी का निकास भी अच्छा होता है। इससे कपास की जडो को तरक्की करने का अच्छा मौका मिलता है। यद्यपि यह बात सच है कि रासायनिक दृष्टि से काली जमीन में कपास के लिये अधिक भोजन सामग्री रही हुई है, पर उसमे वायु प्रवेश की ठीक गुंजाइश न होने से पौधो की जीवनी शक्ति को उतना अधिक बल नही मिलता। बम्बई के कृषि विभाग के भूतपूर्व डायरेक्टर डॉक्टर मेन और उनके अधीनस्थ कर्मचारियो ने सूरत की प्रयोग-शाला मे जाँचकर यह मालूम किया कि कम हवादार जमीन मे कपास की पैदायश कम होती है। मतलब यह है कि अभी तक की वैज्ञानिक खोजो से यह बात अच्छी तरह मालूम हुई है कि भूमि मे वायु का अधिक प्रवेश होने से जहाँ कपास की पैदायश में बढ़ती होती है वहाँ उसका रेशा भी अच्छा होता है।

मालवा में अक्सर काली भूमि में कपास बोया जाता है। रासायनिक दृष्टि से काली भूमि कपास की पैदायश के लिये बहुत अच्छी होती है। पर उसमें एक कसर यह है कि उसमे वायु-प्रवेश

ठीक नहीं होता। इसलिये कपास की खेती को अधिक सफल करने के लिये यह आवश्यक है कि उसमे गहरी जुताई कर मिट्टी को खूब मुलायम कर दी जाय और खेत को हलकासा ढाल देकर पानी के निकास का ठीक प्रबन्ध कर दिया जाय। इससे भूमि में वायु-प्रवेश होने लगेगा और कपास की जड़ों को उन्नति करने का अच्छा मौका मिलेगा। इतना होने पर काली भूमि में कपास की जितनी बढ़िया पैदावार होगी, उतनी अन्य भूमि में नहीं हो सकती।

नागपुर कॉलेज के प्रिन्सिपाल मि० जे० ए० एलन महाशय लिखते हैं—जिन खेतों में कपास अच्छा दीखता है, उनके पृष्ठ भाग के नीचे की मिट्टी की परीक्षा करने से मालूम होगा कि उनमे पानी के निकास की स्वाभाविक शक्ति रहती है। अच्छी निकास वाली जमीन मे से फ़िजूल पानी निकल जाता है और फ़सल जल्दी तैयार हो जाती है।"

मालवा की काली भूमि

मि० हॉवर्ड का कथन है कि मालवा की गहरी काली भूमि में कपास की उन्नति का सारा दारोमदार समय की अवधि पर है। यदि शुरू में कपास का पौधा अच्छी तरह बढ़ता गया और उसके फूल जल्दी निकल आये तो फ़सल बहुत अच्छी होगी, उम्दा जाति का कपास तैयार होगा और भारी बरसात से कपास के पौधे को नुकसान न होगा। यदि बीज के लिये ऐसी जाति चुन ली गई जो देर से पकने वाली हो तथा बीज बोने के बाद

कोई ऐसी रुकावटे पेश हो गईं जिन से पौधे के बढ़ने में देरी लगे, तो उस हालत मे फसल खराब होजाती है, कम आती है और पाले तथा ठंड से उसे बहुत सा नुकसान पहुँचता है। अतएव अच्छा बीज बोने के बाद नीचे लिखी हुई दो बातों पर ध्यान देना चाहिये।

(१) जुलाई व अगस्त मास में नालियों के द्वारा फालतू पानी निकालने की व्यवस्था करना।

(२) फसल को शुरू मे काफी मात्रा मे नाईट्रोजन देने का प्रबन्ध करना जिससे पौधो की बाढ़ जल्दी हो।

पहली व्यवस्था के लिये नालियो द्वारा फालतू पानी निकाल देना चाहिये। इसके लिये जमीन मे हलका सा ढाल दे देना चाहिये, जिस से अनेकों नालियों द्वारा खेत को कई भागों में विभाजित न करने पड़े। रही फसल को नाइट्रोजन देने की बात सो उसके सम्बन्ध मे हम "खाद" के अध्याय में चर्चा करेंगे।

खाद

हम पहले कह चुके हैं कि कपास की फसल को सब से अधिक आवश्यकता नाईट्रोजन की है। यह इसका मुख्य खाद्य पदार्थ हैं। इसकी पूर्ति कम्पोस्ट खाद के डालने से हो सकती है। इन्दौर के प्लेन्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट मे कपास की फसल को यही खाद दिया जाता है और उसमें बड़ी अच्छी सफलता हुई है। खाद निम्न लिखित विधि से बना लेना चाहिये।

पौधों के डंठल, हरा खाद, घासपात, कपास के डंठल, कूड़ा कचरा सांठे के पत्ते व छिलके आदि चीजों को इकट्ठी कर 'चाईनीज कम्पोस्ट' खाद तैयार किया जावे। यह खाद तैयार करने की यह तरकीब है कि पहले इन सब चीजों को सुखा लेना चाहिये। बाद मे उनके बारीक २ टुकड़े कर लेना चाहिये। इसके बाद उनको ढोरों के नीचे बिछौने के तौर पर बिछा देना चाहिये। जब ढोरों के मूत्र व गोबर से ये सब चीजें गीली हो जावे तो उन्हें निकाल कर खाद के गड्ढों मे भर देना चाहिये। इन चीजों मे जब ढोरों का मूत्र व गोबर पड़ता है तब उनमें नाइट्रोजन तैयार होता है। इस खाद मे थोड़ी सी राख भी मिला देना चाहिये, जिस से इस मे जो एक प्रकार का तीक्ष्णपन पैदा होता है, वह नष्ट हो जाय। इस प्रकार का खाद 'नैत्रजन' की समस्या को हल कर देता है। इसके अलावा सन का खाद व 'करंज' का खाद भी देना चाहिये, जिससे जमीन के चिकने ढेले नरम हो जावे।

कपास की फ़सल के लिये अरण्डी की खली का उपयोग

जलगाँव कृषि-क्षेत्र के प्रयोग

कपास खेती पर जलगांव प्रयोग क्षेत्र पर अरण्डी की खली के प्रयोग शुरू किये गये। अरण्डी के बीजों में से तेल निकालने

के बाद जो भूसा बच जाता है, उसे खली कहते हैं। इसको नीचे बतलाये हुए तीन कारणों से कपास की फसल के लिये उपयोगी समझा गया—

१. यह थोड़ी वर्षा में भी सहज ही घुल जाती है और कपास के पौधे को जल्दी ही खाद्य सामग्री देती है।

२. इसको देने की तरकीब बड़ी सरल है।

३ यह सहज ही मिल सकती है।

ई० स० १९१८—१९ व १९१९—२० में इसका जलगाव के कृषि क्षेत्र पर प्रयोग किया गया। इस प्रयोग में फी एकड़ ४०० पौंड खली का खाद दिया गया। इससे नीचे लिखे हुए आश्चर्य जनक नतीजे निकले।

ऋतु व वर्षा का परिमाण	खाद के प्रयोग	कपास की पैदावार फी एकड़ पौंडों में	खाद का मूल्य	फी एकड़ पैदावार का मूल्य	खती व खाद की क़ीमत मुजरा देकर बचा हुआ फ़ायदा
ई० स० १९-१८-१९	बिना खाद के	२४१		७३-१३-०	१८-१-०
वर्षा का प्रमाण	१५ गाड़ी गोबर का खाद*	६५९	३७-८-०	१९६-१-०	१०१-९-०
(इचों मे) १५-१४	४००पौंड अरंडी को खली	७६३	१२-८-०	२२७-५-०	१२६-१३-०
ई० स० १९-१९ २०	बिना खाद के	०	०	०	०
वर्षा का परिमाण	१५ गाड़ी गोबर का खाद	५७८	५२-८-०	१३२१५०	३३-३-०
	४००पौंड अरंडो को खली	५१७	१५-०-०	११८१४०	५६-६-

ऊपर बतलायें हुए दोनो नतीजे ऐसे वर्षों के हैं जिनमें वर्षा का प्रमाण बहुत कम या बहुत अधिक था। अतएव इनसे पता लग सकता है कि कम व अधिक बरसात के समय भी इस खाद का देना उपयोगी होता है। इस वर्षा के पश्चात् भी जजगांव में

अरण्डी की खली दिये जाने वाले खेतों के कपास की पैदावार के चार वर्षों की औसत ५२२ पौंड रही। जिन खेतों को गोबर का खाद दिया गया था, उनकी चार वर्षों की पैदावार की औसत ३८६ पौंड रही थी। इन प्रयोगो के अतिरिक्त कई दूसरे स्थानों पर इस खली की उपयोगिता के बारे मे बहुत प्रयोग किये गये, जिन से किसानों को विश्वास हो गया कि वास्तव में यह बहुत उपयोगी खाद है। पिछले तीन वर्षो मे जो पैदावार हुई है, उससे भी साफ तौर पर प्रगट होता है कि खली का खाद देने से पैदावार मे फी एकड़ २७० पौंड बढ़ती हुई।

खाद देने का तरीका

इसको देने का सब से सीधा और कम खर्च का तरीका यह है कि पहले इसकी बुकनी बना ली जावे और बाद मे कपास के बीज बोने के समय फली के जरीये डाल दिया जावे। खानदेश में कपास का बीज फली के पीछे दो नलियां लगा कर बोया जाता है। इसके लिये दो औरतो की आवश्यकता रहती है। यदि इस समय खली भी डालना हो तो दो औरतों की और आवश्यकता होगी। फली के जरिये खली डालने से एक फायदा यह होता है कि जिस लकीर मे बीज पडता है उसी मे खली भी गिरती है। इस प्रकार पहली बरसात ही मे वह घुल कर पौधे के खाद्य के लिये तैयार हो जाती है। तजुर्बों से यह पता लगा है कि इस को खेत में बिछाने अथवा बुरकने की बनिस्बत ऊपर बतलाई

हुई तरकीब को काम में लाना अधिक गुणकारी व फायदेमन्द है। इस रीति से खली डालने मे फी एकड़ लगभग १—१२–० खर्च लगता है।

खली की मात्रा

फी एकड़ कितनी खली डालना चाहिये इसकी जांच करने के लिये जलगांव फार्म पर दो वर्षों तक प्रयोग किये गये। उन प्रयोगों से यह पता लगा कि खली की मात्रा फी एकड़ ४०० पौंड से अधिक कर देने पर उस मान से फ़सल की पैदावार में बढ़ती नहीं होती। इन्ही प्रयोगों के आधार पर कृषि विभाग की ओर से इस खाद की मात्रा के विषय में नीचे बतलाई हुई सिफारिशे की गई हैं—

१. जिन स्थानो मे २० इञ्च से अधिक बरसात होती हो वहां फी एकड़ ३०० पौंड खली से अधिक नहीं डालना चाहिये।

२. जहां वर्षा २० इञ्च से कम होती हो, वहां २०० पौंड खली डालना चाहिये।

अन्य खादों के प्रयोग

नागपुर कृषि-क्षेत्र की रिपोर्ट से मालूम होता है कि सड़ाये हुए गोबर और पेशाब के खाद से कपास की फ़सल को अच्छा फ़ायदा हुआ। क़रीब १० साल के प्रयोगो का फल नीचे दिया जाता है, उस से पाठकों को गोबर और मूत्र के खाद की उपयोगिता मालूम होगी।

	पैदावार सेर में
(१) बिना खाद के खेत मे	२००
(२) गोबर के खाद दिये हुए खेत मे	३३५
(३) ढोरों के पेशाब के खाद दिये हुए खेत मे	३६०
(४) पेशाब और गोबर मिले हुए खाद से	४७०

उपरोक्त रिपोर्ट से यह स्पष्ट होता है कि गोबर और पेशाब के मिले हुए खाद के देने से कपास की सबसे अधिक पैदायश हुई।

अकोला फार्म के प्रयोग

दस साल के प्रयोगों की औसत पैदावार

१ बिना खाद	१६० सेर
२ गोबर का खाद	१६२ ,,
३ पेशाब का खाद	२७०
४ गोबर और पेशाब का मिश्रण	३५४

कहने की आवश्यकता नहीं कि अकोला फार्म पर भी गोबर और पेशाब के मिश्रण से अधिक अच्छे नतीजे निकले।

नागपुर के अन्य प्रयोग

नागपुर मे कपास की खेती पर ढोरों के मल-मूत्र के खाद के और भी प्रयोग हुए। ९-१० मास तक इकट्ठा किया हुआ एक बैल जोड़ी का गोबर और पेशाब कपास के एक एकड़ खेत में दिया गया, जिसके नीचे लिखे हुए नतीजे निकले।

	कपास पौन्ड में
सिर्फ गोबर	४५८
ढोरों का पेशाब	४६४
गोबर और पेशाब	६२२
बिना खाद	२७९

उक्त तजुर्बे से भी मालूम होता है कि गोबर और पेशाब को मिला कर देने से फसल की पैदायश मे लगभग ड्योढ़ा फर्क़ हो जाता है।

खेती करने वाले अनुभवी पाठक जानते हैं कि कपास को नाईट्रेट ऑफ सोडे का कृत्रिम खाद दिया जाता है, पर नागपुर के प्रयोगो से यह मालूम हुआ है कि नाईट्रेट ऑफ़ सोडा के बजाय गाय बैल का पेशाब कपास की खेती के लिये ज्यादा अच्छा होता है।

	कपास को औसत पैदावार
आठ गाड़ी गोबर और ६६ पौन्ड नाईट्रेट	६६८
आठ गाड़ी गोबर और चार गाड़ी। पेशाब से भीगी हुई मिट्टी।	७०२

इसके अतिरिक्त मनुष्य के विष्ठा का खाद, हरी खाद, नगर के नालों का खाद आदि भी कपास की फसल के लिये बड़े उपयोगी हो सकते है। पर हम समझते हैं कि कम्पोस्ट खाद ही का उपयोग विशेष लाभदायक है। अगर वह उपलब्ध न हो तो ढोरो के सड़े हुए गोबर और पेशाब को मिलाकर बनाया हुआ खाद कपास

की फसल को देना चाहिये। मनुष्य के विष्ठा मे राख और थोड़ा चूना मिलाकर देना भी हितकर है। हमने इन खादों पर इसलिये जोर दिया कि इन्हें प्राप्त करना भारत के गरीब किसानों के लिये ज्यादा मुश्किल नही है। वैसे कपास की खेती के लिये नगर के नालो का खाद भी बड़ा बढ़िया हो सकता है, पर इसका प्रबन्ध होना मौजूदा हालत मे मुश्किल है।

बीज।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं अच्छी खेती के लिये अच्छे बीज की बड़ी आवश्यकता है। "जैसा बीज वैसा फल" की कहावत भी मशहूर है। बीज के चुनाव के समय हमें कई बातों पर ध्यान देने की जरूरत है। सबसे पहले हमे यह देखना चाहिये कि वह बीज ऐसी जाति का हो जो उस भूमि को मानने वाला हो, जिसमें वह बोया जाने वाला है। जैसे इन्दौर के प्लेन्ट रिसर्च इन्स्टीयूट ने कई प्रयोगो के पश्चात् यह अनुभव किया कि मालवा की भूमि में मालवी और गोजियम नामक दो जातियों के कपास सब तरह से अधिक लाभदायक होते हैं तो किसानों को चाहिये कि वे उक्त संस्था के अनुभव का फायदा उठाकर उन्हीं जाति के बीजों को अपने खेतो मे बोने का प्रयत्न करें। इससे उन्हें बड़ा मुनाफा होगा। मालवा में मालवी कपास तो बहुत ही अनुकूल पड़ता है। वह इस भूमि मे खूब फलता फूलता है। उसकी पैदावार ज्यादा बैठती है। उसमे ऐसे गुण भी हैं, जिनकी सब जगह कद्र हो सकती

है। चुनाई के वक्त इसका पौधा रुई से लबालब भरा हुआ दिखलाई देता है। इसमे मौसम की प्रतिकूल स्थितियो का (Adverse Monsoon Conditions) मुकाबला करने की भी ताकत है। यह जल्दी भी पकता है। ऐसी स्थिति में मालवी कपास के अच्छे चुने हुए बीजों को बोना ही यहाँ के किसानों के लिये हितकर है। यही बात दूसरे प्रान्तों के किसानों के लिये भी लागू हो सकती है। जिस भूमि को कपास की जो जाति अनुकूल पड़े उसमें उसी के बीज बोना लाभकारक हो सकता है। इसके लिये प्रयोग किये जाने चाहिये। अगर कोई ज्यादा अच्छी जाति, चाहे वह देशी हो या विदेशी, किसी प्रान्त की भूमि को अनुकूल पड़ती हो और उससे किसानो का अधिक लाभ होत हो तो, उसे बोने में बड़ी उत्सुकता दिखलाना चाहिये। अगर किसी वैज्ञानिक पद्धति से वह भूमि किसी श्रेष्ट जाति के कपास के अनुकूल बनाई जासके तो उसके लिये भी प्रयत्न करना चाहिये।

मालवी कपास अगर उपलब्ध न हो सके तो रोजियम कपास के अच्छे चुने हुए बीजो को बोना चाहिये।

इन्दौर की कृषि-संस्था के प्रयत्न।

मालवा की भूमि के लिये मालवी कपास की श्रेष्ठता को इन्दौर के प्लेन्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट ने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। ईसवी सन् १९२४ मे इस संस्था ने इन्दौर राज्य के निमावर जिले के कन्नौद नामक कस्बे मे सबसे अच्छे कपास के बीज

प्राप्त किये। कई वर्षों तक चुनाव पद्धति (Selection) से इनकी छटनी होती रही। इसके बाद जो बीज प्राप्त हुए उनसे जहाँ रुई की पैदावार अच्छी हुई, वहाँ गुण में भी वह ऊँचे दर्जे की रही। किसानो ने इस बीज को अपनाया। उन्हे यह अनुभव होगया कि अन्य बीजो की अपेक्षा मालवी और रोजियम जाति के चुने हुए बीजों से जो कपास पैदा होता है वह ऊँचे दर्जे का होता है और इन्दौर की मीलों से उसकी कीमत भी ज्यादा आती है। कहने का अर्थ यह है कि बीज ऐसी जाति का चुनना चाहिये जो भूमि को मानती हो और जिसके पौधे से अधिक मिकदार मे रुई निकलती हो।

मिलवां (मिश्रित) बीजों से हानि।

भारत के किसान अक्सर जिनिंग फेक्टरी से कपास के बीज प्राप्त करते हैं। इसमे सब तरह के अच्छे बुरे बीज मिले हुए रहते हैं। बीज प्राप्त करने की यह पद्धति अच्छी नही है। खेतो के लिये तो कपास की उसी जाति का बीज अलग रखना चाहिये, जो कि प्रयोगो के द्वारा सब दृष्टि से अधिक उपयोगी सिद्ध हो चुकी हो। इन बीजो को बड़ी हिफाजत से रखना चाहिये। किसानो को चाहिये कि वे अपने सामने कपास की अच्छी जाति का बीज निकलवा कर अलग रखले। उनमे दूसरे बीजों की मिलावट न होने दे। कितने अफसोस की बात है कि यहाँ के किसान जिन बीजो को ढोरो के खिलाने के काम मे लाते हैं उन्हे ही बोने के काम मे ले आते हैं।

भारी बीजों की उपयोगिता

कपास की अच्छी पैदावार के लिये अच्छे बीजों का बोना बहुत ही जरूरी है। जो किसान अपने खेतों मे हलका या रोगी बीज बो देते हैं, उनकी पैदावार अच्छी नहीं होने पाती और पोधों को कई बीमारियाँ लग जाती हैं। कपास की अलग २ जातियो के बिनौलों के वजन मे फर्क रहता है। कई जाति के बिनौले वजनदार होते हैं और कई के हलके रहते हैं। इसके अलावा अच्छे पके हुए व रोग से बचे हुए कपास के बिनौले बडे व वजनदार होते हैं; क्योंकि उनकी बाढ़ पूरी होती है। अकसर जीन में रुई निकलवाने के वक्त कई जाति के बिनौलों के इकट्ठा होजाने से किसानों को अच्छा बीज छाँटने में बड़ी मुश्किल होती है। अगर किसी खास जाति का बीज उन्हें मिल भी गया तो भी उसके हलके व पूरी तौर से न बढ़े हुए बीजों को अलग न कर सकने के कारण उनके खेत की फ़सल एकसा नहीं होती। अर्थात कहीं २ पौधे अच्छे बढ़ते हैं और कहीं २ उनकी बाढ़ शुरू ही से मारी जाती है। इस तरह उनकी पैदावार में फ़र्क आजाता है और सारे खेत मे एकसा खाद देने व बराबर मेहनत करने पर भी वे पूरी पैदावार नहीं लेने पाते। बड़े व वजनदार बीज बोने से सब के सब बीज उगते हैं और पौधे की बाढ़ अच्छी होती है। इस प्रकार बीज भी कम खर्च होता है और पौधे की बाढ़ मारी जाने के कारण आगे जो पैदावार में कमी आती है, उसका डर बिलकुल नहीं रहता। इस

लिये बड़े और वजनदार बीजों के छाँटने की तरकीब का जानना बड़ा जरूरी है। बम्बई के कृषि-विभाग ने इस बारे में जो तरकीब निकाली है, उसका सारांश हम यहाँ देते हैं। आशा है किसान इस तरकीब को काम में लाकर अपने खेत की पूरी उपज लेने का प्रयत्न करेंगे।

भारी बीज छांटने की तरकीब

वैसे तो भारी व बड़े बीज को हलके बीज से हाथों के द्वारा अलग कर सकते हैं, पर जहाँ किसानों को अपने खेतों में मनो से बीज बोना पड़ता है, वहाँ यह तरकीब काम नहीं दे सकती। अक्सर देखा गया है कि हिन्दुस्थानी कपास की सब जातियों के बड़े व वजनदार बीज पानी में डूब जाते हैं और हलके बीज ऊपर तैरते रहते हैं। इसलिये अगर किसान इसी तरकीब से फ़ायदा उठावें, तो सहज ही अपना काम बना सकते हैं। वैसे तो भारी बीज अलग करने के लिये और भी तरकीबें हैं, पर उनमें ज्यादा होशियारी की जरूरत है। इसलिये किसानों के लिये यही तरकीब सबसे अच्छी समझी गई है। इस तरकीब को काम में लाते समय नीचे लिखी हुई बातें ध्यान में रखना चाहिये।

कपास के बीजों में रुई का थोड़ा बहुत रेशा रह ही जाता है और इस से वे गुच्छों में बंध जाते हैं और सहज ही अलग नहीं होते। अगर इस प्रकार के बीजों को पानी में डाल दिया गया तो वजनदार बीज भी पानी के ऊपर तैरते रहेंगे; क्योंकि

छोटे व हलके बीज, जो कि उनके साथ लगे हुए होंगे, उनको इस काम मे मदद देंगे। कभी २ बिनौलो के साथ कुछ रुई लगा रहती है और इस प्रकार वे वजनदार होते हुए भी पानी के ऊपर तैरते हैं। अतएव हलके बीजों को तिराने व वजनदार बीजों को अलग छाँटने के पहले ऐसी तरकीब करना चाहिये जिससे ऊपर बतलाई हुई दोनों मुश्किलें रफा हो जावे। यह तरकीब इस प्रकार हो सकती है कि बीजों को तिराने के पहले उन्हें थोड़े से पानी मे गिला कर बोरी (टाट) के टुकड़े से पोछ लिया जावे। पर यह तरकीब काम मे लाते वक्त भी एक सावधानी रखना चाहिये। वह यह है कि बीजों का पोंछने के बाद जल्दी ही नमक के पानी मे डाल दिया जावे; क्योंकि अगर बीजों को थोड़ी देर तक भी गीला रखा तो वे फूल जाते हैं और फिर हलके व भारी बीजों को अलग करना बड़ा मुश्किल होजाता है। इतना ही नही, गीले बीज निकम्मे हो जाते हैं।

बराडी कपास में तो केवल पानी के द्वारा हलके व भारी बीजों को अलग कर सकते हैं। पर कुमता व भडोंच कपास के हलके भारी बीजों को छांटना जरा मुश्किल है; क्योंकि वे निखालस पानी में वजनदार बीजों की तरह पेंदो मे बैठ जाते हैं। इसलिये निखालस पानी का उपयोग न करते हुए नमक मिश्रित पानी काम में लाना अच्छा रहता है। एक घड़े भर पानी मे २ सेर नमक डालने से काम बन जाता है।

बीज तिराने की रीति

नमक के पानी को एक बालटी या किसी गहरे (उन्डे) बर्तन में भर देना चाहिये। इस बर्तन को पौन हिस्से तक भरना चाहिये, जिस मे हलके बीजों के तैरने के लिये जगह बच जावे। इसके बाद इसमे बीज डालना चाहिये और जब पानी मे चारों ओर बीज हो जावें तो एक लकड़ी मे धीरे २ सब बीजो को हिला देना चाहिये। इस समय जितने बीज ऊपर तैरने लगें उन सब को अलग निकाल लेना चाहिये और फिर पहले की तरह नये बीज बालटी मे डाल कर हलके बीज निकाल लेना चाहिये। जब बालटी भारी बीजों से आधी से ऊपर भर जावे तो पानी का दूसरी बालटी या बर्तन मे डाल देना चाहिये और फिर उसमे दूसरे बीजो को इसी तरह तिराना चाहिये। इसके बाद भारी बीजो को मामूली ढंग पर खेत मे बो देना चाहिये। अगर किसी कारणवश वे जल्दी न बोये जासकते हों तो उन्हे अच्छी तरह छाया मे सुखा लेना चाहिये। तजुर्बा से मालूम हुआ है कि इस प्रकार सुखाये हुए बीज तीन सप्ताह तक रखे जा सकते हैं।

ऊपर बतलाई हुई तरकीब बिलकुल सरल है और इसमें किसी प्रकार का नुकसान नहीं है; क्योंकि दो सेर नमक के मिश्रण से काफी बीज छाँटा जा सकता है। इसके अलावा किसान हलके बीज को सुखा कर उसका उपयोग अपने ढोरों के बाँटे में

कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त कहीं २ हलके व भारी बीज की छँटनी 'सूप' से की जाती है। एक आदमी सूप में बीज भर कर उन्हे हवा में उड़ाता है। इस से जो बीज भारी व बड़े २ होते हैं, वे उसके पैरों के पास आगिरते हैं और जो हलके व छोटे होते हैं, वे हवा के झोंके से कुछ दूरी पर जा गिरते हैं। कभी २ जब हवा बराबर नहीं चलती, तब इस प्रकार छँटनी करने मे बड़ी तकलीफ होती है। ऐसे समय किसान कपड़े का पंखा बनाते हैं और उससे सूप के पास हवा करते है। इस प्रकार जब बीज अलग २ हो जाते हैं, तो एक औरत उनको अलग २ इकट्ठा कर लेती है। जो बीज सूपवाले आदमी के पैरों के पास गिरते हैं उनको बोने के काम मे लेते हैं। इस प्रकार की तरकीब से दूसरे अनाजो की छँटनी मुमकिन हो सकती है, पर कपास की छटनी में यह तरकीब काम नहीं दे सकती; क्योंकि यदि छोटे व फूटे बीजों को भी कपास लिपटा रह गया तो वे भारी बन जाते हैं और इस प्रकार वे सूप वाले आदमी के पैरों के पास अर्थात् भारी बीजो के ढेर ही में आ गिरते है।

मि० एच० जे० वेबर और ई० बी० बायकिन नामक दो महाशयों ने अमेरिका मे बीज की छँटनी व कपास के रेशे को अलग निकालने की बहुत अच्छी तरकीब ढूंढ़ी है। आपने बीज को गोबर के पानी के बजाय गेहूँ के आटे के पानी में डुबाने की सलाह दी है। आपकी तरकीब का पूना के कृषि-प्रयोग-क्षेत्र में

प्रयोग किया गया तो वास्तव में वह बड़ी सन्तोषप्रद प्रतीत हुई। इस तरकीब से ऊपर बतलाई हुई सब कठिनाइयाँ दूर हो गईं और जो कपास का रेशा बीज के साथ एक बक्त चिपक गया वह पानी में डुबोने या गीला करने तक जैसा का तैसा ही बना रहा; जिससे कि बीजों को एक बार अलग कर लेने पर फिर गुच्छे न बँधने पाए।

यह तरकीब भी गोबर के पानी वाली तरकीब की तरह सरल है। पर इसमे एक औजार की आवश्यकता होती है। इस औजार की कीमत बहुत ही थोड़ी है और इसे साधारण सुतार भी तैयार कर सकता है। इसका आकार प्रकार एक ढोल का सा रहता है। [देखो चित्र नं० १] इसके दोनों बाजुओं पर धुरा निकला रहता है और उसी से एक मूठ लगी रहती है। इस ढोल मे करीब १०, १२ सेर कपास के बीज भरे जा सकते हैं। इसके ऊपरी हिस्से में एक छेद बना कर उसमे ढक्कन बना देते हैं। यह छेद बीज भरने व निकालने का द्वार है। हर दस सेर कपास के बीजो के रेशे को ठीक करने के लिये ८ औंस गेहूँ के आटे को एक पिन्ट (डेढ़ पाव) पानी मे खूब हिला कर मिश्रण तैयार करते हैं। इसके बाद इसमे दो पिन्ट पानी और मिला देते है। इस को फिर गरम करते हैं और जब यह चिपकने लग जाता है तो उतार कर ठण्डा कर लेते हैं। इसके बाद इसको यन्त्र में डाल देते हैं और ऊपर से २० सेर कपास के बीज डाल कर ढोल का मुँह बन्द कर देते हैं। बाद में उसको करीब १५, २० मिनट तक खूब

घुमाते हैं, जिससे कि आटे का पानी हर एक बीज को लग कर रेशे को चिपका देता है और सब बीज एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। इस तरकीब की तारीफ यह है कि बीज ढोल से निकालने के पहले ही सूख जाते और निकालते समय ऐसे अलग २ बिखरे हुए मालूम होते हैं, मानों वे चने हों। यहां यह बात बतला देना आवश्यक है कि अलग २ जाति के बीजों के लिये आटे व पानी का परिमाण अलग २ रखना पड़ता है। मसलन नडियाद मे बोये जाने वाले रोजियम जाति के कपास के बीज के लिये सवाये आटे और सवाये पानी की आवश्यकता होती है।

बीज छाँटने की तरकीब

बीज छाँटते के लिये जो मशीने कई स्थानों पर काम में लाई जाती हैं, उनके द्वारा भारी बीज, फूटे और हलके बीजों से ठीक तरह अलग नहीं होते। मि० वेबर व बॉयकिन साहब ने अपने प्रयोगों से यह ढूँढ़ निकाला है कि कपास के बीज छाँटने की मशीन में एक बहुत लम्बा हवा आने का मार्ग रखना चाहिये जिससे हवा खूब जोर से आता रहे और बीजों पर उसके प्रवाह का काफी असर होता रहे। इस प्रकार की रचना से बीज हवा के साथ उछलते हैं और उसका यह फल होता है कि भारी बीज नीचे गिर जाते हैं व छोटे व हल्के बीज उड़ कर एक तरफ गिर पड़ते हैं।

पूना के कृषि कॉलेज मे इसी सिद्धान्त को ध्यान में रख कर एक फटकने की मशीन मे आवश्यक सुधार किया गया। इस मशीन के केन्द्रस्थल में लगभग ४ इञ्च चौड़ा एक छेद बनाया गया और उसी पर ५ फुट ऊँचाई का एक हवा मार्ग (Flue) रखा गया। इस के साथ ही पंखों के चक्र मे भी परिवर्तन किया गया, जिस से वे ज्यादा तेजी से चल सकें। अब इस मशीन के जरिये एक मिनट मे लगभग एक पौंड बीज छँटता है और इस अवधि मे पंखा २४० या २५० चक्कर लगाता है। इस तरह एक एकड़ मे बोया जाने वाला बीज आधे घन्टे मे छाँटा जा सकता है। मशीन के बनाने में ४० से लगाकर ५० रुपये तक खर्च बैठता है। यह खर्च मामूली किसानो की हैसियत से कुछ अधिक मालूम होता है। अतएव यदि गांव के सब किसान मिल कर सहकारिता की पद्धति पर यह मशीन मंगवा ले तो यह कठिनाई सहज ही रफा हो सकती है।

बीज की छटनी

पूना के बाजार से खरीदे हुए बीज के प्रयोग

शुरू २ मे उक्त मशीन का पूना के प्रयोग क्षेत्र मे उपयोग किया गया। प्रयोग के लिये पहले पूना के बाजार से बिनौले (कपास के बीज) खरीदे गये, जिन मे बहुत से फूटे हुए और रोगीले बीज थे। मशीन की उपयोगिता की जांच करने के लिये ये बीज बड़े अच्छे थे। बीज के रेशों को आटे के पानी के

द्वारा जमा देने के बाद इस मशीन से बीज छाँटने पर नीचे लिखे हुए नतीजे निकले—

भारी बीज (फी सैंकड़ा)	हलके व खराब बीज (फी सैंकड़ा)	मिट्टी, कंकर, रुई के रेशे आदि जो कि चलनी से साफ हुए (फी सैंकड़ा)
७२—५ फी सैंकड़ा	१३ -५	१४—००

यहाँ हलके व भारी बीज व बिना छँटनी के बीजों के अंकुरित होने के विषय में भी जो प्रयोग किये गये उनका नतीजा नीचे दिया जाता है।

बीज की किस्म	अंकुरित होने की औसत फी सैंकड़ा	रिमार्क
१ बिना छँटा हुआ बीज	४०	अंकुरित होने का परिमाण। आठ-प्रयोगो की औसत के आधार पर रखा गया है
२ छँटा हुआ भारी बीज	५५	
३ मशीन से उड़े हुए हलके बीज	२६	

ऊपर के अंकों से साफ जाहिर होता है कि भारी बीजों को अलग छाँटने से फी सैंकड़ा १३ बीज ज्यादा अंकुरित हुए। यह नतीजा उन बीजों का है, जो कि खराब व रोगी थे। इसी प्रकार यह मालूम होता है कि मशीन से उड़े हुए हलके बीज अच्छी तरह अंकुरित नहीं हो सकते। इन बीजों में जो २६ फी

सैंकड़ा अंकुरित हुए, उनमें से भी केवल १० फी सैकड़ा ही ऐसे थे, जिन के कि अच्छे पौधे लगे।

(२) खानदेशी बीज

इसके बाद खानदेशी कपास के बीजों के प्रयोग किये गये। इन बीजों से नीचे बतलाये मुताबिक नतीजे निकले। ये बीज नीचे बतलाई हुई तादाद में अंकुरित हुए—

भारी बीज फी सैकड़ा	हलका व रोगीला बीज, जो कि मशीनसे उड़ गया (फी सैकड़ा)	पत्थर, कंकर, मिट्टी व रुई के गुच्छे आदि (फी सैकड़ा)
८६	४	१०

ये बीज नीचे लिखी तादात में अंकुरित हुए:—

बीज की किस्म	अंकुरित होने की औसत	रिमार्क
१ बिना छँटे हुए बीज	७२	यह प्रमाण आठ प्रयोगों की औसत है
२ भारी छँटे हुए बीज	७९—९	

इन बीजों में से जो थोड़े हलके बीज मशीन से उड़कर बाहर निकले, उनमें अंकुरित होने सरीखे बीजों की संख्या बहुत कम थी। इस बार बीज छाँटने के यंत्र में कुछ गड़बड़ होजाने के कारण बीजों की छटनी ठीक नहीं हुई। साथ ही यह भी मालूम

हुआ कि यदि पंखों को गति और ज्यादा तेज करदी जाय तो उससे इस काम में और अधिक सहायता मिलेगी। अतएव पखों के चक्र को बदल कर उनकी ड्योढ़ी गति कर दी गई। इस बार बीज की छटनी के जो प्रयोग किये गये उनका नतीजा नीचे लिखे मुताबिक निकला।

भारी बीज (फी सैकड़ा)	हल्का बीज जो कि पंखों की हवा से उड़ कर अलग हो गये (फी सैकड़ा	मिट्टी, कचरा व रुई के रेशे (फी सैकड़ा)
७१—५	२१—८	६—७

इन बीजो से नीचे बतलाये हुए परिमाण में बीज अंकुरित हुए।

बीज की किस्म	अंकुरित होने वाले बीजो की तादाद फी सैकड़ा	रिमार्क
१ बिना छँटा हुआ बीज	*७२	* खाना नं० २ में बीज के अंकुरित होने की जो तादाद बतलाई गई है, वह ८ प्रयोगों की औसत है।
छँटा हुआ भारी बीज	८४	
३ हल्के उड़े हुए बीज	३६	

इस बार छँटे हुए बीजों में लगभग १३ प्रति सैकड़ा बीज ज्यादा अंकुरित हुए। इस बार के प्रोयोगों में यह महत्व पूर्ण बात मालूम हुई कि पंखे की गति बढ़ाने से बीज के अंकुरण की संख्या फी सैंकड़ा ५ बढ़ जाती है।

(३) रोजी कपास के बीज

इसके बाद 'रोजी' कपास के बीज काम मे लाये गये। ये नड़ियाद के फार्म से मँगवाये गये थे। फी सैकड़ा बीज की छटनी नीचे लिखे मुताबिक हुई।

भारी बीज	हल्के व बिगड़े हुए बीज	मिट्टी, कंकर व रुई के रेशे आदि
७७	६	१५

इस जाति के बीज नीचे बतलाये मुताबिक अंकुरित हुए।

बीज की किस्म	अंकुरित होनेकी तादाद	रिमार्क
१ बिना छँटा हुआ बीज	४०—८	अंकुरित होनेकी तादाद आठ प्रयोगों की औसत के आधार पर रखी गई है।
२ छँटा हुआ भारी बीज	७६	
३ हल्का बीज	२९—५	

इस जाति के कपास में बिना छँटे हुए बीजोंके अंकुरित होने का तादाद बहुत कम मालूम होती है और छँटाई के बाद एकदम ३५ फी सैकड़ा बढ़ जाती है।

(४) भडौच कपास के बीज

इस कपास के बीज की छँटनी फी सैकड़ा निम्न प्रकार हुई।

भारी बीज	हलके व बिगड़े हुए बीज	मिट्टी, ककर व रूई के रेशे आदि
७[illegible]	१६	८

इस छँटनी के बाद जो बीज बोये गये तो वे नीचे लिखे परिमाण मे अंकुरित हुए।

बीज की किस्म	अंकुरित होने की संख्या	रिमार्क
बिना छँटे हुए बीज	३०	
छँटे हुए बीज	४८	
हलके उड़े हुए बीज	१५	

ऊपर के पत्रक मे बीजों के अंकुरित होने की संख्या कम मालूम होती है। इसका कारण यह है कि जिस साल ये बीज प्रयोग के लिये चुने गये थे, उस वर्ष कपास की फसल बिगड़ गई थी। इसलिये एक बार छंटे हुए बीजों को फिर मशीन में डालकर

छटनी की गई। इस बार 'फ्ल्यू' की लम्बाई एक फुट कम कर दी गई और पंखे की गति फी मिनिट २००-२५० चक्कर के हिसाब से कायम की गई। इस प्रकार छँटे हुए बीजों से निम्न लिखित नतीजे निकले।

बीज की किस्म	अंकुरित होने की तादाद फी सैकड़ा	रिमार्क
दुबारा छटा हुआ भारी बीज	६०	आठ प्रयोगों की औसत
हलका बीज	४०	

इस नतीजे से मालूम होता है कि बीज की दुबारा छंटनी से उनके अंकुरित होने की तादाद मे कुछ भी फर्क न आया। इसमें एक प्रकार से उल्टा नुकसान ही रहा; क्योंकि ४० फी सैकड़ा बीज 'फ्ल्यू' से ऊपर उड़गया। इसमे करीब २ आधा बीज ऐसा था जो अंकुरित हो सकता था।

धारवार अमेरिकन कपास

सबके अन्त मे धारवार अमेरिकन कपास के प्रयोग किये गये। इस कपास का बीज धाराबार के पास कुर्तकोटी नामक एक गांव से मँगवाया गया था। इसकी छँटनी फी सैकड़ा नीचे लिखे अनुसार हुई।

भारी बीज	हल्का व फ्ल्यू से उड़ाया हुआ बीज	कंकर, मिट्टी, व रुई के गुच्छे वगैरह
८१	१३	४

ये बीज नीचे बतलाये अनुसार अंकुरित हुए।

बीच की किस्म	अंकुरित होने की तादाद	रिमार्क
१ बिना छँटे हुए बीज	७९	आठ प्रयोगों की औसत
२ भारी छँटे हुए बीज	८८	
३ फ्ल्यू से उड़ाये हुए हल्के बीज	५६	

इस बार के प्रयोग मे उड़ाये हुए बीजो के अंकुरित होने की संख्या बहुत अधिक रही। इन बीजों मे अच्छे बीजों की तादाद भी कुछ अधिक थी। इससे यह नतीजा निकला कि पंखे की गति इस बीज की छँटनी के लिये ज्यादा तेज थी, जिस के कारण अच्छे बीज भी ऊपर उड़ गये थे।

उपरोक्त प्रयोगों के नतीजो का सारांश यह है।

(१) बोने के लिये साधारण हैसियत के किसान जो बीज काम मे लाते हैं, वे बहुत हलके दर्जे के रहते हैं और उनमें से बहुत थोड़ी तादाद में बीज अंकुरित होते हैं।

(२) भारी व उत्तम बीजों को अलग कर लेने से वे ज्यादा तादाद में अंकुरित होते हैं।

(३) गेहूँ, ज्वार व दूसरे बिना रेशेदार बीजों को छाँटने के लिये जो औजार काम में लाये जाते हैं वे कपास के बीजों की, (जिन के साथ रुई के परमाणु लगे रहते हैं) छटनी में काम नहीं देते। अतएव कपास के भारी बीज अलग करने के लिये पहले उनको आटे के पानी में डुबा कर रुई के रेशों को दबा देने की आवश्यकता है। इसी प्रकार भारी बीज को छाँटने के लिये मामूली फटकने की मशीन से काम नहीं चलता। इसलिये उसमें कुछ परिवर्तन करना चाहिये।

(४) कपास के बीजों पर जो रुई के रेशे लगे रहते हैं उनको आटे के पानी में डुबाने के बाद चित्र नं० १ में बतलाई हुई मशीन में भर कर फिराना चाहिये। इस तरकीब से बहुत कम खर्च से बीज तैयार हो जाते हैं।

(५) बीजों को छंटनी के यन्त्र द्वारा अलग २ करने से उसके अंकुरित होने की तादाद फी सैकड़ा ८ से लगा कर ३५ तक बढ़ती है

बीज की तादाद

एक एकड़ में कितना बीज बोया जाना चाहिये, यह बात निश्चय-पूर्वक नहीं बतलाई जा सकती। ज्यादा फैलने वाली जातियों का बीज कम लगता है और कम फैलने वाली जातियों

का ज्यादा। इसके अतिरिक्त अगर बीज खराब और हलके दर्जे का होगा तो ज्यादा बोना पड़ेगा। फिर भी साधारण तौर से एक एकड़ मे ९-१० सेर से ज्यादा बीज न बोना चाहिये।

जुताई

दूसरी फ़सलों की तरह कपास की खेती के लिये भी गहरी जुताई हितकर है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कपास के पौधे को भली प्रकार फलने फूलने के लिये वायु की जरूरत होती है। जिस ज़मीन मे वायु का प्रवेश ठीक नही होता, वहां कपास का पौधा अच्छी तरह नही पनप सकता। इसलिये जुताई के द्वारा खेत की मिट्टी इतनी मुलायम, भुरभुरी और नर्म कर देना चाहिये कि जिस से ज़मीन मे हवा का आवागमन बराबर होता रहे। इसके लिये आवश्यक है कि खरीफ की फसल के कटते ही देशी हल चला दिया जाय। हमारे यहां के किसान बखर से ही खेत जोतते हैं। किन्तु इससे जुताई अच्छी नहीं होती। किसानों को ध्यान रखना चाहिये कि कपास की खेती के लिये अच्छी कमाई करने की बड़ी ज़रूरत है।

अकोला मे किये हुए प्रयोगों से यह मालूम हुआ है कि बखर की उथली जोत की अपेक्षा हल द्वारा की हुई जुताई से पैदावार अधिक होती है। नागपुर के कॉलेज फॉर्म पर भिन्न-भिन्न प्रकार की जुताई के नतीजों का निरीक्षण किया गया जिस से यह मालूम हुआ कि हल द्वारा की गई गहरी जुताई से

फायदा होना न होना दा मुख्य स्थानीय तत्वों पर अवलम्बित है।

(१) जिस साल, विशेषकर जुलाई मे, बारिश हल्की गिरती है, उस साल गहरी जुताई करने से ज्यादा अच्छी पैदावार होती है।

(२) जिस साल बारिश भारी होती है और इसके साथ ही जहां जमीन मे पानी के निकास का प्रबन्ध ठीक नहीं रहता, उस साल वहां हल द्वारा की हुई गहरी जुताई से फसल को नुकसान पहुँचता है।

इस तरह जिन सालों मे जुलाई मे बारिश हलकी होने से फसले अच्छी आई और जिन मे बारिश ज्यादा होने से कम आई, ऐसे कई सालों की औसत देखने से हल द्वारा की हुई गहरी ओंत ही विशेष लाभकारक मालूम हुई। यह भी मालूम हुआ कि जिन खेतों मे पानी का ठीक निकास हो जाता है, और जहां के पृष्ठ भाग के नीचे की जमीन खुली है, वहां हल द्वारा की हुई गहरी जुताई ही फायदेमन्द होती है। पर इसके विपरीत जहां खेत के गहरे तथा निचास पर होने के कारण पानी का निकास नहीं होता, वहां गहरी जुताई से नुकसान होता है।

इसका कारण स्पष्ट है। हम पहले कह चुके हैं कि कपास की फसल को फलने फूलने के लिये—उसकी जड़ों की उन्नति के लिये – भूमि मे वायु प्रवेश की बड़ी ही आवश्यकता है। मानवी-जीवन की तरह पौधों के जीवन में भी वायु की अनिवार्य्य

आवश्यकता है। भूमि मे वायु पहुँचाने के लिये खेत की मिट्टी का मुलायम और नर्म होना जरूरी है। यह बात गहरी जुताई से हो सकती है। दूसरे शब्दो मे अधिक स्पष्टतया से यो कह लीजिये कि भूमि को इस योग्य बनाना कि उसमे हवा खेलती रहे यह गहरी जुताई ही का काम है। पर जिस प्रकार कभी कभी विशेष परिस्थिति मे अच्छी चीज भी बुरी हो जाती है, वैसे ही जिस जमीन मे पानी के निकास का प्रबन्ध नहीं है, वहां गहरी जुताई से इसलिये नुकसान पहुँचता है कि भारी वर्षा के समय गहरी जुताई वाले खेत मे दूसरे खेत से भी अधिक पानी भर जाता है। इससे जहां गहरी जुताई से भूमि मे वायु-प्रवेश का मार्ग खुला होना चाहिये, वहां उल्टा वह और भी बन्द हो जाता है। इससे फ़सल को लाभ के बदले नुकसान हो जाता है।

सब बातों का विचार करते हुए हम कपास की खेती के लिये गहरी जुताई ही की सिफारिश करते हैं, पर इससे भी अधिक जोर की सिफारिश हम खेत को ढाल देकर नालियों के द्वारा वर्षा के फालतू पानी को निकाल देने के लिये करते है।

मालवा की काली भूमि के लिये तो गहरी जुताई की और भी अधिक आवश्यकता है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि इस भूमि मे कपास के पौधों के लिये अच्छी भोजन सामग्री रही हुई है। कपास की फ़सल को यह भूमि बहुत कुछ मुआफिक पड़ती है। अगर यह कहा जाय तो कुछ भी अतिशयोक्ति न होगी

कि कपास की फ़सल के लिये यह सब से अच्छी भूमि है। पर यह अधिक चिपचिपी* होने के कारण बारिश के दिनों में इसके ढेले बन जाते हैं। इससे इसमे वायु-प्रवेश का मार्ग बन्द हो जाता है। इसलिये कपास की सब से अच्छी पैदा लेने के लिये काली मिट्टी वाले खेत में गहरी जुताई के साथ साथ वर्षा के फालतू पानी के निकास का भी योग्य प्रबन्ध होना चाहिये।

बोना

मध्य-भारत और खास कर मालवा तथा निमाड आदि प्रान्तो मे दो फन वाली नाई से कपास की बोनी की जाती है। मध्य-प्रान्त मे बड़े किसान तीन दांत वाले अरगडा नाम के औजार से और छोटे किसान बक्खर के पीछे बास के पोले टुकड़े की नली लगा कर उससे बोनी करते हैं। हमारी राय मे नीमाड़ और मालवे मे 'अरगड़े' से काम लेना ज्यादा फायदेमन्द है, क्योंकि इससे एक बार मे दो के बजाय तीन 'चांस' बोये जा सकते हैं। इसका उपयोग करने से बोनी मे ज्यादा किफ़ायत होता है, और समय भी बचता है। हां, पहाड़ी जिलो मे 'अरगड़ा' या दो फन (दांत) की नाई से बोनी नहीं की जा सकती। क्योंकि खेतों मे पत्थर होने से ये औजार काम नहीं दे सकते। इसलिये ऐसे जिलो में एक फन (दांत) की नाई का उपयोग ही फ़ायदेमन्द है।

* चिकनी या चिपकने वाली।

बोनी के सम्बन्ध में दूसरा सवाल समय का है। तजुर्बे से मालूम हुआ है कि कपास की बोनी जल्द करना विशेष महत्व का है। अकोला में प्रयोग द्वारा बतलाया गया है कि बारिश गिरने के पहले सूखी जमीन मे बोनी करना लाभदायक है। पर यहां यह बात स्मरण रखना चाहिये कि उस खेत मे नींदा आदि किसी प्रकार के घासपात नहीं रहने चाहिये। नहीं तो ज्यादा उत्पन्न का मुनाफा निंदाई के खर्च के कारण घट जायगा।

सन के उपरान्त कपास की फसल बारिश शुरू होने के पहले बोई जा सकती है। बारिश के पहले बोनी करने से यह फायदा है कि बीज को उगने का समय मिलता है और जोर शोर की बारिश शुरू होने के पहिले छोटे छोटे पौध मजबूत और सुदृढ़ होजाते है।

कोई कोई किसान जल्दी बोनी करने के सम्बन्ध मे यह शंका करते है कि अगर प्रारम्भ मे बारिश होगई पर फिर उसने खींच करदी तो इससे जमीन ठीक तरह से न भीगने के कारण पौधे मर जावेंगे। यह आशंका सच है। पर क्या बिना किसी प्रकार की जोखिम उठाये कोई फायदा होसकता है। तिस पर भी कपास जैसी वस्तु के लिये ऐसी जोखिम उठाना कोई बड़ी बात नहीं है। इसमे जोखिम सिर्फ इतनी ही है कि फी एकड़ थोड़े से बीज का नुकसान होजायगा।

कपास के पौधों के बीज का अन्तर।

मध्य भारत और राजपूताने में कपास बहुत घना याने पास २ बोया जाता है। दो चांस के बीच में भी कम फासला रखा जाता

है। प्रयोगों से मालूम हुआ है कि कपास की फसल की दो कतारों या दो चासों में १॥ फूट का (करीब एक हाथ का) अन्तर रहना चाहिये। दो पौधों के बीच मे कितना अन्तर होना चाहिये, यह बात कपास की जाति पर अवलम्बित है। जिस जाति के पौधे ज्यादा फैलते हैं, उसके दो पौधों मे कम से कम आधे या पौन हाथ का अन्तर रखना चाहिये। मालवी, निमाड़ी, रोझिया, आदि जाति के पौधो मे एक या सवा वालिश्त का फासला रखना चाहिये। पौधों को बहुत ज्यादा पास पास रखने से उनको बाढ़ मे रुकावट पहुँचती है। वे फैलने नहीं पाते। इससे पैदावार कम होती है।

कुलपाई।

कपास के पौधे जब पांच छः अंगुल ऊँचे होजावे तब उन पर कुलपे या डोरे चलाना चाहिये। बरसात का मौसम खत्म होने के बाद एक दो बार डोरा देना जरूरी है। इससे खेत जल्दी नहीं सुखेगा और काली जमीन नही फटेगी। यदि डोरे नहीं दिये जावेगे तो जमीन फट जायगी और पौधे सूख जायँगे। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि पैदावार कम होगी।

फसल का हेर फेर।

फसल के हेर फेर की क्यों आवश्यकता है, उससे क्या क्या फायदे हैं, इस सम्बन्ध में हम पहले लिख चुके हैं। कपास की फसल को भी हेर फेर कर बोने ही में फायदा है। हम समझते हैं

कपास के पहले ऐसी फसल बोना चाहिये जो उसके लिये जमीन में भोजन सामग्री छोड़ जावे। मि० हावर्ड कपास के पहले मूँगफली का काश्त करने की सलाह देते हैं। नागपुर के प्रयोगो से यह भी मालूम हुआ है कि कुलथी के बाद कपास बोने से बड़ा फायदा होता है। वहाँ जब कपास के बाद कपास बोया गया तो प्रति एकड़ ३३२ सेर कपास पैदा हुआ पर जब वही कुलथी के बाद बोया गया तो उसकी पैदावार प्रति एकड़ ६०९ सेर हुई। लगभग दूना फर्क पड़ गया। ज्वार के बाद कपास बोने की पद्धति हमारी राय मे पैदावार की दृष्टि में ठीक नहीं है। इससे अच्छा तो यह है कि गेहूँ, चना और तुअर के बाद कपास बोया जावे। सन के बाद कपास बोने से भी बड़ा फायदा होता है।

कपास और पानी का निकास।

हम पहले कह चुके हैं कि कपास के खेत में पानी के निकास का योग्य प्रबन्ध होना चाहिये। इसके बिना कपास का पौधा भली प्रकार फल फूल नहीं सकता। खेती के अनुभवी विद्वान जानते हैं कि कपास का छोटा पौधा अपनी जड़ो के चारों तरफ जरूरत से ज्यादा पानी बर्दाश्त नहीं कर सकता। इसके कारण हैं। खेतो में पानी निकास न होने से उनमें पानी भर जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि मिट्टी के कणों के बीच की जगह पानी से भर-जाती है। इससे कपास के पौधों की जड़ो को हवा कम मिलने लगती है। उनका दम घुटने लगता है। क्योंकि पौधों के जीवन

के लिये भी हवा की उतनी ही जरूरत है जितनी कि मनुष्यों के जीवन के लिये। हवा की इस रुकावट से दूसरा नुक़सान यह होता है कि इससे बेक्टेरिया नामक उन सूक्ष्म जीवाणुओं का कार्य बन्द होजाता है जो जमीन में रहे हुए स्वाभाविक खाद से अथवा हवा मे पौधो के लिये नाईट्रेट के रूप मे भोजन सामग्री तैयार करते हैं। इससे पौधे भूखों मरने लगते हैं और उनका भूखों मरना उनकी पत्तियों के पीली पड़ने से मालूम होता है। इसके अतिरिक्त खेत के अधिक गीले रहने से कपास के पौधो की मुख्य जड़ें जमीन के अन्दर नहीं घुसने पातीं और बाद को जो दूसरी जड़े निकलती है वे तड़क जाती हैं। वे ज्यादा पानी की ओर बढ़ने से मुँह मोड़ती हैं और भूमि की सतह की ओर दौड़ती है। जमीन लगातार गीली रहने के कारण यदि जड़ों की यह प्रवृति एक दफा कायम हो चुकी तो बाद में जमीन का गीलापन दूर करने के लिये कितने ही प्रयत्न क्यों न किए जावे पौधों की हालत नहीं सुधर सकती। पौधा ठिंगना ही बना रहेगा। उसकी जड़े नाकिस होजावेगी। इसका स्वभाविक परिणाम यह होगा कि पैदावार कम होगी।

अमेरिकन कपास की खेती

हमारे किसान भाई अमेरिकन कपास को विलायती कपास कहते हैं। यह कपास देशी कपास की अपेक्षा अधिक बारीक, कोमल और चमकीला होता है। इसके तन्तु भी अच्छे निकलते हैं। इसके सूत से जो कपड़ा बनाया जाता है वह बड़ा ही मुलायम और चमकीला होता है। देशी कपास की अपेक्षा इसका मूल्य भी अधिक रहता है। कपड़े बनानेवाले कारखाने इसको बहुत ज्यादा पसन्द करते हैं। वे इसे बड़ी चाह से खरीदते हैं। इसकी रुई बहुत सफेद होती है।

इस कपास की सफल खेती के लिये कुछ बातो पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। एक तो यह है कि इसकी खेती केवल उन्हीं स्थानों मे होनी चाहिये जहाँ सिंचाई का काफी प्रबन्ध हो; जहाँ नहर हो या समय पर सिंचाई के लिये यथोचित पानी मिल सकता हो। जहाँ सिंचाई का यथोचित प्रबन्ध नहीं, वहाँ भूलकर भी इसे बोने का विचार न करना चाहिये। दूसरी बात यह ध्यान में रखना चाहिये कि जहाँ वैसाख और जेठ में सिंचाई का प्रबन्ध हो सकता हो वहीं इसकी खेती करना चाहिए। तीसरी बात यह है कि जिन खेतों में पानी भर जाता हो

उन खेतों में इसे कभी न बोना चाहिए। चौथी बात यह है कि विलायती कपास को देशी कपास से बिलकुल अलग रखना चाहिए, क्योंकि देशी कपास में मिल जाने से इसके गुणों में कमी आजाती है और इसकी क़ीमत घट जाती है।

ज़मीन

इसकी अच्छी काश्त के लिए दुमट या रेतीली ज़मीन, जिसमें खाद अधिक पड़ा हो, अच्छी होती है। जो भूमि देशी कपास के योग्य होती है वही इसके लिए भी योग्य हो सकती है। ढालू स्थान पर इसे कभी न बोना चाहिए। इसके अतिरिक्त चिकनोट भूमि, जिसमें पानी पड़ने व सिंचाई करने के पीछे दरारें फट जाती हैं, इसकी खेती के लिये बिलकुल बेकाम हैं। वह भूमि भी, जो ऊसर भूमि के निकट हो इसके लिए काम की नहीं है। ऐसी भूमि जिसमे पानी शीघ्र सूख जाता हो और जिसमें जड़ें सुगमता से नीचे चली जावें, इसके लिए बहुत अच्छी होती है। ऐसी भूमि में इसकी बोंडी बहुत फलती है और उपज बहुत अधिक और अच्छी होती है।

खेत की तैयारी

जिस तरह पीयत के देशी कपास के लिए खेत तैयार किये जाते हैं, उसी तरह अमेरिकन कपास के लिए भी करना चाहिये। सियालू की फसल कटने के बाद ही जितना जल्दी हो सके उतना ही जल्दी खेत को जोत डालना चाहिए। लोहे के हलों से इस

खेत की जुताई करना चाहिए। कानपुर के प्रयोग-क्षेत्र के अनुभव से यह मालूम हुआ है कि इसको जुताई के लिए लोहे के हल बहुत अच्छे होते हैं। पहली जुताई के बाद खेत को समतल कर लेना चाहिये और देशी हल से जुताई करनी चाहिए, जिससे घास-पात खेत से निकल जाय। जिस खेत में काँस तथा अन्य भाँति के घास-पात होते हैं वहाँ इसको उपज में बड़ी हानि पहुँचती है।

बोनी

इस कपास को बोनी के दो तरीके हैं—एक छिटकवाँ, और दूसरा हल के पीछे कूएड में। देशी और विलायती दोनों कपासो को कूएड मे बोना अच्छा होता है। जब हल के पीछे बोया जाय तो एक क़तार से दूसरी क़तार का अन्तर २॥ फ़ीट से ३ फीट तक होना चाहिये। अनुभवी कृषि- विद्या-विशारदो का कथन है कि इस कपास को अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए इसे देशी कपास की तरह वैशाख और जेठ के बीच मे बोना चाहिए। यह समय पञ्जाब, संयुक्तप्रांत और मध्य प्रदेश के लिए तो बहुत ही अच्छा है। दूसरे प्रान्तों के लिए भूमि व आबहवा का ध्यान रखकर काम करना चाहिए।

इस कपास की बुआई सियालू की फसल काटने के बाद जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी करनी चाहिये, क्योंकि देर में बोने से इसकी उपज अच्छी नहीं होती। इसे सर्दी अधिक लगती है, और देर से बोई हुई फ़सल पौष, माघ तक खिलती रहती है।

उस समय सर्दी के कारण इसकी ढोंडी बराबर नहीं खिल पाती। तिस पर भी अगर कहीं पाला पड़ गया तो सारी फ़सल का सर्वनाश हो जाता है। इसीलिए हमने पहले कहा कि जहाँ जेठ और वैशाख में सिंचाई का प्रबन्ध न हो सके वहाँ इसका बोना ठीक नहीं। इतने पर भी यदि बोना पड़े तो वर्षा होते ही बोना चाहिए। बीजारोपण के पहले जमीन को योग्य तादाद में पानी देना चाहिए। जब भूमि में पानी सूख जाय और मिट्टी में ओल या नमी बनी रहे तब इसका बीज बोना चाहिए। एक एकड़ में ५ सेर या एक पक्के बीघे में ३ सेर बीज पड़ता है। जब इसका बीज हल के पीछे कुण्ड में बोया जाय तो एक कूड से दूसरे कूड का फ़ासला क़रीब १॥ हाथ याने २॥ फीट का होना चाहिए। अच्छे कमाये हुए और ताक़तवाले खेत में कुदरती तौर से इसके पौधे बड़े होते हैं। इसलिए उनको ज्यादा जगह की जरूरत होती है। अमेरिकन कपास का पौधा झाड़दार होता है। वह देशी कपास की तरह लम्बा और सीधा नहीं होता। इसलिए देशी कपास के बनिस्बत विलायती कपास के पौधे के लिए ज्यादा जगह की जरूरत होती है। अच्छे विलायती कपास एक पौधे पर ४०० से लेकर ५८० तक ढोड़ियाँ (भिटना) लगती हैं। ऐसी स्थिति में अमेरिकन कपास के पौधों को फलने-फूलने के लिए काफी जगह न मिली तो उसे साफ़ रोशनी न मिल सकेगी और इससे उसकी शाखाएँ छोटी रह जायँगी, फूल थोड़े आयँगे और ढोड़ियाँ (भिटने) छोटी और कम लगेंगी।

वैसे तो सब तरह के कपास के लिए छाया का होना हानि-कारक है, पर अमेरिकन कपास के लिये तो उसका होना बहुत ही बुरा है। यहाँ यह बात ध्यान मे रखना चाहिएकि अमेरिकन कपास के साथ-साथ अरहर (तुअर) न बोनी चाहिए। अगर इसके बोने की जरूरत हो तो १० कूड कपास के बाद १ कूड जल्द होने वाली अरहर को बो देना चाहिए। अरहर के कूड पूर्व पश्चिम मे होने चाहिये। अरहर को कूड मे बोना चाहिए। उसे कपास के बीज मे मिलाकर बोने की आवश्यकता नहीं।

निराई और गुड़ाई

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, अमेरिकन कपास का पेड़ देशी कपास के पेड़ से ज्यादा फैलाव का होता है। देशी कपास के पेड की तरह वह लम्बा नही होता। इसकी बहुत सी शाखायें इधर-उधर निकली हुई रहती हैं। जब पहली निराई या गुड़ाई हो जाय तो कमजोर पेडो को उखाड़ कर फेंक देना चाहिए ताकि एक एक उम्दा पेड़ २ से २॥ फुट के फासले पर रह जाय। अगर अमेरिकन कपास के पौधो को पास पास रहने दिया तो रूई की पैदावार कम हो जायगी। इस कपास के बोने की ठीक ठीक दूरी जो कानपुर फार्म के तजुर्बे से लाभकारक मालूम हुई है वह पेड़ से पेड़ तक २ फीट और कूंड से कूड तक २॥ है। इसके अतिरिक्त यह बात भी ध्यान मे रखना चाहिये कि अमेरिकन कपास की उत्तम से उत्तम उपज प्राप्त करने के लिए

खेत में रहे हुए घास-पात को बिल्कुल साफ कर देना चाहिए। काँस, जंगली मोथा आदि उपज को बरबाद करने वाली कोई भी चीज़ खेत मे न रहने देना चाहिए। जब कपास कतारों में बोया जाता है तो उसकी गुड़ाई निराई देशी हल से आसानी से हो सकती है। इससे वक्त, मेहनत और खर्चा सब में किफायत होती है।

खेत में अन्य प्रकार के पौधे

अक्सर यह देखा जाता है कि अमेरिकन कपास के खेत में देशी कपास के कुछ पौधे भी उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए देशी कपास के पौधे ज्यों ही दिखाई दें, त्यो ही उन्हें उखाड़ कर फेंक देना चाहिए। नही तो उनसे अमेरिकन कपास के पौधो को नुकसान पहुँचने का डर रहेगा। यहाँ यह सवाल उठता है कि अमेरिकन कपास के पौधो और देशी कपास के पौधो की पहचान किस प्रकार की जावे। हम इस पर नीचे थोड़ा सा प्रकाश डालते हैं—

जैसा कि ऊपर वर्णन हो चुका है, अमेरिकन कपास का पौधा, जब पूरा बढ़ जाता है, तब वह देशी कपास से छोटा, झाड़दार और अधिक फैला हुआ होता है। उसके पत्ते चिकने और अधिक चौड़े होते हैं। देशी कपास की अपेक्षा अमेरिकन कपास के फूल बड़े होते है। देशी कपास का फूल या तो सफेद या गहरा पीला होता है और उसके बीच मे लाल धब्बे

होते हैं। अमेरिकन कपास के फूल हल्के पीले रंग के और चौड़े होते हैं। उन पर लाल धब्बे नहीं होते। अमेरिकन कपास की बोंड़ी गोल, चिकनी और बड़ी होती है, पर देशी कपास की बोंडी नुकीली, करकरी और छोटी होती है। देशी कपास की बोंडी के केवल ३ फाँके होती हैं। इसके विपरीत अमेरिकन कपास की बोंडी मे ४, ५ फाँके होती है।

सिंचाई

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है अमेरिकन कपास बारिश होने से पहले ही सींचकर बोया जाता है। इसके बाद की सिंचाई वर्षा पर बहुत कुछ अवलम्बित है। यदि वर्षा समय पर होती रहे तो सिंचाई की आवश्यकता नहीं रहती। जब पौधे मुरझाये हुए दिखाई दे उस समय सिंचाई करनी चाहिए।

खाद

अमेरिकन कपास को खाद की उतनी ही जरूरत है, जितनी कि देशी कपास को होती है। यहाँ यह बात ध्यान मे रखना चाहिये कि इस कपास की अच्छी पैदावार उसी हालत मे हो सकती है जबकि खेत मे भलीभाँति खाद दिया गया हो और जुताई, गुड़ाई, निराई ठीक-ठीक हुई हो। यह बात साबित होचुकी है कि अच्छे मौके की जुताई खाद से ज्यादा काम देती है। अमेरिकन कपास की पैदावार उस खेत मे अच्छी होती है, जिसको पिछली फ़सल में अच्छी तरह खाद दिया गया हो। बाक़ी अमे-

रिकन कपास में वे ही खाद दिये जाने चाहिएँ जो देशी कपास में अक्सर दिये जाते हैं।

कपास की बीमारियाँ

अन्य फ़सलो को तरह रुई के पौधो पर भी कई तरह की बीमारियाँ हमला करती हैं। इनसे करोड़ो रुपयों का नुकसान हो जाता है। पाठक जानते है कि संसार भर मे सबसे अधिक कपास पैदा करनेवाला देश अमेरिका का संयुक्त प्रदेश है। अंग्रेज़ी के विश्वकोष से मालूम होता है कि वहाँ इन रोगो के कारण प्रतिसाल कोई १८०००,०००० रुपयो का नुक़सान होता है। हिन्दुस्थान और मिश्र आदि देशो मे भी इनसे करोड़ो रुपयों का नुक़सान होता है। कभी कभी सारी की सारी फ़सल चौपट हो जाती है! ईसवी सन १९११ में सिर्फ़ पजाब मे कोई तीन करोड़ रुपयों का नुकसान हुआ।

जैसा कि हम पहले कहचुके हैं कि इन रोगो के निवारण का सबसे अच्छा उपाय कृषि की पद्धतियो में उन्नति करना है। इस से उनमे अधिक जीवन शक्ति का सञ्चार होगा। इसकेअतिरिक्त कपास की ऐसी जाति पैदा करना जिसमे अन्य सब गुणों के साथ साथ रोगों का मुकाबला करने को अच्छी ताकत हो। हेरफेर कर फसल बोना, गहरी जुताई करना आदि बातें भी कपास के रोगो के निवारण मे अच्छी सहायक होती हैं। इससे उतरता हुआ उपाय यह है कि रोग लगे हुए पोधों को उखाड़कर जला दिये जावें।

यह उपाय रोग लगने के आरम्भ में करना चाहिये, जिससे यह अधिक न फैल सके।

जो कीड़े देशी कपास को नुक़सान पहुँचाते हैं, वही अमेरिकन कपास को भी नुकसान पहुँचाते हैं। इनमें सूँडी नामक इल्ली सबसे अधिक नुक़सान पहुँचाती है। नीचे लिखी कार्रवाई करने से पौधे को इसके नुक़सान से बहुत कुछ बचा सकते हैं।

(१) शुरू में जैसे ही यह मालूम पड़े कि किसी बोंडी में सूँडी लगी है तो होशियारी से उन सब बोंडियों को, जिनमें सूँडी लगी हो, पौधों पर से तोड लो और फिर सब को इकट्ठा करके दूर फेंक दो, ताकि सूँडी ज्यादा न बढने पावे।

(२) कपास के खेत के आस पास भिंडी न बोओ, क्यों कि यह इल्ली भिंडी को बहुत चाहती है। अतएव ज्यों ही कपास के गूलर तैयार होने लगते हैं, त्यों ही भिंडी को छोड़कर वह कपास पर हमला कर देती है। अगर कपास के आस पास भिंडी के पौधे हों तो उन्हें कपास में फूल आने के पहले ही उखाड़ कर फेंक दो।

(३) पौधों के घने होने के कारण और अच्छी तरह से निराई न होने के कारण भी कीड़े लग जाते हैं।

अमेरिकन कपास के पौधों के पत्तों में एक कीड़ा लगता है जिसे 'पत्ती लिपटौआ' कहते हैं। यह कीड़ा पत्तियों को अपने ऊपर लपेट लेता है और खाजाता है। यह कीड़ा अक्सर देशी

कपास के पौधों की पत्तियो पर भी पाया जाता है। इसे झॉझा भी कहते हैं। जब पत्तियाँ लिपटी हुई दिखाई दे तो फौरन उन सबको तोड़ कर एक टीन के कनस्टर मे—जिसमे कि एक हिस्सा मिट्टी का तेल और तीन हिस्सा पानी हो—डालते जाओ और जब सब कीड़े वाली पत्तियाँ इकट्ठी होजायँ तो दूर लेजाकर फेक दो।

आलू की खेती

आजकल हिन्दुस्थान मे आलू का प्रचार बहुत बढ़ रहा है। लोग इस की साग का बड़ी चाह से खाते हैं। कुछ शताब्दियों पहले लोग इसे जानते भी नहीं थे। इसका मूल उत्पत्ति स्थान अमेरिका है। स्पेन देश के लोगों ने पहले युरोप मे इसका प्रचार किया। इसके बाद यह जर्मनी और आस्ट्रेलिया में पहुँचा। भारतवर्ष में सब से पहले इसकी खेती सूरत नगर में की गई और धीरे धीरे वह अन्य प्रान्तों में भी बोया जाने लगा।

आलू की खेती के लिये उपयुक्त जमीन

यो तो हर एक जाति की जमीन मे आलू पैदा हो सकता है, लेकिन इसके लिये वह जमीन उत्तम है जिस मे पानी का निकास अच्छा होता हो, जिस मे आलू के लिये अधिक पोषक पदार्थ हों तथा जिस मे चूने की कंकरी का भी कुछ भाग हो। लाल मिट्टी वाली भूमि भी आलू के लिये अच्छी समझी जाती है। इससे उतर कर भूरी और पिली मिट्टी वाली भूमि मुफीद मानी गई है। आलू की खेती के लिये नरम जमीन का होना बहुत जरूरी है। जिस खेत की मिट्टी के ढेले हाथ से दबाने पर बिखर जावे, वह आलू की खेती के लिये योग्य होता है, बशर्ते की उसकी जमीन की गहराई काफी हो। जिस जमीन मे पानी भरा रहता है, वह आलू के पौधे के लिये अच्छी नही समझी जाती। काली मिट्टी वाली जमीन भी आलू की खेती के लिये ठीक नही मानी जाती, पर वह सन तथा गोबर के खाद के द्वारा आलू की काश्त के योग्य बनाई जा सकती है। इसी हिकमत से हलकी जमीन भी आलू की खेती के लायक हो सकती है।

आलू के लिये मातब्बर जमीन होनी चाहिये। साथ ही मे वह ६, ७ इञ्च तक खुली होनी चाहिये। खुली से हमारा मतलब जमीन की ऐसी मिट्टी से है जो हाथ मे लेते ही बिखरने लगे। इस जमीन के पास अगर पानी का संचय हो तो और भी अच्छा।

फ़सल का बदलना

आलू के पहले खेत मे जो फ़सल बोई जाती है, उसका आलू की फ़सल पर बहुत असर गिरता है। इसके पहले अगर फलो की जाति की कोई फसल बोई जावे तो आलू की खेती पर उसका खाद सरीखा असर होगा। पर आलू के पहले अक्सर मक्का बोई जाती है। लगे हाथ एक ही खेत मे आलू की फसल दो साल के ऊपर तक बोते जाना ठीक नहीं। ऐसा करने से जमीन मे रोग की जड़ बैठ जाने का धोका रहता है। अगर जमीन मे आलू के रोग की जड़ जम गई तो उसके निवारण के लिये उस खेत मे गेहूँ या मूंगफली की फ़सल बोना लाभदायक है।

खेत की तैयारी

आलू की खेती के लिये गहरी जुताई की बड़ी आवश्यकता है। इससे आलू की खेती पर बड़ा ही अच्छा प्रभाव पड़ता है। गत २५ वर्षों मे जर्मनी ने आलू की खेती मे ८० फी सदी और अमेरिका के संयुक्त देश ने ४० फी सदी उपज बढ़ा ली है। युरोप मे जर्मनी का आलू सब से बढ़िया माना जाता है। इसका कारण यह है कि वहां के किसान बड़ी मेहनत के साथ खेत की जुताई करते हैं। वे अपनी जमीन को नरम और पोली बना कर तथा उसमें उपयुक्त खाद देकर उसे उपजाऊ बनाते हैं, और फिर उसमे आलू की फ़सल बोते हैं। खेती विद्या से जानकारी रखने वाले हमारे पाठक जानते होंगे की आलू के पौधे की जड़ बहुत

गहरी जाती है। देखा गया कि एक खेत में यह जड़ १२ इञ्च तक नीचे गई। दूसरी जगह २४ इञ्च तक गहरी गई। फ्रान्स देश मे गहरी जुताई किये गये एक खेत में यह ७२ इञ्च तक नीचे पहुँच गई। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं कि आलू के लिये गहरी और अच्छी जुताई करना बहुत फायदेमन्द है। कम से कम ६ से ८ इञ्च तक गहरी जुताई करना चाहिये। जुताई के समय जो बड़े बड़े मिट्टी के ढेले जमीन के ऊपर आजावे उन्हें फुड़वा देना चाहिये। जुताई के समय इस बात का भी ख्याल रखना चाहिये कि किसी प्रकार का घास-पात, कांस व खर-पतवार खेत मे न रहने पावे।

बीज।

कहने की आवश्यकता नहीं कि "जैसा बीज वैसा फल" की कहावत जिस प्रकार दूसरी फसलो के लिये लागू है ठीक वैसे ही वह आलूकी फसल के लिये भी लागू है। इसके लिये भी हृष्ट पुष्ट और निरोग बीजो के चुनने की ओर ध्यान देने की बड़ी जरूरत है। हम समझते है कि आलू के बीज मे नीचे लिखे हुए गुणों का होना आवश्यक है।

(१) बीज मे बीमारियो का मुकाबला करने की ताकत हो अर्थात् ऐसी निरोगी जाति का बीज चुना जावे कि जिस पर या तो बीमारी का असर ही न हो और अगर हो भी तो बहुत कम।

(२) बीज मे अधिक से अधिक फसल पैदा करनेकी ताक़त हो।

(३) ऐसे बीज बोने चाहिये जिनके पौधों मे बड़े बड़े और हृष्ट पुष्ट आलू लगे।

(४) जल्दी पकने वाला बीज हो।

बम्बई कृषि विभाग के भूत पूर्व डायरेक्टर डॉक्टर मेन महाशय इटली के आलू के बीजो को बोने के लिये जोर से सिफारिश करते हैं। आपका कथन है कि इटली के बीजो में रोग लगने की सम्भावना नहीं रहती। गुण में भी वह अपनी सानी नहीं रखता। यूरोप के तमाम देशों के आलू से वह श्रेष्ठतर होता है। उसकी अङ्कुरण शक्ति अच्छी होती है। देशी बीजो में भारत की गरम आब हवा के कारण अङ्कुरण शक्ति ठीक नहीं होती। अतएव बीज के लिये इटली के आलुओं को चुनना ही लाभकारक है।

ईसवी सन १९२२ में बम्बई प्रान्त के कृषि-विद्या-विशारद मि० जी० एस० कुलकर्णी लंडन से भारत को लौटते समय इटली के आलुओं की जांच करने के लिये वहाँ की राजधानी रोम नगर गये। आपने जांच पड़ताल करने के बाद जो रिपोर्ट लिखी है, वह मनोरंजक है और उसका संक्षिप्त आशय हम नीचे देते हैं—

"ईसवी सन् १९२२ मे मै रोम पहुँचा और वहाँके ब्रिटिश राजदूत को अपने आने के उद्देश्य की सूचना दी। उन्होंने मुझे 'अन्तर्राष्ट्रीय कृषि-संस्था' (International Institute of Agri-Culture) मे भेजा। यहाँ फसलो के रोगो के लिये एक जुदा विभाग है। मैं उक्त विभाग के अध्यक्ष प्रो० ट्रिचायरो से मिला। वे कृपा कर मुझे उक्त संस्था की विशाल प्रयोगशाल (Labora-

tory) मे लेगये। मैं यह देख कर आश्चर्य-चकित होगया कि इटली मे होनेवाली आलू की फसल फंगस तथा कीटाणुजनित रोगों से मुक्त है। हाँ, इसे कभी कभी ब्लाइट नामक बीमारी होती है जो दवा के छिड़काव से आराम करदी जाती है। यूरोप के अन्य देशों मे आलू की फसल को जो अनेक तरह के रोग लगते हैं उनका इटली मे नामों निशान भी नही है"

"रोम से मै इटली के नेपल्स नगर गया। यह आलू की फसल का केन्द्रस्थल है। यहाँ मै मि० लिटल नामक एक अंग्रेज सज्जन से मिला। ये विशाल पाये पर आलू की खेती करते हैं। इनकी कृपा से मुझे आलू के बहुत से खेत देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और इस सम्बन्ध की बहुतसी जानकारी भी प्राप्त की।"

"नेपल्स से मै पार्टसी नामक एक उपनगर मे गया। यहाँ एक कृषि कॉलेज है। इसके डायरेक्टर प्रो० सायल वेस्ट्री से मिला। उनसे भी मुझे यही मालूम हुआ कि इटली के आलू बहुत सी बीमारियो से मुक्त हैं। हॉ, कोई १२ वर्ष के पहले मिश्र के टमाटो सब्जी के साथ फुनगा (Moth) नामक जीवाणु ने यहाँ प्रवेश पालिया था पर वह तुरन्त नष्ट कर दिया गया"।

श्रीयुत कुलकर्णी महाशय की रिपार्ट से हमने उपरोक्त उद्धरण इस लिये दिया कि हमारे विद्यार्थियो तथा किसानो का दृष्टिकोण विस्तृत हो। उन्हे देश देशान्तरों की खेती और फसल के हाल मालूम हो। वे अपने देश की फसल के सुधार के लिये अन्य देशो की ऊँची जाति के अनाजों का अपनी खेती मे प्रयोग करें

और अगर वे लाभ कारक जँचे तो उनका प्रचार करे। अब वह समय आगया है कि 'कुएँ के मेडक' बनने से काम नही चल-सकता। अन्य राष्ट्रो के साथ हमे उन्नति की घुड़दौड़ मे दौड़ना है। आगे निकलने मे जीवन है और पीछे रहने मे मृत्यु है, यह बात हमे स्वप्न मे भी नहीं भूलना चाहिये।"

कहने का अर्थ यह है कि डॉक्टर मेन महाशय ने बोने के लिये इटली के बीज को काम मे लाने की सलाह दी और मि० कुलकर्णी के प्रत्यक्ष अनुभव भी उनका समर्थन करता है।

इसके अतिरिक्त अनुभव से यह भी पाया गया है कि खेत से ताजा निकाले हुए आलू की गाठो (Tubers) को बोने के काम मे लेने से उनके गल जाने या सड जाने का भय रहता है। इन्हे कुछ मास तक धरती पर छाया मे फैला कर रखना चाहिये। बोरो मे भरने तथा ढेर लगाकर रखने मे उनके बिगड़ जाने का भय रहता है। सुप्रसिद्ध कृषि-विद्या-विशारद डॉक्टर मेन महोदय उक्त बात का समर्थन करते हुए लिखते है,—

"इसके अतिरिक्त एक बात और ध्यान देने योग्य है, वह यह है कि बीज के लिये चुने गये आलुओ को कुछ मास तक पड़े रखना चाहिये। ऐसा करने से उनकी अङ्कुरण शक्ति बढ़ेगी और वे बीज की दृष्टि से अधिक उपयोगी होजावेंगे। ताजे आलू चाहे कितनी ही सावधानी से क्यों न चुने गये हो उनकी अंकुरण शक्ति उन आलुओ के मुकाबले में कम होगी जो कुछ मास से जमा कर रखे गये हैं। आलू का बीज कम से कम दो मास तक

तो रक्खा रहना ही चाहिये। अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि खेत से निकालने के बाद सात मास तक तो आलू की अंकुरण शक्ति बढ़ती रहती है। इसके बाद फिर वह कम पड़ने लगती है।" डॉक्टर महोदय ने इस सम्बन्ध में जो प्रयोग किया था उसकी तालिका नीचे दीजाती है।

बीजों के सञ्चय कर रखने की अवधि	दो सप्ताह में प्रतिशत जितने पौधे अंकुरित हुए उन की संख्या	तीन सप्ताह में प्रतिशत जितने पौधे अंकुरित हुए उनकी संख्या
२ मास	×	×
२॥ ,,	×	२५ प्रतिशत
३ ,,	१५ प्रतिशत	४० ,,
३॥ ,,	४० ,,	७० ,,
४ ,,	५० ,,	८० ,,
४॥ ,,	६० ,,	८५ ,,
५ ,,	७० ,,	९२ ,,
६ ,,	८० ,,	९५ ,,
७ ,,	१०० ,,	१०० ,,
८ ,,	८० ,,	८५ ,,
९ ,,	६० ,,	७० ,,
१२ ,,	४० ,,	६० ,,

जैसा कि ऊपर कहा गया है आलू की फसल की असफलता का एक कारण यह है कि बीजो की उत्पादन शक्ति के ठीक हुए बिना ही वे खेतो मे बो दिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त और भी कारण हैं जिन्हे भुलाने से काम नही चल सकता। कृषि विद्या के जानकार जानते हैं कि फुनगा (Moth) और बँगड़ी नामक दो बीमारियाँ ऐसी हैं जो बहुधा सञ्चय-गृह मे रक्खे हुए बीजो को लग जाया करती हैं। आलू बोनेवाले किसान इन दो भयङ्कर कीड़ों को आलू के बीज तथा फसल के लिए जानी दुश्मन समझते हैं।

समझदार किसानों को चाहिए कि वे खेत मे बीज बोने के पहले उसकी भली भाँति जाँच करा ले और जिन बीजो मे उपरोक्त रोगो के लक्षण दिखाई दे उन्हे कदापि न बोवे। क्योंकि आलू का वह बीज जिसे फुनगा (Potato moth) लगा है कदापि अंकुरित नहीं हो सकता। बँगड़ी (Ring disease) नामक रोग से सताया हुआ बीज अंकुरित भले ही हो जाय, परन्तु उससे उत्पन्न हुआ पौधा अवश्य मर जायगा। साथ ही वह पासवाले अन्य पौधों को भी नुकसान पहुँचायगा। हमने कई बार बोने के लिये तैयार रक्खे हुए बीजों की परीक्षा की गई है और उनमे से अधिकांश बीजो को रोगग्रस्त पाया है।

नीचे हम खेड़ तालुके मे की गई इसी प्रकार की एक परीक्षा का उदाहरण देते हैं। ३८५६ बोये जानेवाले बीजो की जाँच करने पर जो फल निकला वह इस प्रकार है:—

(१) २६६९ अर्थात ६९.२ प्रतिशत बीज अच्छी और बोने योग्य दशा में पाये गये।

(२) २५३ अर्थात ६.६ प्रतिशत बीज बँगडी (Ring disease) रोग से ग्रस्त पाये गये।

(३) २६९ अर्थात ७.७ प्रतिशत बीज फुनगा (Potato moth) से इस प्रकार ग्रस्त पाये गये कि वे अधिक उपयोगी नहीं कहे जा सकते।

(४) १३५ अर्थात ३.५ प्रतिशत बीज फुनगा (Potato moth) से इतने ग्रस्त थे कि वे किसी काम के नहीं रहे।

(५) ३६७ अर्थात् ९.५ प्रतिशत बीज खोखे की बीमारी (Dry rot) से ग्रस्त पाये गये।

(६) १३३ अर्थात् ३.२ प्रतिशत बीज आँखुओं (Eye-buds) से रहित होने के कारण अँकुरित होने योग्य न थे।

उपरोक्त उदाहरणों से पता चलता है कि ७ प्रतिशत बीज उगाये जाने के कदापि योग्य न थे। ६.६ बँगडी (Ring disease) रोग से ग्रस्त थे। इसी भाँति १७ प्रतिशत दूसरे बीज भी रोग अथवा अन्य किसी न किसी कारण से अयोग्य थे। कहने का सारांश यह है कि भारतवर्ष के प्रायः सभी स्थानों में आलू के लिये काम में लाये जानेवाले बीजों का एक तिहाई भाग किसी न किसी कारण से बोने योग्य नहीं रहता और यही कारण है कि उनकी उपज में भी कमी होती है। यह भी देखा गया है कि प्रायः ६१ प्रतिशत किसान ऐसे बीजों को काम में लाते हैं, जिनमें

८० फ़ीसदी से भी कम बीज निरोगी और अंकुरित होने के योग्य होते हैं।

खोखा (Dry rot) नामक रोग के अतिरिक्त आलू को नुक़सान पहुँचानेवाली दूसरी बीमारियाँ, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, फुनगा और बँगड़ी हैं।

फुनगा नामक रोग आलुओं को खेत और गोदाम दोनों स्थानों पर हानि पहुँचाता रहता है। इसमें बहुत सावधानी रखने की आवश्यकता है। इस दुष्ट रोग के प्रभाव में पौधे की अंकुरण शक्ति बिलकुल नष्ट हो जाती है। कृषि विभाग बम्बई का अनुभव है कि यदि आलू के बीजों की आँखुए (Eye buds) निकलने के बाद मिट्टी चढ़ादी जावे तो उपरोक्त रोग पौधों को बहुत कम हानि पहुँचा सकेगा। ऐसा करने से आलू के पौधों की जड़ें दृढ़ होती हैं तथा उन्हें मिट्टी से आहार भी अधिक प्राप्त होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि किसानों को आलू को लगने वाले इस रोग से बहुत सावधान रहना चाहिये। खेड़ ताल्लुके के किसानों का तो यहाँ तक कहना है कि आलू की फसल का १० से १५ प्रतिशत हिस्सा केवल इसी एक रोग के कारण नष्ट हो जाता है।"

बँगड़ी (Ring disease) का रोग यद्यपि साधारणतया उतना हानिकारक नहीं है जितना कि फुनगा, परन्तु यदि समय पर इस रोग से पौधों को बचाने का उपाय न किया गया तो यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि पौधों की अंकुरण शक्ति को

हानि पहुँचानेवाले सब कारणों मे प्रधान कारण यही रोग होगा। किसानो का कहना है कि इस रोग की अधिकता का सबसे खास कारण रोगी और निकम्मे बीजो का उपयोग है। क्योंकि यदि बीज रोगी और निकम्मा है तो पहले तो उसमे अँकुर फूटेगे ही नही और यदि अँकुर फूटे भी तो एक या दो मास बाद पौधा नष्ट हो जायगा। इसलिये बीज चुनते वक्त हमे इस बात पर पूरा ध्यान रखना चाहिये कि बीज किसी रोग मे ग्रस्त तो नही है? नही तो हमारे सारे प्रयत्न व्यर्थ जावेगे।

कई लोग किफायत करने के लिये छोटा बीज बोते हैं। इससे पैदावार कम होती है। हमे यहाँ यह याद रखना चाहिये कि जैसा हम बीज बोवेगे वैसा ही हम फल पावेगे। उत्तम आलू वही है जो बडा, गोल और अण्डे के आकार का होता है। जिस जाति के आलू की आँखे ज्यादा गहरी नही होती और भीतर का गूदा सफेद या मलाई के रंग का होता है, वही उत्तम माना जाता है। पीले गूदे का आलू खराब होता है और उबालने पर चिकना हो जाता है।

बीज का परिमाण

जुदे जुदे प्रान्तों मे आलू की खेती के लिये खेत में बीज डालने की तादाद जुदी जुदी है। कहीं कहीं प्रति एकड १२ मन से पन्द्रह मन तक बीज डालते है। कही इससे कुछ कम डाला जाता है। पर हमारे खयाल में प्रति एकड़ बारह मन बीज ठीक है।

बीज कैसे बोया जाय

बड़े आलू काट कर बोये जाते हैं और छोटे आलू वैसे ही समूचे बोये जाते हैं। हमारी राय में आलू को काट कर लगाना अच्छा है क्योंकि इसमें अगर उन में कोई रोग होगा तो वह दिखलाई पड़ेगा। आलुओं को काटते समय इस बात पर ध्यान रखना जरूरी है कि वे इस तरह काटे जावें कि हर एक टुकड़े पर दो आंखें रहें। हमारे पाठकों ने आलुओं पर आंखों की तरह कुछ गड्ढे देखे होंगे। बस वे ही आलू की आंखें कहलाती हैं। काटे हुए टुकड़ों को चीटियों तथा दूसरे कीड़ों से नुकसान पहुँचने का डर रहता है। इसलिये काटे हुए भाग पर चुने की बुरकी डाल देना चाहिये।

यहां भी यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि एक ही खेत के आलू फिर से उसी खेत में न बोये जावें क्योंकि ऐसा करने से आलू की जाति व पैदावार दोनों में कमी आ जाती है। इसके अतिरिक्त ज्यादा पके हुए आलुओं को बोने के काम में न लाना चाहिये। आलू की गांठों को बोने के पहले यदि उन्हें "फार्मोलिन" के घोल में डुबो कर सुखा लिया जाय तो पौधों को रोग होने की कम सम्भावना रहेगी।

बोनी की तरकीब

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं आलू की खेती के लिये गहरी जुताई की आवश्यकता है। इसमें कम से कम सात आठ

इञ्च की गहरी जुताई होना चाहिये। जुताई के समय जो बड़े बड़े ढेले ऊपर आवे उन्हे फुड़वा देना चाहिये। खेत की मिट्टी को भुरभुरी और मुलायम कर देना चाहिये। इसके अतिरिक्त जमीन को सात इञ्च तक खुली रखना चाहिये, जिस से उस में वायु का प्रवेश होता रहे। इसके बाद हल का पट्टियां लगा कर पन्द्रह से अठारह इञ्च के फासले मे या ने दो बिलास के फ़ासले से चांस निकालना चाहिये। इसके साथ ही खेत को पानी देने के लिये बीस फूट पर एक आड़े पाट का निकालना जरूरी है।

खेत मे बनाये हुए उक्त चाँसो मे विधि पूर्वक काटे हुए आलू के टुकड़े डालकर उन पर मिट्टी छोड़ना चाहिये। मिट्टी छोडने के बाद पानी देना चाहिये। आलू के टुकड़े छ से लगाकर बाहर इञ्च के फासले से लगाये जाने चाहिये। पानी छोड़ने के बाद बीज पर मिट्टी की पपड़ी जम जाती है। इसलिये यह आवश्यक है कि चाँस के बीच मे जो पाल आती है उसे हल डालना चाहिये। ऐसा करने का परिणाम यह होगा कि पाल की जगह चाँस और चाँस की जगह पाल हो जायगी। पीछे इस चाँस मे पानी देना चाहिये वह भी इतना हो कि वह पाल के सिरे तक नहीं पहुँच सके।

बीज के आलू चाँस मे चार इञ्च से कम गहरे नही डालना चाहिये। बीज के कम गहरे डालने से उत्पन्न कम होती है। अच्छी जुताई और कमाई हुई जमीन मे चार इञ्च से ज्यादा गहरा बीज डालने से पैदायश ज्यादा होती है।

खाद ।

हमने पहले लिखा है कि ढोरों के मल मूत्र और गोबर से तैयार किया हुआ कम्पास्ट खाद कई फसलों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। आलू की फसल के लिये भी इस खाद को हम बड़े जोरों से सिफारिस करते हैं। प्रति एकड़ १५ से २० गाडी तक खाद देना काफी होगा। मनुष्य के विष्टा का यथा विधि बनाया हुआ खाद भी आलू की फसल के लिये बहुत मुफीद होता है। कुछ कृत्रिम खाद भी इसके लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं, पर भारतवर्ष के किसानों की स्थिति ऐसी नहीं है कि वे इन कीमती खादों का उपयोग कर सकें। इसलिये हम यहां के किसानों के लिये ढोरों के गोबर, मल-मूत्र तथा अन्य कूड़ा-करकट से बनाया हुआ कम्पोस्ट खाद ही के उपयोग पर ज्यादा जोर देते हैं। आगे चल कर हम इस फसल के लिये अलग-अलग प्रयोग क्षेत्रों पर जिन-जिन खादों का उपयोग हुआ है और उन से जो जो नतीजे निकले हैं उन पर भी कुछ लिखेंगे, पर हमारा जोर गोबर तथा मनुष्य के विष्ठा के खाद ही पर रहेगा जो किसानों के लिये बहुत ही सुलभ है। हमारी राय में जुताई शुरू करने के पहले खेत में १५ या २० गाडी विधि-पूवक तैयार किये हुए कम्पोस्ट खाद को डाल देना चाहिये। अगर यह न मिल सके तो सड़े हुए गोबर के खाद की इतनी ही गाड़ियां डलवा देना चाहिये। बम्बई प्रान्त के कुछ जिलों में किसानों ने अपनी

आलू की फसल पर गोबर के खाद के सफल प्रयोग किये हैं, उनका उल्लेख डॉक्टर मेन साहब ने Further investigations on Potato Cultivation in Western India" नामक पुस्तक मे किया है। हम उसका अनुवाद नीचे देते है।

"खेड़ के अच्छे किसान प्रति एकड़ १२ गाड़ी गोबर का खाद देते हैं। इसके सिवाय वे आलू के खेत मे काफी संख्या मे भेड़ों को छोड़ते है जिससे उनकी मींगनियां भी खाद के काम मे आ सकें। इस प्रकार के खाद के देने से आलू की फसल मे बहुत बड़ा फायदा हुआ है। इसके कई उदाहरण हमारी नजरों के सामने है।

(क) "खेड जिले के पेठ नामक ग्राम के एक किसान ने ई० स० १९१७ मे आलू के खेत मे प्रति एकड़ १२ गाड़ी गोबर का खाद डाला और उसे जमीन मे अच्छी तरह मिला दिया। इसके बाद उसने उसी खेत मे ५०० भेडे चार दिन तक रक्खी। इसका नतीजा यह निकला कि उक्त खेत मे प्रति एकड़ ११८४५ पौंड (१४८ मन ढाई सेर) आलू की फसल हुई। यह बात खरीफ फसल की है।

(ख) ईसवी सन १९१७ पेठ के एक दूसरे किसान ने आलू के खेत मे प्रति एकड़ १२ गाड़ी गोबर का खाद डाला और उसे ज़मीन में खूब अच्छी तरह मिला दिया। इसने खेत मे भेड़ें नहीं बिठाई। नतीजा यह हुआ कि उसे प्रति एकड़ ६४६० पौंड (८० मन ३० सेर) आलू की फसल प्राप्त हुई। यह हाल रब्बी की फसल का है।

(ग) ओसरा ग्राम के एक किसान ने प्रति एकड़ १६ गाड़ी गोबर का खाद दिया और सदा की तरह उसे जमीन में मिला दिया। इससे एकड़ के पीछे १००८० पौंड (१२६ मन) फसल पैदा हुई। यहां यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि जिस खेत में यह फसल बोई गई थी वह अपनी उपजाऊ शक्ति के लिये अच्छा प्रसिद्ध था।

(घ) मनचर नामक ग्राम में एक किसान ने रब्बी की फसल में १७ गाड़ी फी एकड़ खाद डाला तो उस खेत में फी एकड़ १२० मन २१ सेर फसल पैदा हुई।

मामूली तौर से उपरोक्त खेतों की उपज अच्छी कही जा सकती है। पर इसमें भी ज्यादा उपज खास तौर से रब्बी की फसल में हो सकती है। एक समय मनसर में इस बात के लिये इनाम निकाला गया कि जो कोई अपने खेत में आलू की सबसे अधिक फसल पैदा करेगा उसे यह इनाम दिया जायगा। एक किसान ने अपने खेत में २४ गाड़ी गोबर का खाद डाला। इसका फसल पर बहुत अच्छा असर गिरा। आप सुनकर आश्चर्य करेंगे कि उसके खेत फी एकड़ १९६ मन १० सेर फसल पैदा हुई। इस जिले में यह सब से अधिक उपज थी। जो लोग साधारण तौर से खेती करते हैं, उन्हें बहुत ही कम उपज मिलती है। लोगों का अन्दाज है कि साधारण तौर पर इससे आधी भी फसल पैदा नहीं होती।

हमने ई० स० १९१३ और १४ में कृत्रिम खादों के तजुर्बे भी

किये। खाद देने का तरीका इस प्रकार रक्खा गया। पहले खेत में प्रति एकड़ १००० पौंड से १२०० पौंड तक गोबरका खाद बिछाया गया और उसके साथ ही सल्फेट आफ अमोनिया १२० पौंड, और सुपर फास्फेट २८० पौंड का मिश्रण तैयार कर खेतमें डाला गया। खाद का यह प्रयोग इ० स० १९१४ की रब्बी की फसल में किया गया था। यहाँ यह ध्यान मे रखना चाहिये कि कृत्रिम खाद का मिश्रण फसल के पौधे लगने के कुछ ही पहले दिया गया था। इसके साथ ही दूसरे खेत मे ऊपर बतलाये हुए परिमाण में केवल गोबर का खाद दिया गया और तीसरे मे गोबर के खाद के साथ सुपर फास्फेट व सल्फेट आफ अमोनिया का खाद दिया गया। इन तीनो खेतों में नीचे बतलाये मुताबिक उपज हुई —

खेत नम्बर	खाद का किस्म	फी एकड़ उपज (पौंड में)
१	२	३
१	गोबर का खाद व ऊपर बतलाये हुए सब कृत्रिम खाद	१४,९१२
२	गोबर का खाद	९,१४६
३	गोबर का खाद, सुपर-फास्फेट व सल्फेट आफ अमोनिया	१२६२०

इससे यह साफ जाहिर होता है कि देशी खाद के साथ कृत्रिम खाद का उपयोग करने से फसल की पैदावार काफी तौर से बढ़ती है।

पिछले साल के तजुर्बों ने भी हमारी उपरोक्त बात की पुष्टि की है। एक बात और प्रगट हुई है और वह यह है कि अगर कृत्रिम खादों में से सल्फेट ऑफ पोटाश कम कर दिया जावे तो उसके उपज में बहुत अधिक हानि नहीं होती। नीचे लिखे हुए अंकों से यह बात साबित होगी।

नं०	खाद (प्रति एकड़) की किस्म	उपज प्रति एकड़ पौंड में
१	२	३
१	केवल गोबर का खाद	१८,९३०
२	गोबर का खाद व ऊपर बताये हुए कृत्रिम खाद व १५० पौंड सल्फेट	९१४६
३	गोबर का खाद कृत्रिम खाद व ११२ पौंड सल्फेट ऑफ पोटस	१०३६७

खेत नं० २ व ३ की उपज की तुलना करने से यह बात सिद्ध होती है कि पोटाश का खाद कम कर देने से उपज में थोड़े परिमाण में कमी होती है। दूसरे कई तजुर्बों से यह भी

मालूम होता है कि आलू के खाद्य की दृष्टि से सल्फेट आफ अमोनिया नाइट्रेट आफ सोडा की अपेक्षा अधिक उपयोगी है। उदाहरण के लिये तीन खेतों में नीचे बतलाये मुताबिक खाद दिया गया तो उपज मे काफी परिवर्तन दिखलाई दिया—

नं०	खाद	उपज प्रति एकड़ (पौंड में)
१	२	३
१	गोबर का खाद	९८७५
२	गोबर का खाद, सल्फेट आफ पोटाश १५० पौंड, सुपर फास्फेट ११२ पौंड, व सल्फेट अमोनिया १२० पौंड	१५६९९
३	गोबर का खाद, सल्फेट ऑफ पोटास १५० पौंड सुपर फास्फेट ११२ पौंड व नायट्रेट आफ सोडा	१३८६६

ऊपर बतलाये हुए नतीजो से हम इस निर्णन पर पहुँचते हैं कि आलू की फसल को फी एकड़ नीचे बतलाये मुताबिक कृत्रिम खाद देना अच्छा फायदेमन्द होता है—

सल्फेट आफ पोटाश .... १५० पौंड
सुपर फास्फेट .... ११२ पौंड
सल्फेट आफ अमोनिया .... १२० पौंड

यदि नायट्रेट आफ सोडा कम कीमत मे मिल सकता हो तो सल्फेट आफ अमोनिया की जगह उसका उपयोग करने मे कोई हर्ज नहीं है। पर इससे यह न समझ लेना चाहिये कि उस में भी सल्फेट ऑफ अमोनिया के बराबर नाइट्रोजन रहता है।

अन्त मे हम यह भी कह देना ठीक समझते है कि कृत्रिम खाद का मिश्रण गोबर के खाद के साथ जमीन मे मिला देने से बहुत ज्यादा उपज होते हुए देखी गई है। एक समय खेत मे आलू की सब से ज्यादा फसल पैदा करने के लिये इनाम रखा गया था। उस वर्ष दो किसानो ने जिस तरह अपने खेतो मे खाद दिया तथा उन्हे जितनी उपज प्राप्त हुई उसे हम निम्न कोष्टक मे देते हैं —

खे० नं	खाद का परिमाण	उपज फी एकड़ (पौंड में
१	२	३
१	गोबर का खाद २०००० पौंड	१५७००
२	गोबर का खाद १३००० पौं०, व २०० पौंड ऊपर बतलाये हुए कृत्रिम खाद ो का मिश्रण	१५३२४

इससे यह भी पता लगता है कि गोबर के खाद की मात्रा कुछ कम करके कृत्रिम खाद से उसकी पूर्ति कर देने से भी काम चल सकता है।"

खाद के विषय में अन्य कृषि-विद्या विशारदों के मत

वर्दमान क कृषि-प्रयोग क्षेत्र में इस बात की परीक्षा के लिये प्रयोग किये गये कि गाय का गोबर, अरंडी की खली और हड्डी का चूरा, इन तीनों खादों में से कौन सा खाद आलू की फ़सल पर सब से अच्छा प्रभाव डालता है। इस सम्बन्ध मे जो नतीजे निकले उनसे मालूम हुआ कि अरंडी की खली का खाद, गाय के गोबर और हड्डी के चूरे के खाद से अधिक लाभदायक है। नीचे दी हुई तालिका से इस बात का पता चलेगा:—

	उपज प्रति एकड़ सेरों में				
खाद का परिणाम	१८९४-९५	१८९५-९६	१८९६-९७	१८९७-९८	१८९८-९९
१	२	३	४	५	६
गोबर का खाद १२० मन	९११५	९९०६	९३६६	९६६०	१०३८३
अरंडी की खली का खाद ३६ मन	७६६३	९३४८	१००२०	१०५९९	११३८८
हड्डी का चूरा १२ मन	५४६८॥	८२४४	९१०८	९३४८	१०२९६
जिसमें कुछ भी खाद न दिया गया	२९६२॥	२५०२	३४४४	२१६०	२०८८

बंगाल के भूतपूर्व डायरेक्टर ऑफ एग्रीकल्चर मि० डी० एल० राय, एम० ए०, एम० आर० ए० एस० अपने क्राप्स ऑफ बंगाल (Crops of Bengal) नामक ग्रन्थ में लिखते हैं:—

"निम्न लिखित खाद का मिश्रण आलू की खेती के लिये अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ है —

गाय का गोबर	३०० मन	प्रतिएकड़
राख	१०० मन	
हड्डी का चूरा	१२ मन	
अरंडी की खली	६ मन	

इसमे जो गोबर दिया जावे वह बिलकुल सड़ी हुई हालत में होना चाहिये। अच्छा हो अगर हमारे किसान भाई इसी पुस्तक के किसी गत अध्याय मे बताए हुये तरीके पर गड्ढे मे गोबर का खाद तैयार कर उसे काम मे लावे। उपरोक्त खादो में से हड्डी के चूरे का खाद पहली जुताई के वक्त डालना चाहिये। राख आखिरी जुताई के समय देना चाहिये और अरंडी की खली का खाद आधा तो पौधे लगाते समय देना चाहिये और आधी मिट्टी चढ़ाते समय।"

बंगाल के सुप्रसिद्ध कृषि-विद्या-विशारद स्वर्गीय बाबू नित्य-गोपाल मुकर्जी एम० ए० ने अपने हेण्ड बुक आफ इन्डियन एग्री-कल्चर (Hand-book of Indian Agriculture) नामक ग्रन्थ में लिखा है—

"गाय के गोबर का खाद जमीन की तैयारी के वक्त देना चाहिये। हड्डी के चूरे में गन्धक का तेजाब मिला कर उसे सुपर फास्फेट मे परिणित कर लेना चाहिये और बीज बोने के बाद उसे खाद के काम में लाना चाहिये। केवल हड्डी के चूरे से आलू की फसल को ज्यादा लाभ नहीं होता क्यों कि यह घुलन शील पदार्थ नहीं है। नीचे दिये हुए पदार्थों के खाद आलू के लिये बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुए हैं।

(१) ६ मन प्रति एकड़ बोन सुपर फास्फेट, १८ मन प्रति-एकड़ अरण्डी की खली का चूरा। यह खाद बीजारोपण के पश्चात् दिया जाना चाहिये।

(२) ४०० मन सड़े हुए गोबर का खाद, १५ मन राख अथवा चूना, १५ मन अरण्डी की खली का खाद—पहला यानी गोबर का खाद बीजारोपण के पूर्व दिया जावे और दूसरे दो अर्थात् राख, चूना और अरण्डी की खली के खाद बीजारोपण के अनन्तर दिये जावें।

अन्य अनुभूत प्रयोग

भिन्न २ मिश्रित खाद

१

गोबर का खाद	२०० मन	प्रति बीघा
राख	२५ मन	
हड्डी के चूरे का खाद	२ मन	
अरंडी की खली का खाद	२ मन	

इन सबको मिलाकर एक बीघे में देने से आलू की उपज बहुत अच्छी होती है।

२

निम्न लिखित खाद भी आलू के लिये लाभदायक हैं:—

१	हड्डी का चूरा	२ मन	प्रति बीघा
	अरंडी की खली	३ मन	
२	गोबर का खाद	१५० मन	प्रति बीघा
	अरंड की खली	३ मन	
३	गोबर का खाद	२०० मन	प्रति बीघा
	हड्डी का चूरा	३ मन	

३

कृषि-विभाग बम्बई नीचे लिखे खाद को आलू के लिये लाभदायक बताता है:—

सल्फेट ऑफ पोटश	१५० पौंड	
एमोनिया सल्फेट	१०८ पौंड	
सुपर फास्फेट	११२ पौंड	प्रति बीघा

आलू और पोटाश

जिस जमीन में पोटाश का अंश अधिक रहता है, उसमे आलू की पैदायश बहुत अच्छी होती है। प्रोफेसर स्केन डेविड अपने "Potash manuring on good Soils' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं—

"अन्य पौधों की अपेक्षा आलू के पौधे को पोटाश की सबसे अधिक आवश्यकता रहती है। जिस जमीन मे पोटाश का अंश कम रहता है उसमे इसकी फसल अच्छी तरह नहीं फलती फूलती। जिस जमीन में आलू बोये जायँ उसमे पोटाश-जनित खाद देने की बड़ी आवश्यकता है। जमीन मे पोटाश द्रव्य पहुँचाने से आलू की उपज मे आश्चर्यजनक उन्नति दिखाई दी है। जिस गोबर में खाद्य-द्रव्य का विशेष अंश नहीं है अथवा जो मूत्र से परिपूरित नहीं है उसका खाद देने से विशेष लाभ नहीं होता। ऐसे समय में जमीन में पोटाश-जनित खाद देने की आवश्यकता है। मतलब यह है कि अगर किसी जमीन मे पोटाश की कमी है तो कृत्रिम या नैसर्गिक खादों के द्वारा उस कमी को पूरी करने को कोशिश करनी चाहिये"।

अन्य स्थानों के अनुभव

आसाम की ई० सन् १९०५ की लेण्ड रिकार्ड विभाग को रिपोर्ट मे लिखा है कि प्रति एकड़ २० मन सरसों की खली का खाद देने से ११३ मन १३ सेर आलू प्रति बीघा पैदा हुआ।

कानपुर कृषि प्रयोग क्षेत्र की ई० सन् १९०३ की रिपोर्ट से मालूम होता है कि खूब सड़ा हुआ और ढोरों के पेशाब मे लबालब गोबर का खाद देने से आलू की फसल में अच्छी उन्नति दिखाई दी। सन १९१३ प्रतापगढ़ के सरकारी फार्म पर आलू

के बीजों पर नीम की खली तीस मन प्रति एकड़ के हिसाब से दी गई तो निम्नलिखित परिणाम निकला—

आलू की जाति	उपज प्रति एकड़
फलुआ फ़र्रुखाबाद	२१३ मन
दार्जिलिंग	८८ मन
प्रतापगढ़ का सफेद छोटा आलू	४४ मन
मद्रासी आलू	६३ मन
कटुवा छोटा	३१ मन

इसी प्रकार ई० सन् १९१५ में प्रतापगढ़ के सरकारी फ़ार्म पर नीम की खली प्रति एकड़ दस मन देने से २९२॥।≡)॥ दो सौ ब्यानवे रुपये साढ़े पन्द्रह आने के आलू उत्पन्न हुए। इसमें पचपन रुपये ढाई आने खर्च होकर २३७॥।–) दो सौ सैंतीस रुपये तेरह आने प्रति एकड़ लाभ हुआ। कानपुर के सरकारी फ़ार्म में नीम की खली के खाद और दूसरी किस्म के खादों का आलू

की खेती पर अनुभव किया गया तो परिणाम निम्नलिखित हुआ—

खाद की किस्म	खाद का परिमाण प्रति एकड़	उपज प्रति एकड़ (मनों में)		
		१९०४-१९०५	१९०५-१९०६	१९०६-१९०७
नीम की खली	४०॥ मन	७४	१०४	२०१
कपास का फुजला	२७७ मन	८५	८४॥	१२०
मैले का खाद	७१७ मन	५१॥	८७	१०४
बिना खाद	.. ..	४४	४३	४५

हमने ऊपर आलू में दिये जाने वाले विविध खादों का विस्तृत विवेचन किया है। साथ ही मे इस सम्बन्ध में कृषि-विद्या विशारदों को जो अनुभव हुए हैं उन पर भी प्रकाश डाला है। हम अब आलू की खेती के दूसरे पहलुओं पर विचार करना चाहते हैं।

सिंचाई

आलू की काश्त मे पानी की बड़ी जरूरत होती है। यदि फसल को पानी उचित समय पर और उचित अंश मे मिल जाता है तो पैदावार बहुत अच्छी होती है। आबपाशी ऐसी होनी चाहिये कि न तो खेत मे पानी भरा रहे और न कभी वह सूखा पड़ा रहे। यदि

किसी स्थान पर पानी अधिक भर जाय तो नालिया द्वारा उसे निकाल देना चाहिये।

निंदाई या गुड़ाई

जिस प्रकार दूसरी फसलों को खर-पतवार व घास-पात से बचाने की आवश्यकता होती है उसी प्रकार आलू के खेत को भी होती है। आलू लगाने के बाद एक महीने के अन्दर पहली निंदाई करना। बाद में आवश्यकतानुसार निंदाई करते रहना चाहिये। निंदाई द्वारा खेत साफ रखने से कीड़ों का डर कम हो जाता है, और आलू के झाड़ जोरदार हो जाते हैं।

निंदाई की तरह आलू की फसल को गुड़ाई की भी बहुत जरूरत है। गुड़ाई से हमारा मतलब पौधों पर मिट्टी चढ़ाने से है। जब पौधे ६, ७ इंच के हो जायँ तो उन पर मिट्टी चढ़ाना चाहिये। इसके बाद सिंचाई कर देना चाहिये। इसी प्रकार तीन बार मिट्टी चढ़ाना चाहिये। आलू की गाँठे भूमि के ऊपर लगती है। इसलिये यदि उनको प्रखर वायु या तेज पकाश से न बचाया गया तो उनमे खराबी पैदा हो जाती है। अतएव आलू के लिये गुड़ाई की व्यवस्था अनिवार्य है।

गाँठों की खुदाई या बिनाई

आलू की फसल ४, ५ मास मे पूरी हो जाती है। जब पौधों की पत्तियाँ पीली पड़ने व मुरझाने लगें, तब समझ लेना चाहिये कि आलू की गाँठे तैयार हो गईं। इस समय

सिचाई का काम बन्द कर देना चाहिये। जब जमीन सूख जावे तब उसकी पालियों को, जिनके अन्दर गाँठे भरी रहती हैं, खुरपों या फावड़े से पोली कर उनमें से गाँठों को ऊपर उठा लेना चाहिये। इसके पश्चात् बिनाई का काम शुरू कर देना चाहिये। यह काम बड़ी सावधानी के साथ करना चाहिये, क्योंकि यह बड़ा महत्वपूर्ण काम है और इसमे खर्च भी ज्यादा लगता है।

गाँठों के ऊपर की पत्तियो को काट कर मवेशियों को खिला देना चाहिये। जब सब गाँठें बीनी जावें तब उनकी छँटनी कर लेना चाहिये। अर्थात् बड़ी बड़ी गाँठें एक तरफ, मँझली दूसरी तरफ और छोटी छोटी अलग। इनमें से बड़ी गाँठों को बेच देना चाहिये। छोटी छोटी गाँठों को खाने के अथवा चारे के उपयोग में लेना चाहिये।

विशेष वक्तव्य

आलू की काश्त करनेवाले कृषको को नीचे की बाते सदैव ध्यान में रखना चाहिये।

(१) बोने के लिये खेत को खूब गहरा जोतकर तथा उम्दा खाद देकर तैयार करना चाहिये।

(२) प्रति वर्ष खोदते समय बीज के लिये अच्छे बीज चुन लेना चाहिये। ये बीज बहुत बड़े तथा बहुत छोटे नहीं होने चाहिये।

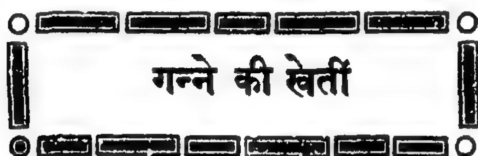
(३) यदि बोने के लिये आलू बड़ा हो तो उसको काटकर बोना चाहिये और कटे हुए प्रत्येक टुकड़े में दो या तीन आँखों से

अधिक नहीं रखना चाहिये। इन कटे हुए टुकड़ों पर चूने की बुकनी डाल देनी चाहिये ताकि इनका रस न निकलने पावे और कटा हुआ भाग सख्त होजाय।

(४) बोने से पहले आलू को तूतिया या चूने के पानी में भिगो लेना चाहिये। ऐसा करने से फ़सल को बीमारी न होगी।

(५) सदैव भुरभुरी मिट्टी रखना चाहिये।

(६) खेत में कभी भरा हुआ पानी न रखना चाहिये।



गन्ने की खेती

हिन्दुस्थान मे इस समय लगभग २॥ करोड़ एकड़ क्षेत्रफल मे गन्ना बोया जाता है। पर इतनी खेती से भारत की शक्कर सम्बन्धी आवश्यकता पूरी नहीं होती। इस देश को हर साल करोड़ो रुपयो की शक्कर दूसरे देशो से मंगवाना पड़ती है। इसका बहुत सा भाग जावा से आता है। रही सही आवश्यकता को मारिशास और आस्ट्रिया हँगरी पूरी करते हैं। हिन्दुस्थान में शक्कर के उद्योग को बढ़ाने का बहुत बड़ा क्षेत्र पड़ा हुआ है। अगर इसी देश मे यहाँ की जरूरत के मुताबिक़ ही शक्कर पैदा करली जाय तो देश की आर्थिक अवस्था पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ सकता है। लाखों आदमियों को रोज़ी मिल सकती है। व्यापार में पड़ी चहल पहल पैदा हो सकती है। किसानों की

दशा हरी भरी को जा सकती है। पर इस उद्योग को बढ़ाने के लिये—उसमें नई जिन्दगी डालने के लिये—गन्ने की खेती को बढ़ाना तथा उसमें योग्य सुधार करना आवश्यक है।

यद्यपि यहाँ गन्ने की खेती होती है, पर उसका रंग ढंग ठीक नहीं है। हमारे अपढ़ किसान 'बाबा आदम' के ज़माने के तरीकों से काम लेते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि गन्ना की उपज भी कम होती है और उसमें शक्कर का हिस्सा भी कम रहता है। अब तो हमे इसकी खेती मे क्रान्ति करने की जरूरत है। हमे इस बात के प्रयत्न करने चाहिये जिससे प्रति एकड़ गन्ना की उपज और रस की औसत मे जहाँ बढ़ती हो वहाँ उसके पैदा करने का खर्च भी कम पड़े। यह बात दो हालतों में मुमकिन हो सकती है। एक तो आजकल पैदा किये जाने वाले गन्ने की अपेक्षा ज्यादा अच्छी जाति का गन्ना पैदा किया जावे। दूसरी यह कि गन्ने की खेती सुधरी हुई रीतियों से की जाय। इसके लिये ऐसी जाति के गन्ने की जरूरत होगी जिसकी जड़ें ज्यादा बढ़ने वाली हों, जिसमे बीमारी कम लगे, जिसमें रस की औसत तो बढ़ती जाय और डंठल की कम होती जाय। इसके साथ ही साथ इसके रस से बढ़िया दर्जे का गुड़ आसानी से बन सके। इसके बाद गन्ने की ज्यादा उन्नति पेलने की मामूली रीतियों में सुधार करने से हो सकती है। पेलने मे उन्नति करने का काम बैल और भैंसों के बदले तेल से चलनेवाले इञ्जिनों से ज्यादा सम्भव हो सकता है। भारत सरकार ने शक्कर के उद्योग के सम्बन्ध में

जाँच करने के लिये एक कमेटी कायम की थी। उसका नाम शुगर (शक्कर) कमेटी था। उसने अपनी रिपोर्ट में इन सब बातों का बड़ा ही अच्छा खाका खींचा है। जो सज्जन इस सम्बन्ध मे अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहे उन्हें हम उक्त रिपोर्ट पढ़ने की सिफारिश करते हैं।

सुधरी हुई पद्धति से उपज में वृद्धि

जावा प्रभृति देशो में सुधरी हुई पद्धति से खेती करने के कारण गन्ना की पैदावार मे बहुत ही अच्छी वृद्धि हुई है। भारतवर्ष मे फी एकड़ शक्कर की औसत उपज १ टन (लगभग २८ मन), क्यूबा मे २ टन, जावा मे ४ टन से कुछ अधिक और हवाई टापू मे ४॥ टन है। इससे पाठक समझ सकते है कि सुधरी हुई पद्धति के कारण जहाँ भारतवर्ष मे एक एकड़ में पैदा होने वाले गन्ने मे शक्कर का औसत एक टन पड़ती है, वहाँ जावा मे चार टन पड़ती है। भारत मे भी जहाँ जहाँ सुधरी हुई पद्धति से खेती की गई है वहाँ वहाँ पैदावार मे अच्छी वृद्धि हुई है। शाहजहांपुर में प्रति एकड़ १०० पौंड नाईट्रोजन मिश्रित वनस्पतिक खाद देने से गन्ने की उपज पहले की अपेक्षा लगभग तिगुनी हो गई। पूना के पास माँजरी नामक फार्म पर इतना वनस्पतिक खाद दिया गया जिसमे ७५ पौंड नाइट्रोजन था। इससे वहाँ की गन्ने की पैदावार दूनी से ऊपर होगई। खाद के अतिरिक्त उक्त दोनों स्थानों के खेतों में पानी के निकास और भूमि में वायु पहुँचाने का भी उचित प्रबन्ध किया गया था।

गन्ने के लिये भूमि

वैसे तो गन्ने की खेती हर किस्म की जमीन में की जा सकती है, पर लाल रंग की मटियार भूमि उसके लिये सर्वोत्तम मानी गई है। अगर यह जमीन किसी नदी, नाले या तालाब के पास हो तो और भी अच्छा। इसका कारण यह है कि गन्ने को पानी की ज्यादा जरूरत रहती है। सुप्रसिद्ध कृषि-विद्या-विशारद मि० नित्यगोपाल मुकर्जी ने अपने भारतीय कृषि ग्रन्थ (Hand Book of Indian Agriculture) मे लिखा है कि गन्ने के लिये ऐसी जमीन चुनना चाहिये, जिसके नजदीक पानी का अच्छा संचय हो। इसके साथ ही साथ जिस भूमि मे फॉसफ़रस का अधिक अंश हो, वह गन्ने की खेती के लिये बहुत ही अच्छी मानी गई है। बरद्वान, वीर भूम, मुर्शिदाबाद आदि स्थानो मे गन्ने की अच्छी फसल आती है। जांच करने से मालूम हुआ है कि यद्यपि इन स्थानों को भूमि हलके दर्जे की है, पर उनमें फॉसफरस का ज्यादा अंश होने से गन्ने की अधिक पैदावार होती है। युरोप और अमेरिका के किसान गन्ने की खेती के लिये उस जमीन को पसन्द करते हैं, जिस मे फॉस्फेट का ज्यादा हिस्सा होता है।

कोई-कोई सज्जन दुमट भूमि को भी गन्ने की खेती के लिये अच्छी समझते हैं।

काली जमीन

मालवा मे गन्ने की खेती अकसर काली जमीन में की जाती है। कृषि-शास्त्र के कुछ विद्वानों ने गन्ने की खेती लिये इस जमीन की उपयोगिता को भी स्वीकार किया है। बम्बई सरकार ने गन्ने की खेती पर अंग्रेजी मे एक पुस्तिका प्रकाशित की है। उसमें लिखा है—

"गन्ने के लिये गहरी उपजाऊ और भुरभुरी जमीन की जरूरत होती है। इसके लिये सब से उम्दा जमीन दो से छः फीट तक की गहराई वाली काली भूमि होती है। इस प्रकार की जमीन में ऊपर मुरुम का हिस्सा होना चाहिये। छिछली और हलकी मुरुम की जमीन मे बार २ पानी देने की जरूरत होती है और गर्मी के दिनों मे अगर पानी की कमी पड़ गई तो फसल को बहुत ज्यादा नुकसान होता है। हलकी जमीन मे गन्ना बहुत ऊँचा नहीं बढ़ता और इसलिये उसकी ऊपज बहुत कम होती है। पर इस प्रकार की जमीन के गन्नो का गुड़ कई दिनों तक टिकता है और वह ऊँची जाति का होता है। गहरी काली जमीनों में पानी ज्यादा दिनों तक टिकता है। इन्हें भुरभुरी बनाये रखने के लिये गोबर का सड़ा हुआ खाद, हरी खाद आदि भारी खादों की जरूरत होती है। इस प्रकार की जमीनो मे प्राकृतिक रूप से गन्ना अच्छा बढ़ता है, पर यदि इस जाति की जमीन में पानी ज्यादा गिर गया, तो गन्ने को बीमारी लग जाने का डर रहता है। कछार की जमीनें

सांटे की खेती के लिये अच्छी होती हैं और इनमें फ़सल बहुत दिनों तक टिकती है"।

बोने की तरकीब

हम पहले कह चुके हैं कि अब हमे कृषि की पद्धति में उन्नति करने की जरूरत है। गन्ने की खेती में जावा आदर्श है। उसने इस सम्बन्ध मे बड़ी तरक्की की है। गन्ने की खेती में हमें उस देश से सबक लेने की जरूरत है। वहां पानी का निकास बहुत अच्छे ढङ्ग पर किया जाता है। नालियां बना कर उनमें गन्ने बोये जाते हैं और बाद मे ठीक समय पर उनमें मिट्टी चढ़ाई जाती है। सिंचाई सिर्फ इतनी की जाती है, जितनी कि गन्ने की फ़सल को जरूरत होती है। वहां पानी का दुरुपयोग नहीं किया जाता। इससे वहां इसकी जड़ों को बहुत अधिक हवा मिलती है। इससे जमीन मे नाईट्रोजन इकट्ठा करने वाले कीटाणुओं को बड़ा उत्तेजन मिलता है। वे अपना काम ज्यादा जोर से करने लगते हैं। इससे जमीन की उपज शक्ति बढ़ती है। यह तो हुआ साधारण सिद्धान्त। अब हम यहां जावा की पद्धति के अनुसार गन्ने की खेती की तरकीब लिखते हैं।

जिस जमीन मे गन्ना बोना हो उसमे पहले सन (सनई) बो देना चाहिये। इसके बोने का सब से अच्छा तरीका यह है कि जिस दिन पहला पानी बरसे उस दिन फी एकड़ सवा या डेढ़ मन सन का बीज खेत में छिड़क दिया जाय।

बाद में देशी हलसे हलकी सी जुताई कर देना चाहिये, जिस से कि बीज जमीन के अन्दर आधा अंगुल दब जावे। बस बीज अपने आप उग आयगा। पानी देने अथवा निदाई गुड़ाई करने की जरूरत नहीं। बीज बोने के ५० से ६० दिन बाद इसकी फ़सल को खेत के अन्दर जोत डालना चाहिये। हां, यहां इस बात का खयाल रखना जरूरी है कि इसकी फसल के फूल न आने लगें और इसका तना कडा न हो जाय। जोतने के पहले खेत मे बेलन या हेगा (पाटा) चला देना चाहिये जिस से कि फ़सल लेट जाय। फिर हल से जमीन जोत देना चाहिये जिससे ऊपर की मिट्टी नीचे और नीचे की ऊपर आ जाय। मतलब यह है कि फ़सल को जमीन मे अच्छी तरह दबा देना चाहिये। यह काम हो जाने के बाद लगभग सवा या डेढ़ मास तक खेत को यो ही पड़ा छोड़ देना चाहिये। बाद मे गन्ने की फसल लगाना चाहिये। अगर सन न बोया जाय तो गन्ने के पहले खेत मे मूँगफली का बोना भी हितकर है।

इसके बाद कुँआर से कार्तिक तक याने आधे अक्टूबर से अखीर नवम्बर तक जमीन को हुशियारी से हलकासा ढाल दे देना चाहिये। इसके बाद चार चार फूट के फ़ासले पर २ फूटचौड़ी और ६ इञ्च गहरी नालियां बना देना चाहिये। इन नालियों से जो मिट्टी निकले उसे दो नालियो के बीच की खाली जमीन पर इकट्ठी करना चाहिये और नालियो के नीचे की जमीन को चार बैल से जुतने वाले

हल से ६ इञ्च गहरी जोत डालना चाहिये। नालियों का काम पूरा होते ही प्रति बोघा २० से २५ गाड़ी तक अच्छा सड़ा हुआ गोबर का खाद या कम्पोस्ट खाद देना चाहिये। इसके बाद नालियो को फिर एक दफा पानी दे देना चाहिये। बाद मे एक दफा गुड़ाई भी करना चाहिये, जिस से कि खाद जमीन के अन्दर और अधिक सड़ने लगे।

जमीन की तैयारी का यह काम बहुत ही जरूरी है क्योंकि खास कर इसी तैयारी पर गन्ने की पैदावार का कम या ज्यादा होना मुनस्सिर है।

यह तो हुई खेती के लिये जमीन की तैयारी की बात। अब हम रोपे लगाने की क्रिया की ओर अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं।

जब खेत मे नालियां तैयार हो जाय तब कुछ दिन तक उन्हें वैसे ही छोड़ देना चाहिये। इसके बाद जमीन गर्म होने लगेगी। अतएव बोने के पहले नालियों को पानी दे देना चाहिये। बोनी का काम माघ या आधी फरवरी तक शुरू किया जाता है। कुछ कृषि-विद्या-विशारदों का मत है कि फरवरी या मार्च के महीनों मे गन्नों की बोनी करने की अपेक्षा जल्द कर देने से ज्यादा फायदा होता है। वे जनवरी के दूसरे या तीसरे सप्ताह को इसके लिये ज्यादा अच्छा समझते हैं। अस्तु

प्रति बीघा ५००० गन्ने के टुकड़े कॉफी होंगे। इन टुकड़ों का चुनाव बड़ी सावधानी से करना चाहिये। ये गन्ने के ऊपर वाले भाग

में से होने चाहिये। गन्ने के ऊपर के आधे भाग के टुकड़े इस प्रकार किये जाने चाहिये, कि प्रत्येक मे तीन तीन आंखे रहे। ये आंखें बड़ी व निरोग होनी चाहिये। ये टुकड़े उन्हीं गन्नो मे से छांटना चाहिये जिन मे लाल सड़न या अन्य कोई बीमारी न हो। जहाँ तक बने टुकड़ो को काटते ही रोप देना चाहिये। यदि उनको कुछ दिनो तक पटक रखना हो तो एक ठंडी जगह मे हरे पत्ते व सांँट के ऊपर के सिरो से ढक देना चाहिये। इस प्रकार इकट्ठे किये हुए टुकड़ो पर दिन के वक्त थोड़ा पानी छिड़क देना चाहिये। पर जहाँ तक सम्भव हो तुरन्त के काटे हुए टुकड़ों ही को काम मे लाना चाहिये क्योंकि इनमे ज्यादा जीवन शक्ति होती है।

रोपाई के वक्त इन टुकड़ो को इस तरह गाड़ना चाहिये कि उनकी आँखे आजू-बाजू पर रहे। ऐसा करने से सब अंखड़ियाँ उगती है। जो आँखे गन्ने के नीचे दब जाती है वे नहीं उगतीं। इन्हे दो इञ्च से ज्यादा गहरे नही दबाना चाहिये।

बोने के दो दिन बाद पटली (नालियो के आसपास की जमीन) पर से क़रीब क़रीब दो इंच गहरी सूखी मिट्टी नालियों में डालना चाहिये। ऐसा करने से जमीन मे पानी की नमी बनी रहती है और बरसात शुरू होने के पहले हर पन्द्रहवे दिन एक दफ़ा नालियो मे पानी देना चाहिये और हर दफ़ा पानी देने के दो दिन बाद दो इंच भुरभुरी मिट्टी नमी को क़ायम रखने के लिये डालना चाहिये। ध्यान रहे कि आख़िरी सिंचाई के बाद जून मास में (बरसात शुरू होने पहले) गन्नों पर मिट्टी चढ़ाने का काम

हो जाना चाहिये जिससे कि हरएक चांस के बीच में एक गहरी नाली जरूरत से ज्यादा पानी को निकाल देने के लिये तैयार हो जावे।

बरसात के ख़त्म होने के बाद सिर्फ़ निराई और दो सिंचाई की आवश्यकता होती है।

अन्य आयोजन

गन्ने की फ़सल बहुत लम्बी बढ़ती है इसलिये खेत में गन्ने के गिर पड़ने का भी डर रहता है। इसे रोकने के लिये एक एक थोम के गन्नों को इकट्ठा बाँध देते हैं। अगर फ़सल बहुत बढ़ गई हो तो सहारे के लिये बाँस गाड़ दिये जाते हैं। गिरे हुए गन्नों में शक्कर का अंश कम हो जाता है और साथ ही उनका गुड़ भी हलके दर्जे का बनता है। इसलिये हमेशा यहख़ बरदारी रखना चाहिये कि फ़सल सीधी खड़ी रहे। गन्ने की फ़सल ११ या १२ मास मे पकती है। पकने की पहचान फ़सल के पीले रंग से या बाजू के पत्ते झड़ जाने से होती है। जब फ़सल पक जावे तब उसे जितना जल्दी हो सके पेर डालना चाहिये नहीं तो थोड़े दिनों में वह बिगड़ने लग जायगी और उसका गुड़ भी हल्के दर्जे का होगा।

सिंचाई

गन्ने की सिंचाई के सम्बन्ध में हम ऊपर लिख चुके हैं। पर यहाँ इसके सम्बन्ध में कुछ और लिखने की आवश्यकता प्रतीत

होती है। चावल को छोड़कर गन्ने सरीखा पानी का लालची दूसरा पदार्थ नहीं है। पर इसका यह मतलब नहीं है कि इसे जरूरत से ज्यादा पानी दिया जाय। इसे शुरू की हालत में थोड़ा थोड़ा पर बार बार पानी देना चाहिये। एकदम इतना अधिक पानी न देना चाहिये जिससे वह खेत मे भर जावे और भूमि मे वायु का प्रवेश बन्द हो जाय। हमें यहाँ यह कह देना चाहिये कि इस फसल के लिए भी भूमि में वायु का प्रवेश अत्यन्त आवश्यक है। इस फसल के लिये जरूरत से ज्यादा नमी और सूखापन दोनो ही हानिकारक हैं। ज्यादा नमी से जड़े खराब होती है और सूखेपन से वे तिड़क जाती हैं। इसलिये आवश्यकता के अनुसार ही पानी देना चाहिये। हाँ, सिचाई का निर्णय करते समय गन्नो की जाति पर भी ध्यान देना चाहिये। किसी जाति को पानी की अधिक आवश्यकता है और किसी को उससे कम। इसके साथ ही साथ यह भी याद रखना चाहिये कि शुरू के तीन या चार महीनो मे इस फसल को पानी की जितनी आवश्यकता होती है उससे ड्योढ़ी या दुगुनी इसके बाद के तीन चार मास मे होती है। बरसात खत्म होने के बाद दो से लगाकर, आवश्यकतानुसार, चार सिचाई काफी है।

सिंचाई और गन्ने की खेती की उन्नति

गन्ने की खेती की उन्नति का बहुतसा दारोमदार देश में सिंचाई के योग्य प्रबन्ध पर है। जहाँ सिचाई का ठीक प्रबन्ध

नहीं है या जहाँ पानी मंहगा मिलता है वहाँ इसकी खेती मे बड़ी रुकावटें पड़ती है। युक्त प्रान्त के कृषि-विभाग के डाइरेक्टर मि० क्लार्क ने संयुक्त प्रदेश मे गन्ने की खेती की यथेष्ट उन्नति न होने के कारणों का अनुसन्धान कर यह प्रकट किया है कि इस प्रांत में (युक्त प्रदेश) गन्ने की फ़सल को हानि पहुँचाने वाला एक कारण मार्च से जून तक वर्षा न होने से शुष्कता का रहना है। यह शुष्कता केवल फसल को उगने ही मे रुकावट नहीं डालती बल्कि इसके कारण खेती करने मे खर्च भी अधिक पड़ता है। इस लिये जहाँ गन्ने की खेती की तरक्की का विशाल आयोजन हो वहाँ सिंचाई की तो सबसे पहले आवश्यकता है।

खाद।

गन्ने की फसल को दिये जाने वाले साधारण खादों का विवेचन हम ऊपर कह चुके है। हमारा ख्याल है कि भारतवर्ष के गरीब किसानों के लिये सड़े हुए गोबर का खाद या कम्पोस्ट खाद ही सब से अधिक सुलभ हैं। इस लिये हमने इन्हीं खादों के दिये जाने की सिफारिश की है। हाँ, खेत को फसल के बोने के लिये तैयार करने के पहले सन का हरा खाद देने पर भी हमने जोर दिया है। यह खाद भी किसान आसानी से उपलब्ध कर सकते हैं। पर इनके अलावा गन्ने की फसल को और भी खाद दिये जाते हैं। कृषि-विद्या-विशारदों ने इस सम्बन्ध मे बहुत से प्रयोग किये है। भारतवर्ष मे अब पढ़े लिखे लोगों का भी ध्यान खेती की ओर जारहा है। बड़े पाये पर शक्कर को तैयार करने की ओर देश

के धनिकों का ध्यान आकर्षित हुआ है। ऐसी हालत में गन्ने की खेती की उन्नति के सब पहलुओं पर विचार करना आवश्यक है। हमारा यहाँ मतलब गन्ने की फसल को दिये जाने वाले विविध खादों से है।

बहुत से लोग गन्ने के लिये केवल सड़े हुए गोबर ही के खाद का काफ़ी समझते हैं। उनका कथन है कि इस खाद से फसल को नाईट्रोजन की मात्रा मिल सकती है और उससे पैदावार मे काफ़ी वृद्धि होसकती है। इसके विपरीत कई कृषि-विद्या-विशारदो का यह मत है कि गन्ने की फ़सल को नाईट्रोजन के साथ साथ फॉसफरिक एसिड और पोटास जनित खादों को भी आवश्यकता रहती है। गोबर प्रभृति नाईट्रोजन जनित खाद से यद्यपि गन्नेकी फसल तादाद में ज्यादा पैदा होती है पर उसमे शक्कर का अंश कम मिकदार में होता है। इसलिये कुछ कृषि-विद्या-विशारद इस प्रकार का खाद देने के पक्ष में है, जिससे गन्नो की उपज के साथ साथ शक्कर के अंश की भी वृद्धि हो। इसे दूसरे शब्दो में यो कह लीजिये कि इस फसल को ऐसा खाद देना चाहिये जिससे यह फसल बहुत अधिक तादाद में पैदा हो और साथ ही इसके गन्नो मे शक्कर की मात्रा भी ज्यादा हो। इन सब बातों का विचार कर कृषि-विद्या-विशारदों ने गन्नों के खादों की योजना की है। स्वर्गीय बाबू नित्य-गोपाल मुकर्जी ने अपने प्रख्यात् अंग्रेजी ग्रन्थ Hand Book of ndian Agriculture में गन्ने की फसल के लिये निम्न लिखित खाद देने की सिफ़ारिश की है।

(१) हड्डी का चूरा—बोनी के पहले १० मन प्रति एकड़ के हिसाब से देना चाहिए।

अरण्डी की खली—३० मन प्रति एकड के हिसाब से बोनी के बाद दो वक्त मे देना चाहिये।

(२) गाय का गोबर—रोपे लगाने के पहले ६०० मन प्रति बीघे के हिसाब से जमीन मे डालकर उसे हल द्वारा मिट्टी में मिला देना चाहिये।

(३) पौडरेट (मनुष्य के विष्टा मे राख मिला कर यह तैयार किया जाता है)—३५० मन फी एकड़ के हिसाब से बोनी के पहले देना चाहिये।

(४) अरण्डी की खली का खाद प्रति एकड़ ३५ मन के हिसाब से मिट्टी चढ़ाने के पहले देना चाहिये। यह खाद दो वक्त में विभाजित कर देना चाहिये अर्थात एक एक वक्त में सत्रह सत्रह मन देना चाहिये। इन्हें दोनो ही वक्त मिट्टी चढाने के पहले देना चाहिये।

(५) मछली का खाद—उक्त बाबू साहब इसे बोनी के बाद प्रति एकड़ तीस मन के हिसाब से देने की सिफारिश करते हैं। (पर हम इसे देने के पक्ष में नहीं। जब अन्य अच्छे खाद उपलब्ध हैं तो इसकी कोई आवश्यकता नहीं)

(६) कुसुम की खली का खाद—बोनी के पहले और पीछे दोनों वक्त ३० मन प्रति एकड़ के हिसाब देना चाहिते।

(७) राई या सरसों की खली का खाद—बोने के पहले और पीछे ५० मन प्रति एकड़ के हिसाब से देना चाहिये ।

(८) सुपर फॉस्फेट ऑफ लाईम	५	मन	प्रति	एकड़
सल्फेट ऑफ अमोनिया	१॥	,,	,,	,,
सल्फेट ऑफ पोटाश	१॥	,,	,,	,,

इन तीनों चीजों को उपरोक्त तादाद में लेकर मिला लेना चाहिये और फिर मुट्ठी भर कर पौधों के नीचे उस वक्त डालना चाहिये जब वे एक एक फीट ऊँचे होजावें ।

यह आखिरी मिश्रण बड़े महत्व का है । यूरोप और अमेरिका में शक्कर की खेती पर यह सबसे ज्यादा काम में लाया जाता है । यूरोप और अमेरिका में कुछ लोग जमीन में हरी खाद हांक देने के बाद सिर्फ सल्फेट आफ अमोनिया ही को काम में लाते हैं ।

मि० हावर्ड का कथन है—“जावा में गन्ने को सल्फेट ऑफ अमोनिया अधिक मात्रा में देना बहुत ही अच्छा सिद्ध हुआ है । परन्तु भारतवर्ष के किसानों ने अभी तक इसको अधिक काम में लाना आरम्भ नहीं किया है । हिन्दुस्थान के कोयलों की खानों में पैदा होनेवाला अमोनिया सल्फेट अधिकांश रूप से जावा भेज दिया जाता है ।

हिन्दुस्थान के जुदे जुदे प्रान्तों के कृषि विभाग ने बड़े अनुसन्धान के बाद गन्ने की खेती के लिये कुछ खाद निश्चित किये हैं । बम्बई के कृषि-विभाग ने अलग अलग कृषि विद्या विशारदों

के द्वारा लिखवा कर जो सूचना पत्र प्रकाशित किये हैं उनमें से दो का अनुवाद हम नीचे देते हैं।

पहला सूचना पत्र

"वैसे तो इस फसल के लिये गोबर का खाद, मींगनियों का खाद, हरा खाद, खली का खाद, मछली का खाद और सल्फेट ऑफ अमोनिया आदि खाद उपयोगी होते हैं; पर जमीन की गर्मी, मुलायमपन और पानी सोखने की शक्ति कायम रखने के लिये प्रति एकड़ पीछे कम से कम २५ गाडी गोबर का खाद डालना जरूरी है। जहाँ यह खाद बहुत कम तादाद मे मिलता हो वहाँ सारे खेत मे खाद न डाल कर केवल चौंसों ही मे डालना चाहिये। जहा भेड़ खेतो मे बैठाई जा सकती हों, वहां एक गाड़ी खाद के बजाय १२५ भेडो को एक दिन के लिये बैठाना चाहिये, जिस से कि गोबर के खाद की कमी किसी तरह पूरी हो जाय। भेडो का मूत्र खाद के लिये बड़ा उपयोगी होता है और इससे फसल की शुरू मे अच्छी बाढ़ होती है।

जहां गोबर के खाद की कीमत फी गाड़ी ३ रुपये से ज्यादा हो, वहां और खास कर चिकनी काली जमीनों मे, बरसात के शुरू मे सन बोकर उसके फूल आते ही जमीन को जोत देना चाहिये। यदि सन की फसल अच्छी हुई तो वह २५ गाड़ी खाद के बराबर काम देगी।

इसके अतिरिक्त सांटे की अच्छी फसल पैदा करने के लिये यह आवश्यक है कि जब पौधे बाढ़ की हालत मे हों, तब उन

को दो या तीन बार शीघ्र घुलनेवाले कृत्रिम खाद दिये जावें। इन खादों को मात्रा उनके नैत्रजन (Nitrogen) के परिमाण पर निश्चित करना चाहिये। कृत्रिम खादों में गन्ने के लिये कुसुम की खली, अरण्डी की खली, सल्फेट ऑफ अमोनिया और मछली के खाद अच्छे समझे जाते हैं। इनको नीचे बतलाये हुए परिमाण में देना चाहिये—

(१) जब पौधा १॥ महीने का हो, तो १०० पौंड या आधी थैली सल्फेट ऑफ अमोनिया और ५०० पौंड (२५० सेर) कुसुम की खली देना चाहिये।

(२) जब पौधा ३ महीने का हो, तब १०० पौंड या आधी थैली सल्फेट आफ अमोनिया व १०० पौंड (५० सेर) कुसुम की खली देना चाहिये।

(३) जब मिट्टी चढ़ाई का काम चल रहा हो तब अरण्डी की खली २५०० पौंड (२० थैले) अथवा १२५० पौंड अरण्डी की खली व चिगली मछली का ५०० पौंड खाद देना चाहिये।

ऊपर बतलाये हुए सब खादों से एक एकड की फ़सल को बहुत कॉफी नाइट्रोजन मिल जाता है। ऊपर बतलाये हुए *परिमाण केवल नहर से आबपाशी की जानेवाली ज़मीनों के* बारे में हैं। जहां ज़मीन कुओं के पानी द्वारा सींची जाती हो अथवा वह नोतोड़ हो तो खाद की मात्रा आधी या तीन चतुर्थांश कर देना चाहिये। खाद देते समय यह ख़याल रखना आवश्यक है कि हमेशा खाद की बुकनी बना ली जाय और वह पौधे से

३, ४ इञ्च की दूरी पर डाली जावे। खाद देने के पहिले ऊपर की मिट्टी को खुरच देना चाहिये। सब प्रकार की खली के खादों मे अरण्डी की खली का खाद बड़ा जल्दी अपना असर बतलाता है। सल्फेट आफ् अमोनिया १५ दिन के अन्दर पौधों मे अपना असर पैदा कर देता है, जो कि लगभग तीन महीने तक टिकता है। मछली का खाद देने से २ या ३ सप्ताह पहले फसल तैयार हो जाती है।

दूसरा सूचनापत्र।

"मन्जरी फार्म तथा सतारा जिले के एक किसान के खेत पर गन्ने की फसल को दिये जानेवाले खाद के तजुर्बे किये गये। इन दोनों स्थानों मे कुए के पानी से सिचाई होती थी। इन तजुर्बों से यह मालूम हुआ कि गन्ने की खड़ी फसल को खली के खाद के साथ सल्फेट ऑफ अमोनिया देने से बहुत ही ज्यादा फ़ायदा होता है'।

"यह एक निश्चित बात है जिस खाद में जितनी ज्यादा नाईट्रोजन की मात्रा होगी वह गन्ने की फसल के लिये उतना ही ज्यादा फायदेमन्द होगी। इसके लिये यहाँ यह बतला देना जरूरी है कि गन्ने को दिये जानेवाले किन किन खादों में नाईट्रोजन की कितनी मात्रा है।

खाद का नाम	नाईट्रोजन का परिमाण
१—सल्फेट ऑफ अमोनिया	२० फी सैकड़ा

२—मूंगफली की खली	६ से ८ फी सैकड़ा
३—कुसुम की उम्दा खली	४ " "
४—मामूली अरण्डी की खली	४ " "

खाद का परिमाण और देने की रीति।

सल्फेट ऑफ अमोनिया के सम्बन्ध में हम पहले ही कह चुके हैं। जावा में इसकी उपयोगिता बहुत कुछ सिद्ध हो चुकी है। इसे फसल को बड़ी सावधानी के साथ देना चाहिये क्योंकि इसकी मात्रा बहुत कम होती है। सिंचाई के एक दिन पहले "कुरपी" से चाँस बनाकर पौधों से एक बालिश्त की दूरी पर इसे डालना चाहिये। यह बिजली की तरह असर करनेवाला खाद है। इसके देते ही पौधे की बाढ़ शुरू हो जाती है। इतना ही नहीं इसके प्रभाव से गन्ने काले होने लगते हैं। अगर मुमकिन हो तो इसे देने के बाद मामूली समय से पहले दूसरी सिंचाई कर देना चाहिये। खली और इसका बड़ा मेल है। कभी कभी ये दोनों साथ साथ दिये जाते हैं। हम समझते हैं नीचे लिखी हुई मात्राओं में निम्न खाद योग्य समय पर देने से गन्ने की फसल को बड़ा फायदा होगा

१ **पहली मात्रा**—इसमें केवल सल्फेट ऑफ अमोनिया ही लेना चाहिये। प्रति एकड़ २५० पौण्ड काफी होगा। इसे गन्ने के टुकड़े लगाने के तीन सप्ताह बाद देना चाहिये।

दूसरी मात्रा—इसमें खली का खाद और सल्फेट ऑफ

अमोनिया दोनों मिलाकर देना चाहिये। सल्फेट ऑफ अमोनिया १२५ पौण्ड और मामूली खली ६०० पौण्ड प्रति एकड़ देना चाहिये। इसे गन्ने लगाने के सात सप्ताह बाद देना चाहिये।

तीसरी मात्रा—इस बार केवल खली का खाद इतनी मात्रा मे देना चाहिये जिससे फसल को ५० पौण्ड नाईट्रोजन मिल जावे। इसके लिये कुसुम या मूंगफली की खली प्रति एकड़ ८५० पौण्ड के हिसाब मे डालना चाहिये। यदि कुसुम की खली न मिले तो अरण्डी की खली प्रति एकड १३०० पौण्ड के हिसाब से काम मे लाना चाहिये।

मि० आर० जी० एलन के अनुभव

नागपुर कृषि कालेज के प्रिन्सिपाल मि० आर० जी० एलन ने अनेक प्रयोगो के बाद गन्ने की खेती मे दिये जाने वाले खादों के सम्बन्ध मे लिखा है;—"गन्ने की फसल के लिये नाईट्रोजन की खास जरूरत रहती है, पर कही कही ऐसा देखा गया है कि इसके साथ फॉस्फेट मिलाकर देने से पैदावार बढ़ती है। पिछले और हाल के तजुर्बों मे मालूम हुआ है कि फसल बोने के पहले कम से कम ३०-३५ गाडी गोबर का खाद या महुआ* रिफ्यूज या २५ गाडी सन या उसी के बराबर भेड़ा की लेंडी (मींगनियां) का खाद खेत मे डालने से तथा मिट्टी चढाते वक्त १५ से २५ मन तक

* महुआ से शराब निकालने के बाद जो बेकाम छिलके बच आते हैं। उन्हें महुआ रिफ्यूज कहते हैं।

तिल्ली की खली (या इससे एक तिहाई अधिक अरण्डी की खली) का खाद दो बार देने से फसल को पैदावार को बहुत लाभ पहुँचता है। मिट्टी चढाते वक्त ३ मन सुपर फास्फेट और २॥ मन अमोनियम सल्फेट डालने से और भी अधिक लाभ होगा।

डाक्टर मेन का अनुभव।

कृषि शास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान् तथा बम्बई कृषि विभाग के भूतपूर्व डायरेक्टर डा० मेन महोदय ने भी इस सम्बन्ध बहुत तजुर्बे किये हैं। अनेक वर्षों के अनुभव के बाद आप गन्ने की खेती के लिये निम्न लिखित खाद की सिफारिश करते हैं।

बोनी के पहले २२४ पौण्ड सुपरफास्फेट और ४०० पौण्ड सल्फेट ऑफ पोटाश के साथ ४५ गाड़ी गोबर के खाद का प्रयोग करना चाहिये। गन्नों पर मिट्टी चढाते वक्त १२०० पौण्ड कुसुम का उत्कृष्टि खाद या इसी प्रकार की अन्य कोई वस्तु और ३७५ पौण्ड सल्फेट ऑफ अमोनिया उपयोग मे लाना चाहिये।

हमने ऊपर गन्ने की खेती मे दिये जाने वाले विविध खादों का वर्णन किया है और साथही मे कई प्रसिद्ध कृषि विद्या-विशारदों के अनुभव भी दिये हैं पर इन जुदे जुदे तजुर्बों के पढ़ने से, सम्भव है, हमारे साधारण पाठक कुछ गड़बड़ में पड़जावें। इस लिये हमारा यह कहना है कि साधारण किसानों को सन की हरी खाद और गोबर के सड़े हुए खाद या यथाविधि तैयार किये हुए कम्पोस्ट खाद ही को काम मे लाना चाहिये।

इन खादों को काम में लाने की विधि हम आरम्भ में लिख चुके हैं। ये दोनों खाद अधिक सुलभ हैं। मींगनियों का खाद भी इस फसल के लिये विशेष उपयोगी है। हाँ, गन्ने में शक्कर का अधिक अंश लाने के लिये अगर हड्डी के चूरे का भी उपयोग किया जाय तो अच्छा है। जावा में ऐसा किया जाता है।

रही कृत्रिम खादों की बात। इसमे सन्देह नहीं कि कुछ कृत्रिम खाद भी इस फसल के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं। इसके लिये सल्फेट ऑफ अमोनिया की ख्याति तो दूर दूर तक फैली हुई है। जावा में, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, इसके प्रयोग से गन्ने की बहुत अधिक उपज की जाती है। मि० नित्यगोपाल मुकर्जी का नम्बर ८ का मिश्रण, जिसका जिक्र इस अध्याय के आरम्भ मे आया है, बड़ा ही सफल खाद है। हम समझते हैं उससे न केवल गन्नों क उपज ही बढ़ेगी, पर साथ ही उनमें शक्कर के अंश की भी वृद्धि होगी। डॉक्टर मेन और एलन साहब के नुस्खे भी अच्छे हैं।

गन्ने की श्रेष्ठ जाति

हम पहले कह चुके हैं कि बोने के लिये गन्ने की सर्व श्रेष्ठ जाति चुनना चाहिये। वह जाति ऐसे गन्ने की होनी चाहिये जिसमें शक्कर का अधिक से अधिक अंश हो; जो खेत मे खड़ा रह सके और जिसमें बीमारी लगने का डर कम हो। पौंडा जाति का गन्ना

अब तक सबसे अच्छा माना जाता था। दरअसल है भी वह ऐसा ही। उसमे शक्कर का परता अधिक बैठता है। पर इस वक्त ऊँची जाति के गन्नो मे सबसे अच्छा गन्ना 'एस ४८ नम्बर' का समझा जाता है। यह गन्ना राजपूताना और मध्य भारत की पीयत की ज़मीन मे बोया जा सकता है। यह सुर्ख रग का और औसत दर्जे का मोटा होता है। यह यहाँ की जमीन मे अच्छा पैदा होता है। इन्दौर के प्लान्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट में भी यह बोया गया है। बोने के लिये उक्त संस्था से इसके टुकड़े मिल सकते हैं। नीचे लिखे हुए कारणो से यह देशी सांटो से ज्यादा अच्छा है—

(१) यह अच्छा उगता है, बरसात में खडा रहता है और जल्दी पकता है।

(२) गुड़ की उपज फी बीघा ज्यादा होती है और गुड़ उम्दा रंग का होता है। उक्त संस्था मे एक एकड़ गन्नो से ६० मन गुड़ निकला।

(३) यह गन्ना बरसात मे ज्यों का त्यो खड़ा रहता है और आड़ा नहीं पड़ता।

गन्ने को पेरना और गुड़ बनाना

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि गन्ने की काश्त मे गुड़ बनाना विशेष महत्व रखता है। अगर काश्तकार इस काम मे लापर्वाह रहा और इस काम मे उसने काफी सावधानी न रखी तो उसकी सारी महनत पर पानी फिर जयगा। उसे बहुत कुछ

नुक़सान उठाना पड़ेगा। हम यह बात जोर के साथ कह सकते हैं कि उसे जितनी चिन्ता अच्छी फसल पैदा करने के लिये रखनी चाहिये, उतनी ही गन्नों के पेरने और गुड़ बनाने के लिये रखनी चाहिये। हम यहाँ अपने प्रिय विद्यार्थियों और काश्तकारों के लिये इस सम्बन्ध में दो शब्द लिखना चाहते हैं।

जैसा कि हम कह चुके हैं, पौंडे के गन्ने ११॥ या १२ मास में पूरी तरह से पकते हैं। इसलिये ११ वें महीने के बाद गन्नों को बार बार चखकर उनके पक जाने की जाँच कर लेनी चाहिये। पक जाने पर गन्नों को काट लेना चाहिये और २४ घण्टों के अन्दर पील डालना चाहिये। पकने के बाद गन्नों को खेत में रखा गया तो उनसे घटिया दर्जे की शक्कर तैयार होती है। अगर किसी कारणवश उन्हें कुछ दिनों तक खेतों में पटक रखना आवश्यक मालूम हो तो उनको ठंडी जगह में रखकर हरे पत्ते व गन्नों के पौधों के सिरों से ढक देना चाहिये और उन पर दिन में दो या तीन मर्तबा पानी छिड़कना चाहिये। क्योंकि खुले रखने से गन्ने सूख जाते हैं, उनका रस खट्टा हो जाता है और गुड़ भी बिगड़ जाता है। अगर बन सके तो छोटे और कच्चे गन्नों को अलग पीलकर उनके रस को अलग ही उबाल लेना चाहिये, जिससे कि अच्छे गन्नों का रस बिगड़ने न पावे। गन्नों को पीलने के लिये काठ के कोल्हू की बजाय लोहे के कोल्हू का उपयोग करना चाहिये। क्योंकि जहाँ काठ (लकड़ी) के कोल्हू से फी सैंकड़ा ५० हिस्सा रस निकलता है, वहाँ लोहे के कोल्हू से फी सैंकड़ा

६३ से लगाकर ७० सैंकड़ा तक रस निकलता है। इससे लोहे के कोल्हू या चर्खी में गन्ना पेरने से प्रति १०० सेर गन्नों में १३ से लगाकर २० सेर रस का ज्यादा फ़ायदा होता है। अगर गन्ने की अच्छी फ़सल हुई तो लोहे के कोल्हू से पिराई करने में फी एकड़ गलभग १००) रुपयो का लाभ होगा। अभी तक जिन जिन लोहे की चर्खियों (कोल्हू) का तजुर्बा किया गया है उनमें पंजाब की "नाहन" की चर्खियों (लोहे के कोल्हू) को अधिक माँग है। इनकी बनावट सादी है और ये अधिक दिनों तक टिकती हैं। इन कोल्हुओं का मूल्य २५०) फी मशीन है। सरकारी फार्मों पर ये मिल सकती हैं।

कोल्हू को हमेशा मजबूत व समतल जमीन पर लगाना चाहिये। लकड़ी की चौखट के डंडे, जिस मे कि कोल्हू जमाया जाता है, लम्बे रखना चाहिये। पीलने का काम शुरू करने के एक या दो सप्ताह पहले कोल्हू को जमीन में लगाना चाहिये। इस समय इस बात पर पूरा ध्यान रखना चाहिये कि डण्डे तख्ते की तह पर समकोण में रखे जायँ। यदि कोल्हू अच्छी तरह नहीं जमाया गया तो वह हिलता रहेगा और एक ही ओर झुक जायगा।

रस उबालना

रस उबालने के लिये पूना की तरफ़ काम में ली जाने वाली भट्टियों व कढ़ाइयों का उपयोग करना चाहिये। इनसे बड़ी

किफायत होती है। क्योंकि इन भट्टियों में गन्ने के छिलके व रस निकाले हुए डंठलों के अलावा दूसरे ईंधन की आवश्यकता नहीं होती। देशी भट्टी में काश्तकार लोग गुड़ बनाने के लिये १५ से २० गाड़ी तक लकड़ी जलाते हैं जिससे फी एकड़ ३०) रु० खर्च पड़ता है। हां, जहां ५० एकड़ से ज्यादा रक़बे में गन्ने बोये गये हों वहां भाप से चलने वाले रस निकालने के यन्त्र काम में लाने चाहिये।

रस को गन्ने से निकालने के बाद जल्दी ही गर्म कर लेना चाहिये। रस उबलने के पहले उसमें जरा जङ्गली भींडी का रस मिला देना चाहिये, जिस से रस का मेल भली प्रकार छँट जाय। उबलना शुरू होने पर आधे घन्टे बाद पहला फेन ऊपर आता है। इस वक्त मेल को सावधानी से निकाल देना चाहिये। अगर ऐसा नहीं किया गया तो गुड़ का रंग अच्छा नहीं जमेगा और वह इतना बिगड़ जायगा कि उसका सुधारना मुश्किल हो जायगा। खास कर पूरी तौर से न पके हुए गन्नों के रस को उबालने के लिये विशेष सावधानी रखनी चाहिये। रस के उबालते रहने से वह रस गाढ़ा हो जायगा। वह राब सरीखा हो जायगा। इस वक्त आँच कुछ कम कर देनी चाहिये और इस सब को किसी झारे से हिलाते रहना चाहिये जिससे वह जलने न पावे। यह मालूम करने के लिये कि कढ़ाई उतारने लायक हो गई या नहीं, जरा सी राब या शीरा ले कर ठंडे पानी में छोड़ना चाहिये। अगर उसकी गोली बन जाने तो समझ लेना चाहिये कि कढ़ाई उतारने

लायक हो गई। ऐसा होने पर उक्त कढ़ाई को उतार कर उसका रस ठंडा होने के लिये दूसरी कढ़ाईमे डाल देना चाहिये। इससे वह ठंडा होजायगा। यहां भी उसे धीरे-धीरे हिलाना चाहिये। लगातार तथा जोर से नहीं हिलाना चाहिये; क्योंकि ऐसा करने से गुड़ का दाना टूट जाता है और गुड़ इकट्ठा नहीं बनता। जब राब पूरी तौर से ठंडी हो कर गुड़ कड़ा होजाता है तो स्थानीय प्रथा के अनुसार उसके भेले या बट्टी बना कर उसे बेचने के लिये तैयार कर लेते हैं।

सांटे को लगने वाली बीमारियाँ व कीड़े

सांटे को अकसर 'लाल सड़न' (Red Rot) व बोअरर कीड़ों (जिसे मॉथ बोअरर कहते हैं) से ज्यादा नुकसान होता है। इससे बचने का उपाय यह है कि सांटों की रोपाई जनवरी में की जावे और खेत को जमीन को ऊपरी सतह गुड़ाई द्वारा ढीली रखी जाय। इसके बाद सल्फेट ऑफ अमोनिया व खली का खाद देकर सांटों को बाढ़ फुर्ती से की जावे। इसके साथ ही गर्मी की मौसिम मे सिचाई इस ढंग से की जावे कि जमीन की ऊपरी ३ इञ्च की सतह मे पानी की नमी अच्छी तरह बनी रहे। इसके बाद यदि यह कीड़ा किसी पौधे को लग गया तो उसे जमीन के अन्दर दो इञ्च की नीचाई से काट कर जला दिया जावे। मार्च, अप्रैल व मई के महीनों में इन कीड़ों को पकड़ने के लिये कृष्ण-पक्ष (अँधेरी रात) मे एक चमकीला

कंदील ७ कढाई के ऊपर खेत मे टाँक दिया जावे। ऐसा करने से बहुत मे कोड़े, जो कि प्रकाश को बहुत पसन्द करते हैं, कढ़ाई मे आ गिरते हैं और उनका उपद्रव कम हो जाता है।

'लाल सड़न' से बचने के लिये अच्छे व निरोगी पौधों को बीज के काम मे लाना चाहिये। इसके साथ ही सिंचाई की व्यवस्था भी अच्छी रखनी चाहिये।

मूंगफली की खेती

मूंगफली को असली पैदाइश का स्थान ब्रेझील है। यहाँ से पहले जमाने में यह पदार्थ पश्चिमीय अफ्रीका मे भेजा गया। अफ्रीका के गुलामो ने इसका प्रचार अमेरिका के संयुक्त प्रदेश मे किया। इसके कुछ ही वर्षा के बाद अमेरिका के पादरियो ने चीन देश मे इसको फैलाया।

सुप्रसिद्ध पोर्चुगीज व्हास्कोडिगामा के बाद हिन्दुस्थान मे पोर्चुगाल से जो पादरी आये, वे इसके पौधे को अपने साथ लेते आये। बूचानन साहब अपने 'मैसोर के प्रवास' नामक अंग्रेजी ग्रन्थ में लिखते हैं कि सन् १८०० ई० मे यह पौधा मैसोर में हल्दी के साथ बोया जाता था। सन् १८५० में दक्षिण अर्काट प्रदेश के कलक्टर ने जो सालाना रिपोर्ट लिखी थी, उसमे वे लिखते है—

"मूंगफली की फ़सल यहाँ बहुत ही फायदेमन्द साबित हुई

है। यूरोप के बाज़ारों में इसके तेल की बहुत बड़ी माँग है। मद्रास प्रान्त में पांगूटी जिले और बितपुरम् तालुके में इसके काश्त की ज़मीन का रक़बा लगभग ४००० एकड़ है।" आगे चल कर यह रक़बा और भी बढ़ गया और सन् १८७० ई० मे २०००० एकड़ हो गया। मालवे मे इसका बीज कब लाया गया इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता; परन्तु जान पड़ता है कि गत ६० साठ, ७० सत्तर वर्षो से इसकी खेती यहाँ होतीआई है।

मूँगफली के लिये ज़मीन

मूगफली की खेती ज्यादातर गर्म प्रदेशों मे होती है। हिन्दुस्थान की आबहवा इसके लिये बहुत फायदेमंद साबित हुई है। इसकी खेती के लिये ऐसी ज़मीन चाहिये जो सुधारने से भुरभुरी और नरम हो जावे। लाल, हलकी, कुछ काली और रेतीली ज़मीन में जो ज़्यादा सूखी न हो, इसकी खेती उत्तम हो सकती है। रेतीली ज़मीन की पहिचान, जिसमे मूगफली की खेती हो सकता है, यह है कि रेतीली मिट्टी ऐसी चिपचिपी (लसदार) हो कि यदि वह आल की अवस्था में हाथों से दबाई जावे तो उसका ढेला बन जावे और यदि वह ढेला भूमि पर डाला जावे तो सब परमाणु अलग अलग हो जावे। सारांश यह है कि हलकी रेतीली भूमियाँ जिनमें चिकनी मिट्टी का परिमाण अधिक न हो वरन् रेत का परिमाण अधिक हो, इसकी खेती के लिये बहुत बढ़िया है।

मूंगफली के लिये सबसे अच्छी और फलदायक भूमि वह है जिसका रंग राख के समान हो व जिसमें पानी सोखने और आस माजूद रखने की शक्ति हो। इसके लिये नर्म चूनेवाली भूमि भी उत्तम है। ऐसी भूमियों में मूंगफली की खेती करने से फली में दाना और दाने मे तेल अधिक होता है। ऐसी नर्म भूमियाँ भी कि जिनमें रेत का परिमाण, चूना और हड्डी का अंश अधिक हों, मूंगफली के लिये अत्युत्तम हैं। ऐसो भूमियो में भी मूंगफली की उपज अच्छी हो सकती है जहां केवल चूने का परिमाण ही अधिक हो। इसकी खेती गांव के आसपास की कुछ ऊंची और ढालू भूमियों में, जिनमे कि पानी इकट्ठा नहीं हो सकता, अच्छी होती है; क्योंकि जब पानो का निकास अच्छा होगा तो फसल को पानी की कमी अथवा अधिकता से हानि न पहुँचेगी।

जिन भूमियो मे मिर्च, आलू, गन्ना, चना, गेहूँ, अफीम, नील, कपास, इत्यादि फसलें उत्पन्न होती हैं उनमें मूंगफली भी हो सकती है।

बाग़ की भूमियों मे भी इसकी खेती भलो प्रकार से हो सकती है। जिन भूमियो को पञ्जाब में रोसली और संयुक्त प्रान्त में दुमट कहते हैं उनमें भी इसकी खेती अच्छी हो सकती है। ऐसी भूमियो को अंग्रेजी मे सेन्डी-लोम (Sandy-loam) कहते हैं। मूंगफली की खेती ऐसी भूमियो मे नहीं हो सकती जो भारी (मटीली अथवा मटियार) हों। इसके दो कारण हैं—

(१) यद्यपि ऐसो भूमियो में मूंगफली का पौधा उगता है,

परन्तु मूगफली डील डौल मे बहुत छोटी होती है। कारण यह है कि अधिक चिकनी भूमियों मे इसका पौधा भली भाँति उगता और निकलता नहीं है और न भली भाँति फैलता ही है। क्योंकि भूमि की प्राकृतिक बनावट में कठोरपन होने के कारण फली की बढ़ती मे रुकावट हो जाती है।

(२) ऐसी भूमियों मे फसल की कटाई का अधिक खर्चा पड़ता है, जो कि लाभ के बजाय नुकसान देने वाला है।

नीचली अथवा तर भूमियां जिनमे पानी रहता हो, सामान्यतः इसकी खेती के लिये उपयोगी नहीं हैं।

खारी (लवणयुक्त) भूमियाँ जिनमें नमक का परिमाण अथवा खार अधिक हो इसके लिये अत्यन्त हानि कारक हैं।

जिन खेतो मे गतवर्ष मूगफली की खेती की गई हो, उन्हीं भूमियो मे मूगफली का बोना अति हानिकारक है। इससे फसल के कम उत्पन्न होने के अलावा फसल का कीड़ो से बहुत हानि पहुँचती है।

मद्रास अहाते मे थोड़े वर्षों से उपरोक्त सावधानी की गई तो इस परिश्रम का फल बहुत अच्छा निकला और फसल को भी कीड़ों से बहुत कम हानि पहुँची।

जमीन की तैयारी

दूसरी फसलों की तरह मूगफली के लिये भी जमीन की अच्छी तैयारी होनी चाहिये। इस फसल के लिये नरम जमीन की ४-५

बार जुताई करनी चाहिये और अगर जमीन कड़ी हो तो ६,७ बार जुताई करनी चाहिये। प्रथम बार की दो जुताइयां, अगर बन सके तो नये ढंग के हलों से करनी चाहिये। रेतीली भूमि को बार २ जोतने की जरूरत नहीं; क्योंकि उसकी मिट्टी तो पहिले ही बारीक होती है। उसकी मिट्टी को सिर्फ ऊपर से नीचे पलटना बस होता है। हर जुताई के पीछे जमीन को समतल अर्थात् बराबर कर देना चाहिये जिससे उसमें आल (नमी) बनी रहे। जमीन में मिट्टी के कड़े ढेले, ईंट पत्थर और घास पात हों तो उन्हें निकाल देना चाहिये; क्योंकि इनसे फसल को बहुत हानि पहुँचती है। इसी समय उसमे क्यारियाँ भी बना देनी चाहिये, जिससे पानी निकलता रहे; क्योंकि जिस जमीन मे पानी जमा रहता है, वह फसल के लिये अच्छी नहीं होती।

खाद

जिस प्रकार दूसरे पदार्थों को अच्छे खाद की जरूरत होती है, उसी तरह मूगफली की खेती को भी अच्छे खादकी जरूरत है। 'इन्दौर' के प्लांट रिसर्च इन्स्टिट्यूट के सचालक हावर्ड साहब ने अपने तजुर्बे से यह बतलाया है कि मूगफली की खेती के लिये गोबर का खाद बहुत अच्छा होता है। पर यह गोबर का खाद गड्ढे मे उस तरह से तैयार करना चाहिये जैसा कि हमने इसी ग्रन्थ के किसी पिछले अध्याय मे बताया है। मूंगफली की खेती में एक एकड़ के पीछे गोबर और मूत्र का १५-२० गाड़ी खाद काफी

होता है।

गोबर की तरह भेड़ और बकरी की मींगनी का खाद भी मूंगफली के लिये बहुत फायदेमन्द साबित हुआ है। मींगनियों को भूसे के समान करके पानी के साथ गड्ढे मे सडाना चाहिये और फिर उन्हें खाद के काम मे लाना चाहिये।

अरंड की खली के खाद से भी मूंगफली की खेती में अच्छा फायदा देखा गया है। १५-२० दिन तक सड़ाने के बाद इसके खाद को काम में लाना चाहिये। यह खाद एक एकड़ पीछे १५-२० सेर काफी होगा। अरंड के खली के खाद की तरह मूंगफली की खली का खाद भी तजुर्बे से फायदेमन्द साबित हुआ है। यह खाद एक एकड़ पीछे २५-३० सेर बस होगा।

राख की खाद

मूंगफली की खेती में राख का खाद बहुत ही बढ़िया काम करता है। मि० मुकर्जी अपनी Agriculture in India 'हिंदुस्तानी काश्त' नामक पुस्तक मे लिखते हैं कि राख में अगर थोड़ा सा चूना मिला दिया जावे तो सोने मे सुगंध का काम देता है।

कुछ कृषि-विद्या-विशारदो ने मूंगफली की खेती के लिये चूने के खाद को सबसे अच्छा बतलाया है। वे कहते हैं कि मूंगफली और चूने का बड़ा दोस्ताना है। चूना जमीन मे रासायनिक असर डालता हुआ फली को बलवान और स्वादिष्ट बनाता है तथा इस से उसकी उपज में आश्चर्य जनक बढ़ती होती है। मद्रास प्रांत

के सेदापेट ज़िले में जो तजुर्बे किये गये हैं उनसे यह ज़ाहिर हुआ है कि चूने के खाद से फी सैकड़ा ९३ लाभ होता है। चूने का खाद देने का एक बड़ा भारी फ़ायदा यह है कि अगर जहाँ कीड़ों ने फसल को हानि पहुँचाई हो तो इस खाद के पहुँचते ही वे सब कीड़े नष्ट हो जायँगे और फसल हरी भरी होजायगी। यह खाद एक एकड़ पीछे ३ मन दिया जाता है।

मूँगफली के खाद सम्बन्धी प्रयोग

मि० ई० लाइबरहर अपनी "मूंगफली की खेती" नामक एक अंग्रेजी पुस्तक मे लिखते हैं कि जिस खाद मे ९ फी सदी फास्फरिक एसिड, २ फी सदी नाइट्रोजन और २ से लगाकर ३ फी सदी पोटाश हो वह अगर प्रति एकड़ पीछे ३०० पौंड से लगाकर ५०० पौंड तक दिया जावे तो मूंगफली की उपज मे आश्चर्यजनक बढ़ती होती है। आप यह भी लिखते हैं कि जिस खेत की ज़मीन की मिट्टी में चूने की कमी हो उसमें ऊपर लिखे हुए खाद के सिवाय ४०० पौंड से लगाकर ९०० पौंड तक चूना डालना चाहिये। इससे उस ज़मीन में रही हुई चूने की कमी की पूर्ति होजायगी और मूंगफली की फ़सल को फ़ायदा पहुँचेगा।

हिन्दुस्थान के ग़रीब किसान अपनी ग़रीबी की वजह से बनावटी खादों को काम मे नहीं ला सकते। मद्रास प्रान्त में मूंगफली की खेती एक ही खेत में बिना हेर फेर के की जाती है यानी कई साल तक एक ही खेत में मूंगफली बोई जाती है। इससे वहाँ

खास तौर पर खाद का उपयोग किया जाता है। मद्रास के दक्षिण में अर्काट प्रदेश मे तालाब और नालों की मिट्टी बहुतायत से इसके खाद के काम मे लाते हैं। यह खाद एक एकड़ के पीछे १० गाड़ी दिया जाता है। जिस जमीन मे चूने की कमी होती है वहाँ ज्यादा-तर वह मिट्टी काम मे लाई जाती है जिसमे चूना अधिक हो। मद्रास के सरकारी खेती विभाग की पुस्तिका नम्बर ७ मे लिखा है कि इस मिट्टी मे २२ फी सदी चूना व ७० फी सदी रेती होना चाहिये। कहा जाता है कि मद्रास प्रान्त मे जब किसी खेत मे पहले पहल मूंगफली बोई जाती है तब उसमें १०० गाड़ी तालाब की मिट्टी डाली जाती है। इसके बाद कुछ वर्षों के अंतर से यह खाद दिया जाता है। मद्रास प्रान्त मे मूंगफली के खेत पर भेड़ और बकरियाँ भी बाँधी जाती है, जिससे उनका मल मूत्र खेत मे काफी फैल जावे। तजुर्बे से जाना गया है कि १००० भेड़ें एक रात मे अपने मल मूत्र से इतना खाद दे सकती हैं जो एक एकड़ के लिये काफी हो। मद्रास प्रान्त के खेती विद्या विशारदो ने अपने तजुर्बे से भेड़की मींगनी का खाद बहुत फायदे मन्द बताया है। यहाँ पर राख का खाद भी काम मे लाया जाता है।

आकोला मे मूंगफली की खेती के सम्बन्ध मे बहुत से तजुर्बे किये। उनसे यह साबित हुआ है कि गोबर का खाद उसके लिये मुफीद है। बनावटी खादों के सम्बन्ध में आकोला के तजुर्बों से यह साबित हुआ है कि सल्फेट ऑफ पोटाश इसकी खेती मे निहायत फ़ायदेमन्द है। इसका खाद प्रति एकड़ ३९ सेर दिया

जाना चाहिये। पोटाश का खाद उस समय दिया जाना चाहिए जिस समय कि मूँगफली काश्त के लिये खेत मे बिखेरी जाती है।

आकोला के फाम पर जुदे २ प्रकार के खेती के जो तजुर्बे किए गये हैं, उनका नतीजा इस प्रकार है:—

कौनसा खाद दिया गया	पैदावार				खर्च आदि करने के बाद बचा हुआ निरा फायदा		
	सूखी फलियाँ		सूखा चारा				
	मन	सेर	मन	सेर	रु०	आ०	पा०
१-बिना खाद के ली हुई फसल	१७	३४	१९	९	८१	९	०
२-गोबर का खाद	१९	१६	२२	११।	८४	०	०
३-सल्फेट ऑफ पोटाश	२१	१६	२०	५	८७	२	०
४-चूना	२०	३४	२०	२९	९३	५	०

मूँगफली की बोनी

ऊपर हम जमीन की तैयारी और खाद के सम्बन्ध में काफी रोशनी डाल चुके हैं। अब हम मूँगफली के बोने की तरकीब अपने किसान भाइयो को बतलाते हैं।

बोने के पहले मूँगफली के बीजों (दानों) को छिलके से अलग कर लेना चाहिये। छिलके अलग करने का काम, जहाँ तक हो सके, हाथ ही से करना चाहिये। इस काम के लिए मशीनें भी तैयार मिलती हैं और मूंगफली का तेल निकालने वाले लोग उन्हे अक्सर काम मे लाते हैं। पर खेती विद्या के तजुर्बे-कार लोगो का कहना है कि जो बीज बोने के लिये काम मे लाये जायँ उन्हे हाथो ही के द्वारा छिलकों से अलग करना चाहिए। क्योंकि मशीनो से निकाले हुए बीजों मे अक्सर टूट फूट होने की सम्भावना होती है और वे खेती के काम मे कमजोर हो जाते हैं। छिलको से तुरन्त निकाले हुए बीजो को खेत मे डालना चाहिए। कई लोग छिलकों को बीजो से निकालने के पहले पानी मे भिगो देते है पर यह तरीका गलत है। इससे खेत में डाले हुए बीजो के बिगड़ जाने का डर रहता है। मूँगफली के बीजों को गीला करने से बोने के पहले ही कभी २ अंकुर फूटने लगते हैं और इसीलिए वे खेती के काम के लिए निकम्मे हो जाते हैं।

दूसरी बात यह ध्यान में रखनी चाहिए कि बोनी के लिए जो बीज काम मे लाया जावे वह खूब हृष्ट पुष्ट और निरोगी होना चाहिये।

आब-हवा और वर्षा

मूँगफली वहाँ ज्यादा अच्छी तरह फलती और फूलती है, जहाँ की हवा, मूँगफली की कटाई के समय के पहले, गरम और

सूखी होती है और जहाँ मूँगफली के पौधों को चार पाँच महीने। तक पाले का सामना नहीं करना पड़ता।

पश्चिमीय अफ्रीका में मूँगफली की फ़सल १०, १२ इंच की वर्षावाले प्रदेशों मे अच्छी फलती फूलती देखी गई है। पर हिन्दुस्थान में यह बात नही है। यहाँ तो उन्हीं प्रदेशों में इसकी फ़सल बहुतायत से होती है जहाँ कि बरसात २० से ४० इंच तक होती है। सतारा जिला मूंगफली की अच्छी फ़सल के लिये प्रसिद्ध है और वहाँ जून और सेप्टेम्बर के बीच मे ३० से लगाकर ५० इंच तक बरसात होती है। वहाँ पर मूंगफली की फ़सल जून और जुलाई मास मे बोई जाती है। इससे फसल को आगे चल कर सेप्टेम्बर मास मे, जबकि भारी वर्षा बन्द हो जाती है, गरम और सूखी हवा मिलने लगती है। यह गरम और सूखी हवा उसकी फसल के लिये बहुत अनुकूल रहती है।

युक्तप्रान्त और पंजाब मे जहाँ कि बरसात की औसत २० इंच से कम रहती है मूंगफली की खेती ने ज्यादा तरक्की नहीं की है। इससे यह मालूम होता है कि हिन्दुस्थान में कम बरसात वाले प्रान्त मूंगफली की खेती के लिये विशेष अनुकूल नहीं हैं। हाँ, ऐसे कम बरसात वाले प्रान्तों मे मूंगफली की खेती करना हो तो उस फसल मे जलमें सिचाई करना चाहिये।

मूंगफली बोने की रीति

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं मूंगफली की खेती के लिये

खेत को तैयार करने की जरूरत है। खेत में जितना घास पात हो उसे उखाड लेना चाहिये और मिट्टी को बारीक और भुरभुरी कर लेना चाहिये, अर्थात् मूंगफली के बोने के पहले यह देख लेना चाहिये कि भूमि बीजारोपण के लायक भुरभुरी हुई है या नहीं। अगर न हुई हो तो हल चलाकर भुरभुरी कर ली जाय। क्योंकि यदि जमीन भुरभुरी न हुई तो मूंगफली के फूल की नोकें जमीन के भीतर आसानी से न घुस सकेंगी और इससे उपज बहुत कम होगी।

जुदे २ प्रदेशों में मूंगफली बोने के जुदे २ तरीके हैं। कहीं २ तो ये बीज क्यारियों में बोये जाते हैं और कहीं २ चांस में। चांस से हमारा मतलब बीजों को खुरपी तथा देशी हलों से कतारों (पँक्ति या लैन) में बोने से है। मालवा प्रान्त में अक्सर लोग हल के द्वारा कतारों में ही बीज बोते हैं। ये कतारें सीधी होनी चाहियें। अच्छा हो अगर ये कतारें रस्सी की सहायता से सीधी बनाई जायँ। नालियाँ एक फुट से दो फुट तक के अन्तर पर बनानी चाहिये और बीज का फासला दूसरे बीज से ६ से ७ इंच तक होना चाहिये और इस फासले पर डेढ २ इंच गहरे छेद कर उनमें एक २ बीज डालना चाहिये। सारांश यह है कि बीज की कतारों के फासले का विचार किसान को खुद करना चाहिये, क्योंकि यह जमीन की किस्म का ध्यान रखते हुए घटाया बढाया जा सकता है। अच्छी जमीनों में कहीं कहीं २ से २॥ फीट तक का फासला रखना पड़ता है। नहीं तो डेढ़ फुट का फासला बस

होता है। सामान्यत दो कतारो के बीच का फासला १॥ फुट और बीज से बीज का फासला९ इंच होना चाहिये। मि० पागसन साहब ने मूंगफली की खेती का जो अनुभव शिमले मे किया उसे आप इस प्रकार लिखते हैं—

"जमीन ठीक कर लेने के बाद दो २ फीट के फासले पर नालियाँ बनानी चाहिये और एक २ चमचा चूने और हड्डी के मिले हुए चूरे को अठारह अठारह इंच के फासले पर नालियो पर डालना चाहिये और खोदकर उसे जमीन मे मिला देना चाहिये। खाद वाली जमीन के बीच मे समूची फली डेढ़ इञ्च नीची बोकर ऊपर मे खाद से ढाँक देना चाहिये। इससे थोड़े दिनो मे अंकुर फूट आयँगे और बहुत ताकत से बढ़ेंगे। नियत समय पर नारंगी के समान सुहावने फूल निकलने लगेंगे। फिर उनमें डोड़े आयेंगे। वे जैसे जैसे बढ़ते जायगे वैसे २ फलियाँ भी जमीन के नीचे जोर पकड़ती जायेंगी।"

आप लिखते है कि आपने बोनी एप्रिल मे की और अक्तूबर मे कोहरे के गिरते ही उन्हें खोद लिया गया। इससे डौल डौल में यह दूनी हो गई थी। गूदा भी इनका बढ़ गया था और सुगन्ध भी अच्छी हो गई थी। सामान्यतः इसका बीज दूर २ नही डाला जाता है। यह घना बोया जाता है। इसका कारण यह है कि सब फलियाँ जड़ के आस-पास पांच छः इंच के भीतर ही भीतर उत्पन्न होती हैं और बहुत जगह में नहीं फैलतीं।

बीज की तादाद

जुदे २ स्थानों में जुदे २ परिमाण मे मूंगफली के बीज बोए जाते है। कारोमण्डल नामक स्थान मे प्रति एकड़ १५ से २० सेर तक और खानदेश मे ५५ से ८० सेर तक मूंगफली का बीज बोया जाता है। यह बात स्पेनिश नामक मूंगफली के लिये भी है।

मिट्टी चढ़ाई और गुडाई

हम पहिले जमीन की तैयारी और मूंगफली के बीज बोने की तरकीब के सम्बन्ध मे लिख चुके हैं। अब बीज बोने के बाद जो २ क्रियाए की जाती हैं, उन पर थोड़ी सी रोशनी डालते हैं।

जब बीज उग आये और उसमे बेल निकलने लगे, उस वक्त खेत मे उगने वाले घास पात और अपने आप पैदा होनेवाले पौधो को निकालकर मूंगफली के पौधो पर मिट्टी चढाना चाहिए। मिट्टी इस प्रकार चढाना चाहिये कि जिससे इनकी बेल ढक जावे। केवल ऊपरी भाग लगभग चार इन्च के अन्दाज मे मिट्टी के बाहर रहे। जब तक इसके पौधे जोर पर रहे तब तक इसी प्रकार बेलो के ऊपरी भाग को छोड़कर मिट्टी चढाना चाहिये। मिट्टी चढाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कहीं जड न टूट जाय। उपरोक्त रीति मे पौधे की टहनियो को जितना दबा दोगे उतना ही वे बढ़ती रहेगी। बढ़ने के साथ २ बढ़े हुए भाग को ढाँकते जाना चाहिए। पूरे ध्यान के साथ यह काम करना चाहिये क्योंकि इसमे थोड़ी सी भी लापर्वाही होने से मूंगफली

की गाँठो की जड़ धूप से सूख जाती हैं। इससे जड़ें निकम्मी हो जाती हैं और फलियाँ कम लगती हैं। यद्यपि मिट्टी चढ़ानेका काम बहुत सरल है तथापि उसके लिये बहुत सावधानी रखनेकी जरूरत है। जल्दी २ ढाँकने की वजह से जड़ों के टूट जाने का डर रहता है। इसलिए किसानो को इस ओर काफी ध्यान देना चाहिये।

दूसरी फ़सलों की तरह मूँगफली को भी निंदाई की जरूरत होती है। जब इसका पौधा ३, ४ सप्ताह का हो जाय, तब उसकी पहली निंदाई हाथ से करनी चाहिए। निंदाई करके घास पात निकाल डालना चाहिए। दूसरी निंदाई उस समय करना चाहिये जब फलियों का लगना शुरू हो। उस समय जमीन को ज्यादा नरम करना चाहिये, जिससे फलियाँ आसानी से जमीन में घुस सके। इसके बाद सब पौधे जब अधिक फैल जावे तब निंदाई करने की जरूरत नहीं। इस फ़सल को २ या ३ बार से अधिक निंदाई करने की जरूरत नहीं और वह भी आरम्भिक अवस्था में।

सिंचाई

खेती के जानकार लोगों का कहना है कि जिन जगहों पर बरसात की औसत ४० इञ्च से ज्यादा है वहाँ मूँगफली को पानी (आबपाशी) देने की जरूरत नहीं। इस फसल को गरम और शीतोष्ण जलवायु की जरूरत होती है। फ़सल के ठीक पक जाने पर बरसात गिर जाय और वह न काटी जाय तो उसके बिगड़ जाने का डर रहता है। क्योंकि इससे फ़सल मे अंकुर निकलने

लगता है और फली में फंफदन लग जाती है। बीजारोपण के दूसरे और तीसरे माह तक इस फसल को बहुत कम ठंडाई की जरूरत होती है। यह फसल बिना सिचाई के उस समय तक रह सकती है, जब तक कि उसके पौधों मे फल न आवे और फली बनना आरम्भ न हो। जब मूंगफली अकेली बोई जाय और सिचाई करनी हो तो खेत को बराबर करने के बाद उसमें ६ फीट चौड़ी और ६ फीट लम्बी क्यारियाँ बनानी चाहिए। ऐसी क्यारियों से सिचाई मे बहुत आसानी होती है। यह याद रहे कि क्यारियाँ इतनी समान हो कि उनमे पाव इञ्च की भी ऊँच नीच काम की नहीं। खेत मे जरूरत के मुताबिक आल होनी चाहिए। जरूरत से कम या ज्यादा आल होने से फसल को नुकसान होने का डर रहता है। यदि आल अधिक हुई तो फसल के गल जाने का डर रहता है और कम हुई तो अकुर नही निकलते। मूंगफली की फसल को सिचाई की सबसे ज्यादा जरूरत फूल और फली बनने समय लगती है। यही कारण है कि इसकी खेती ज्यादातर बरसात के दिनों मे करते है। यदि बरसात समय समय पर होती रही तो कुएँ आदि से सिचाई करने की जरूरत नही रहती। सामान्यतः उन जमीनो मे जहाँ नहरो से आबपाशी की जाती है, बीज बोने के पहले एक बार पानी दिया जाता है। जहाँ पानी नहीं दिया जावे वहाँ बुआई के एक सप्ताह बाद देखना चाहिये कि बीज में अंकुर निकले या नहीं। यदि बरसात की कमी तथा जमीनों में काफी आल न होने के कारण अंकुर न निकलें तो

थोड़ा २ पानी देना चाहिये। पानी बहुत पतला देना चाहिये, जिससे वह तीन चार पहर में सूख जाय। दूसरा पानी उस समय दिया जाता है जब यह मालूम होजाय कि फसल को अब सिचाई की जरूरत है, और इसका अन्दाजा किसान को खुद करना चाहिए। जब तक सुबह सूर्य की गरमी से पहले पौधे बलवान और चैतन्य शील दिखाई दें, उस समय तक सिंचाई की कुछ भी जरूरत नहीं है। सामान्यतः पहली सिंचाई से दूसरी सिचाई का फासला दस पन्द्रह दिनों का होता है। अर्थात् जब पत्ते मुरझाने लगते हैं तब दूसरी सिंचाई की जाती है। फसल के पकने से दो महीने पहले उसको सिंचाई की बहुत ही जरूरत होती है। यह वह समय है जब जमीन में फलियाँ बनती हैं। जब इसमें से टहनियाँ व डालियाँ बाहर निकल आती हैं, तब सिंचाई की अधिक जरूरत नहीं रहती। अकसर बीज बोने से पाँच महीने बाद सिन्चाई बंद कर देना चाहिए, जिससे कि फसल अच्छी तरह पक जावे; क्योंकि इस समय फलियाँ बन जाती हैं।

फसल काटते समय भी एक पानी इस मतलब से दिया जाता है कि मिट्टी ठीक नरम हो जाय जिससे मूँगफली को इकट्ठी करने में मुश्किल न हो।

खुदाई

मूँगफली की खुदाई का काम किस वक्त शुरू करना चाहिये, इसको जानना बहुत जरूरी है। नये किसान यह गलती कर

डालते हैं कि फसल के पकने के पहले ही वे खुदाई शुरू करदें अथवा फसल को पूरी तौर पर पकने के बाद भी खेत ही में रहने दें। उन्हे यह ध्यान में रखना चाहिये कि यदि फलियाँ पकने से पहले ही खोद ली जाती है तो उससे बहुत नुक़सान होता है। क्योंकि वे सूखने पर सिकुड़ जाती हैं और इससे बहुत सी फलियाँ खाली मिलती हैं। इससे उपज कम बैठती है और उसकी जाति भी बिगड जाती है। यदि पकी हुई फलियाँ खेत मे ज्यादा दिनो तक रखी रही तो उनके डंठल सूखकर फलियों से अलग हो जाते हैं, जिससे फलियाँ निकालने मे अधिक मेहनत करनी पडती है। इसके अलावा अगर इस वक्त पानी बरस गया तो फलियाँ अंकुर छोड़ देती है और सारी की सारी फसल बिगड़ जाती है।

साधारणत: जब पौधा पीला पड़ने लगे तो समझ लेना चाहिये कि फसल पकने लगी है। कई जानकार किसान खेत को देख कर कह सकते हैं कि फसल काटने लायक हो गई है या नहीं। इस समय वे अपने अन्दाज की सचाई की जाँच, थोड़ी सी फलियाँ जमीन से निकाल कर, कर लेते हैं और बाद मे खुदाई का काम शुरू कर देते हैं। खुदाई तीन तरह से की जाती है—(१) पौधों को जमीन मे उखाड कर (२) खुरपी से जमीन को खोद कर (३) बख्खर चला कर। यदि खुरपी से फलियाँ खोदना हो तो पौधे के डंठल व पत्तों को पहिले काट देना चाहिये। ये पत्ते ढोरों के खाने के काम मे आते हैं। यदि बख्खर चला कर फलियाँ

निकालना हो और खेत की जमीन कुछ कड़ी हो तो हलकी सी सिंचाई कर देनी चाहिये। अगर हाथ से पोधों को उखाड़ कर फलियाँ निकालना हो तो यह अच्छी तरह देख लेना चाहिये कि जमीन के अन्दर कोई फलियाँ तो न रह गई हैं। उखाड़ने के बाद फलियो की मिट्टी खेर देना चाहिये और उन्हे धूप मे सूखने के लिये डालना चाहिये। जब ९-१० दिन के बाद वे अच्छी तरह सूख जावे तो उन्हे इकट्ठा कर लेना चाहिये। कई किसानों का तजुर्बा है कि फलियाँ चारपाई पर सुखाई जाएँ तो और भी अच्छा है, क्योंकि ऐसा करने से उन्हें सीड़ (चेपी) नहीं लगती और उठाने धरने मे उनमे लगी हुई मिट्टी भी खिर जाती है। कई जगह पौधों का फलिया सहित उखाड़ लेने के बाद फलियाँ बाँध लेते हैं। जब ये सूख जाती हैं तो थोड़े से हिलाने या हलके २ पीटने पर सब फलियाँ पौधे से अलग हो जाती हैं। इस तरह फलियाँ निकालने मे ज्यादा तकलीफ नहीं होती और एक चतुर आदमी इस काम को सहज ही कर सकता है।

साधारणतः एक एकड मे लगभग ५ हजार तक पौधे होते हैं और एक पौधे मे अच्छी फ़सल होने की हालत में १०० से १५० तक फलियाँ लगती हैं। खानदेश के गवर्नमेन्ट फार्म मे "स्पेनिश पनिट" नाम की जाति बोने से एक एकड़ पीछे लगभग २०-२५ मन तक पैदावार हुई है। कई कृषि-विशारदों का कथन है कि परिश्रम के साथ खेती करने पर इससे भी ज्यादा पैदावार हो सकती है।

फलियों में छिलकों का परिमाण

फलियों में २४ प्रति सैकड़ा से लगाकर ३० प्रति सैकड़ा तक छिलके रहते हैं और बाकी के दाने। बिना आबपाशी के बोई हुई फसल में अधकचरी व बठ्ठर पड़ी हुई फलियाँ ज्यादा रहती हैं। अतएव इस प्रकार की फसल में छिलकों का परिमाण ज्यादा रहता है।

मूंगफली के शत्रु

मूंगफली के भी बहुत दुश्मन हैं। इसे गादड़, गिलहरी, चूहे, सूअर, दीमक, तितली तथा दूसरे अनेक प्रकार के कीड़े, मकोड़े तथा अन्य जीवाणुओं से बहुत हानि पहुँचती है। इसलिये इसकी खेती में ठीक सम्भाल की बड़ी आवश्यकता है। कई कीड़े तो इसे बड़ा ही नुकसान पहुँचाते हैं। वे जड़ों के सिरों को काट डालते हैं, और जब पौधा सूख जाता है तो दूसरों पर जा चिपटते हैं। वे उसे भी इसी तरह सुखा देते हैं। कई कीड़े इसके पत्तों को चाट जाया करते हैं। पर अधिकतर देखने में आया है कि ये छोटे २ कीड़े ताजी खाद देने या लगातार मूंगफली की फसल बोने से होते हैं। नागपुर की कृषि प्रयोगशाला के विद्वानों का मत है कि अगर इन कीड़ों से फसल को बचाना हो तो हेर-फेर कर फसल बोना चाहिये तथा हमेशा ताजा और बन सके तो नई जाति का बीज काम में लाना चाहिये। इसके साथ ही फसल को ताजा खाद न देकर सड़ा हुआ गोबर खाद देना चाहिये। इस प्रकार

उपाय कर लेने पर 'कट वर्क्स' (Cut worms) नामक कीड़े फ़सल को नुकसान न पहुँचा सकेंगे। इतने पर भी यदि कीड़ों का आक्रमण हुआ तो दो भाग चूना और एक भाग सूखी राख मिला कर पौधों पर छिड़कना चाहिये। कहीं २ नौसादर और चूने का मिश्रण भी काम में लाने से फ़ायदा हुआ है।

उपरोक्त कीड़ों के अतिरिक्त दीमक व बाल वाली तितली व कम्बली पुची व बर पुची आदि कीड़ों से भी मूँगफली को नुकसान होता है। दीमक से हर तरह की फसलों को कितना नुकसान होता है, इस को सब किसान अच्छी तरह जानते हैं। कई जगह देखा गया है कि जब दीमक खेत में दिखाई देते हैं, उस समय किसान लोग अपने खेतों में १०-२० हंडियों में गोबर भर कर उन्हें रख देते हैं। इसमें दीमक खेतों को छोड़ कर गोबर में जा छिपते हैं। किसान हंडियों में दीमक वाला गोबर निकाल कर दूर फेंक देते हैं। यह क्रिया दो चार बार करने से बहुत से दीमक नष्ट हो जाते हैं। कहीं २ जब कि फ़सल आबपाशी के द्वारा तैयार की जाती है तो इस तरकीब को काम में लाने के पहिले एक तरकीब और की जाती है। वह यह है कि जब खेत को पानी दिया जाता है तो जिस नाके से खेत को पानी पहुँचता है, उस पर एक एक नमक की और एक हींग की पोटली रख दी जाती है, जिस में कि हींग और नमक घुल २ कर सारे खेत में फैल जाते हैं और सब दीमकों को एक दम ऊपर ले आते हैं। दीमक को मिटाने के और भी तरीक़े हैं।

(१) अकौवे की जड़ के चूर्ण को पानी में घोल कर खेत में देना चाहिये। इस चूर्ण से न केवल दीमक ही नष्ट हो जाते हैं, बल्कि फ़सल को भी फायदा पहुँचता है।

(२) खेत में सरसों की खली या नीम की खली का खाद देने से भी दीमक भाग जाते हैं।

(३) खेत की अच्छी तरह निदाई करने से दीमक मिट जाते हैं।

बाल वाली तितली व टिड्डी

यह तितली मूंगफली को बहुत पसंद करती है। जिस खेत पर यह पड़ गई तो वहाँ बहुत बड़े रकबे की फलियाँ नष्ट हो जाती हैं। इन तितलियों को भगानेके लिये किसान खेत के आस पास कूड़ा करकट जला कर धुआँ करते हैं। पर इस तरकीब से हमेशा सफलता नहीं होती। इसके अलावा टिड्डी से भी इस फसल को बहुत हानि पहुँचती है। इन तितलियों या टिड्डियों को केवल जाल के द्वारा पकड़ कर दूर छोड़ देने से फसल की रक्षा की जा सकती है।

कम्बली पुची (Kambli Puchi)

यह कीड़ा मद्रास प्रान्त में पाया जाता है। इससे फसल को बहुत हानि होती है। कभी २ तो यह सारी फसल को ऐसी निकम्मी बना देता है कि फलों में छिलके के अलावा और कुछ भी

शेष नहीं रहता। भारत सरकार के वनस्पति-शास्त्र-वेत्ता (Botanist) मि० बारबर ने इस कीड़े से फसल को बचाने के लिये नीचे दिये हुए उपाय बताये हैं:—

(१) खेत के आस पास अगर कहीं झाड़ी हो तो उसको निकाल कर फेंक देना चाहिये और चारों ओर कठोर मिट्टी की पाल बना देना चाहिए जिससे दूसरे खेत के कीड़े फसल पर आक्रमण न कर सकें।

(२) यदि खेत के आस पास सीधे गहरे गड्ढे खोद दिये जायँ तो उनसे भी कीड़ों के आक्रमण में बहुत रुकावट होगी। क्योंकि जितने कीड़े खेत में घुसने का प्रयत्न करेंगे वे सबके सब गड्ढों में गिर जायँगे और फिर बाहर नहीं निकल सकेंगे।

(३) इन कीड़ों की बाल्यावस्था में अर्थात् जब ये तितली के रूप में न हो जावें, तब खेत के आस पास ढूँढ ढूँढकर छोटे २ बच्चों को बटोर लेना चाहिये। ऐसा करने से भी फसल की रक्षा हो सकेगी।

(४) 'पारसग्रीन' नामक ज़हर को बाजार से खरीद कर खेत के आस पास छिड़क देना चाहिये। यह ज़हर अंग्रेजी दवाई बेचने वालों के यहाँ मिल सकता है।

टीका—कुछ वर्षों पहिले जब कि किसान हेर फेर कर खेती करने के महत्व को नहीं समझते थे, तब मूंगफली को 'टीका' नामक रोग से बहुत नुक़सान होता था। वास्तव में टीका एक भयंकर रोग है और मद्रास, जावा व बम्बई हाते में अब

।भी इसकी अधिकता है। यह अक्सर फसल को जला डालता है। इससे फलों में गिरी पूरी तरह नहीं बढ़ने पाती। इसका केवल यही उपाय है कि फसल को हेर फेर कर बोया जाय। इसके साथ ही यह भी देखा जाय कि फसल का बीज शीघ्र पकने वाला हो।

चावल की खेती

चावल हिन्दुस्तान की खास फसलों में से है। कहा जाता है कि यह संसार के आधे से ज्यादा मनुष्यों का मुख्य भोजन है। इसका इतिहास बहुत ही पुराना है। संसार का सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद है। उसमे भी इसका जिक्र है। चीन के प्राचीन ग्रन्थों मे चावलो के उल्लेख पाये जाते हैं। इससे मालूम होता है कि चीन मे आज से ५००० वर्ष पूर्व धार्मिक उत्सवों के अवसर पर, देवी देवताओं के चढ़ाने के लिये, इनका उपयोग किया जाता था। उन दिनों वहाँ चावलों की खेती का खास सम्मान प्राप्त था। जन साधारण को चावल बोने का अधिकार नहीं था। खास चीन सम्राट् ही को इसकी खेती करने का उच्च सम्मान प्राप्त था। इस विषय का उल्लेख करते हुए महाविद्वान स्टेनिकस जूलियन ने लिखा है ईसवी सन् के २८०० वर्ष पूर्व चीन से तत्कालीन सम्राट् चिन-नन ने एक घोषणा पत्र निकाल कर आम तौर से यह ऐलान किया था कि सिवा सम्राट् के किसी को चावल बोने

का अधिकार नहीं है। हाँ, केवल सम्राट् के सम्बन्धी चावल की निम्न श्रेणियों मे से ४ तरह के चावल बो सकते हैं।

सिरिया देश मे ईसवी सन के ४०० वर्ष पूर्व चावल की खेती होने के ऐतिहासिक प्रमाण मिले है। सुप्रसिद्ध पाश्चात्य भाषा शास्त्री मि० कॉफर्ड का मत है कि सिरिया मे बोये जाने वाले चावल सबसे पहले भारत ही से लाये गये थे।

यूरोप मे चावल को खेती का इतिहास बहुत पुराना नही है। सब से पहले ईसवी सन १४६९ मे इटली के पीसा नगर के आस पास चावल बोया गया। इसके बाद अरब लोगो ने स्पेन मे इसका प्रचार किया। ये लोग इसे आरूज (Aruj) के नाम से पुकारते थे। अमेरिका वालों ने तो ईसवी सन् १७०० तक चावल का नाम भी नहीं सुना था। कुछ भी हो चावल का इतिहास बहुत पुराना है। जावा, वोर्नियो, जापान आदि कई देशों मे यह बड़ा पवित्र माना जाता है। जावा के लोग इसे 'देव श्री' नामक देवता का प्रसाद समझते हैं। फारस देश मे भी यह पवित्र माना जाता है। भारतवर्ष के सम्बन्ध मे तो कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। यहाँ तो प्रत्येक शुभ काम मे चावल को अग्रस्थान प्राप्त है।

जापान में भी शुभ अवसर पर चावल का उपयोग किया जाता है। अभी ईसवी सन् १९२४ में जब जापान के युवराज का विवाह हुआ था, तब नव दम्पत्ति को सुखमय जीवन व्यतीत करने की शुभ आकांक्षा से चावल की रोटी भेट की गई थी।

भिन्न २ देशों में होनेवाली धान की खेती का परिमाण

यों तो धान की खेती संसार के प्राय: सभी प्रदेशों में कुछ न कुछ अंशों में होता है। पर भारत, जापान, पूर्वीद्वीप समूह नेदरलैण्ड्स, फ्रेन्च इण्डोचीन और श्याम आदि देशों के नाम उपज की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। इन देशों में इसकी खेती प्रधानता से होती है।

इस बात का ठीक-ठीक पता लगाना बड़ा कठिन है कि कौन से देश में कितनी तादाद में प्रति वर्ष चावल की कितनी पैदावार होती है। क्योंकि कई देशों में ठीक ठीक परिमाण ज्ञात करने के लिये उपयुक्त साधन नहीं हैं। अमेरिका, भारत और जापान आदि देशों की सरकारों ने इस विषय की रिपोर्ट लेने के लिये विशेष प्रबन्ध कर रक्खा है जिससे इन देशों के ठीक ठीक अंक प्राप्त करने में कठिनता नहीं होती। परन्तु चीन तथा कई अन्य देशों के जहाँ पैदावार का प्राय: सारा भाग वहीं खर्च हो जाता है और नाम मात्र भी चावल अन्य देशों में नहीं भेजा जाता, ठीक ठीक अंक प्राप्त करना बहुत कठिन है।

चावल की खेती के सम्बन्ध में 'इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट' तथा 'इण्डियन ट्रेड इन्क्वायरी कमिटी' ने कई महत्व-पूर्ण रिपोर्टें प्रकाशित की हैं। इन रिपोर्टों से पता चलता है कि संसार के सब देशों में मिला कर लगभग ६ करोड़ टन चावल पैदा होता

है। इसमें से कोई ३ करोड़ ५० लाख टन चावल तो केवल ब्रिटिश भारत और ब्रह्मा ही में पैदा होते हैं।

इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट ने बड़ी खोज और मेहनत से भिन्न-भिन्न देशों में पैदा होने वाले चावल के अंक प्राप्त किये हैं उक्त संस्था बहुत परिश्रम करने पर भी चीन में बोये जाने वाले चावल के ठीक ठीक अंक प्राप्त नहीं कर सकी है। अतएव चीन को छोड़ कर इस संस्था के द्वारा प्राप्त किये गये शेष देशों के अंक यहाँ दिये जाते हैं—

	देश का नाम	पैदावार टनों में (प्रति वर्ष)
१	ब्रिटिश भारत (देशी राज्य एवं ब्रह्मा सहित)	३,५०,००,०००
२	जापान राज्य (फारमोसा और कोरिया सहित)	१,०६,००,०००
३	नेदरलेण्डस, ईस्ट इण्डीज (जावा, सुमात्रा सहित)	४२,५०, ०००
४	फ्रेञ्च इण्डो चीन	३५,००,०००
५	श्याम	२५,००,०००
	(उपरोक्त देश पैदावार की दृष्टि से मुख्य हैं)।	
६	युनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका	५,२०,०००
७	फिलीपाइन टापू	५,००,०००
८	मेडागास्कर	४,५०,०००
९	मिश्र	३,६६,०००

देश का नाम	(पैदावार टनो में प्रति वर्ष)
१० इटली	३,२०,०००
११ ब्राजील	२,५०,०००
१२ फारस	२,५०,०००
१३ लंका	१,७२,०००
१४ ट्रान्सकाकेशिया और रूमी तुर्कीस्थान	१,७०,०००
१५ स्पेन	१,५०,०००
१६ मलाया	१,२१,०००
१७ ब्रिटिश गाइना	४१,०००
१८ बुखारा और खीवा	४०,०००
१९ पेरू	४०,०००
२० मेसापोटेमिया	३०,०००
२१ मेक्सिको	१५,०००
२२ युकेडर	१५,०००
२३ हांगकांग।	१५,०००

उपरोक्त अंकों को देखने से पता चलता है कि सारे ब्रिटिश भारत मे प्रति वर्ष ३ करोड़ ५० लाख टन चावल की पैदावार होती है। इस पैदावार का आधे के लगभग हिस्सा अर्थात १ करोड़ ७० लाख टन चावल पूर्वीय भारत के केवल बङ्गाल बिहार और उड़ीसा ही में पैदा होता है। मद्रास प्रेसीडेन्सी मे ५५ लाख और ब्रह्मा मे ४८ लाख टन चावल पैदा होता है। संयुक्त-प्रान्त में २५ लाख टन अर्थात् श्याम के बराबर, मध्य-प्रदेश

आसाम और बम्बई प्रेसीडेन्सी मे मिला कर ४० लाख टन अर्थात् लगभग नेदरलैण्डस और पूर्वी द्वीप समूह के बराबर तथा सिन्ध में युनाइटेड स्टेट्स अमेरिकन के बराबर चावल की पैदावार होती है।

उपरोक्त भारतीय प्रदेशो में ब्रह्मा सब मे अधिक चावल विदेश भेजता है और उस मे कम बिहार। ब्रह्मा मे प्रति वर्ष २५ लाख टन चावल यानी अपनी कुल पैदावार का आधे से भी अधिक भाग अन्य देशों को जाता है। यदि यह कहा जाय कि ब्रह्मा चावल की निकासी करने वाला संसार का सबसे प्रमुख प्रदेश है तो अनुचित न होगा।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि परिमाण की दृष्टि से भारतवर्ष चावल की खेती मे संसार के अन्य देशों से बहुत आगे है, पर जब हम यहाँ पर प्रति एकड़ होने वाली पैदावार की ओर दृष्टि डालते हैं, तो मालूम होता है कि अभी इस ओर बढ़ने की काफी गुञ्जाइश है। नीचे हम प्रत्येक देश में चावल की फी एकड़ होने वाली पैदावार के अंक देते हैं जिससे पाठक इस बात की सत्यता को भली भाँति समझ जायँ।

	देश	पैदावार की औसत प्रति एकड़
१	हिन्दुस्थान	१२८९ पोंड
२	जापान	२८७५ "
३	श्याम	१६८० "
४	अमेरिका	२२५२ "

देश	पैदावार की औसत प्रति एकड़
५ इटली	४०६२ "
६ मिश्र	२८४७ "
७ स्पेन	५८०० "

उपरोक्त अंकों से स्पष्ट प्रकट है कि अन्य प्रगतिशील देशों के सामने भारत की प्रति एकड़ औसत पैदावार कितनी कम है। स्पेन मे तो भारतवर्ष से प्रति एकड़ चौगुनी से भी अधिक और इटली मे तिगुनी से अधिक पैदावार होती है। इसी भाँति अन्य देश भी हमारे देश से प्रति एकड़ अधिक चावल उपजाते हैं। इस उन्नति के युग मे जबकि संसार के प्रायः सभी देश विज्ञान, वाणिज्य-व्यवसाय और कृषि मे एक दूसरे से आगे निकलने का प्रयत्न कर रहे हैं, भारत इतना पिछड़ा रहे, यह बात निस्सन्देह चिन्तनीय है।

भारतीय चावलों की खेती

चावल भारतवर्ष की सबसे महत्वपूर्ण फ़सलों मे से है। यह बोये जानेवाले कुल रकबे का प्रायः तिहाई भाग ढक लेता है। भारतीय कृषि-सम्बन्धी रिपोर्टों को देखने से पता चलता है कि सन् १९२४ ई० मे ९ करोड़ १० लाख एकड़ से भी अधिक भूमि मे हिन्दुस्थान मे चाल बोया गया था और उससे लगभग ८७ करोड़ मन चावलों की पैदावार हुई थी। पैदावार के उक्त अंकों से स्पष्ट पता चलता है कि भारत की अधिकांश जनता का जीवन चावल पर निर्भर है।

चावलों को धान* भी कहते हैं। धान और चावल में केवल थोड़ा सा अन्तर यह है कि जो दाना भूसी सहित होता है उसे धान कहते हैं और वही दाना भूसी आदि निकालकर साफ किये जाने के बाद चावल के नाम से पुकारा जाता है। चावलों को पकाने का तरीक़ा बहुत सीधा है। यह पदार्थ बहुत जल्दी पच जाता है। चावल जितना पुराना हो उतना ही अच्छा समझा जाता है और वह महँगे भाव में बिकता है।

धान की कई जातियाँ हैं। भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न गुणों वाली जातियाँ पाई जाती हैं। कई प्रान्तों में तो १०० से भी अधिक जातियाँ पाई जाती हैं। अलग २ जाति का धान अपने गुणों और उत्तमता के अनुसार अलग २ भाव पर बिकता है।

जलवायु—धान की खेती के लिये गर्म और तर जलवायु की आवश्यकता है। इसके पौधे की जड़ मजबूत होती हैं और वे आसानी से वर्षा और हवा बर्दाश्त कर सकती हैं। धान के लिए सिंचाई का प्रबन्ध होना बड़ा आवश्यक है। इसलिये किसानों को इसकी खेती के लिए हमेशा ऐसे ही स्थान चुनने चाहिये जहाँ आसानी से सिंचाई का प्रबन्ध किया जा सके।

भूमि—दुम्मट, मटियार दुम्मट और बलुई दुम्मट भूमियाँ धान की खेती के लिये सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। कछार की भूमि (Alluvial soil) भी इसकी खेती के लिए बहुत उपयोगी

* धान को राजपूताना और मध्यभारत में साल कहते हैं।

सिद्ध हुई है। सबसे बड़ी मार्के की बात यह है कि कछार भूमि में बिना खाद के भी बहुत अच्छी पैदावार होती है। धान के खेत समतल और चारों ओर से मेढ़ बँधे हुए होने चाहिएँ जिससे कि उनमें आसानी से पानी थम सके।

खाद

कुछ प्रान्तों में इस फसल को खाद दिया जाता है और कुछ प्रान्तों में बिलकुल नहीं। भारतवर्ष में धान की उपज को बढ़ाने के लिए खाद के प्रश्न पर बहुत सी जाँचे की गई हैं, उनसे यही मालूम हुआ है कि इसके लिए वानस्पतिक खादें—जिनमें हरी खादें भी शामिल हैं—बहुत लाभदायक हैं। यह बात हमारे किसान भाइयों को भी मालूम है कि खरपतवार को धान के कीचड़ में मिला देने से बहुत लाभ होता है। इसकी खेती में हरी खाद और गोबर के खाद की उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। सोन खाद तथा कुछ कृत्रिम खाद भी इसमें लाभ पहुँचाते हैं।

अगर गोबर का खाद देना हो तो प्रति एकड़ १५ गाड़ी के हिसाब से बरसात शुरू होने के पहले ज्येष्ठ के महीने में डालना चाहिए। जहाँ सोनखाद (विष्ठा का खाद) मिल सके वहाँ उसका उपयोग भी अधिक लाभ दायक होता है। जहाँ तालाब हो वहाँ तालाबों की सूखी मिट्टी गर्मी के दिनों में खोदकर फी एकड़ २० गाड़ी के हिसाब से डालना चाहिए। हड्डी का चूरा और सुपरफास्फेट भी धान के लिये बहुत लाभकारी खाद हैं। इनका

उपयोग अमोनियम सल्फेट अथवा सोडियम नाईट्रेट के साथ करने से और भी अधिक लाभ होता है। हड्डी का चूरा और सुपर फास्फेट खेत तैयार करने के १५ या २० दिन पहले दिये जाते हैं। अमोनिया सल्फेट और सोडियम नाईट्रेट रोपा लग जाने के बाद खेत मे डाले जाते हैं। इनके डालने के पहले पौधों को जड़ ले लेनी चाहियें। हड्डी का चूरा १॥ मन से ३ मन और अमोनियम सल्फेट तथा सोडियम नाईट्रेट फी एकड़ एक मन के हिसाब से दिये जाने चाहिएँ। अब प्रायः प्रत्येक जिले मे ये कृत्रिम खाद मिलने लगे हैं।

जहाँ आबपाशी की सुभीता हो, वहाँ सन या ढंचा की हरी खाद देने से धान की फसल को बड़ा फायदा होता है। सन का खाद देने का तरीका हम गन्ने की खेतीवाले अध्याय मे लिख चुके हैं। चावल का रोपा लगाने के एक सप्ताह पहले सन व ढेंचा की फसल को हलों से जोतकर खेत मे गाड देना चाहिये। इसके बाद क्यारियाँ बनाकर उनमे धान के रोपे लगा दिये जावें। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि अगर तीन वर्ष तक लगातार उसी खेत मे हरा खाद दिया जायगा तो चौथे साल खेत की शक्ति दुगुनी फसल पैदा करने की हो जायगी।

जुताई

खेत जितना अच्छा जोता जायगा, उतनी ही अच्छी फसल भी पैदा होगी। लकड़ी के देशी हलों से जुताई करने में अधिक समय लगता है। यदि यही काम लोहे के मिट्टी औटानेवाले छोटे

हलों से किया जाय तो अच्छा और सहज ही हो जाता है। इन हलों को मामूली बैलों की जोड़ी चला सकती है। इनके दाम भी औसत किसान की हैसियत के भीतर हैं। अब ये हल ५) रु० में भी मिलने लगे हैं।

दूसरा आवश्यक काम खेतों को बराबर करने का है जिससे कि उनके चारों कोनों में समान पानी भरा सके। जो खेत ऊँचे नीचे हों, उन्हें जुताई करते समय या खाद देते समय लकड़ी के पटिये से बराबर कर लेना चाहिये। इस पटिये की लम्बाई ५ फुट, चौड़ाई १० इञ्च और मुटाई १ इञ्च की होनी चाहिये। खेत के समान हो जाने से पानी चारों खूंट बराबर लगता है। चारों कोनों में पानी भरा रहने के कारण खेत के किसी भी भाग में नींदा नहीं जमने पाता और इससे फ़सल समान रूप से बढ़ती है। नहर से यदि पानी दिया जाय तो थोड़े समय में और मामूली पानी से खेत भरा जा सकता है।

हम ऊपर कह आये हैं कि लोहे के मिट्टी लौटाने वाले हलों से मचौआ का काम जल्द और सहज ही में हो सकता है। अतएव खेत बराबर हो जाने पर उसमें थोड़ा सा पानी भरकर लोहे के हल दो बार और चला देने चाहिये।

थरहा

चावल के खेत में थरहा का बड़ा महत्व है। इसी के ऊपर रोपा धान का सारा दारोमदार है। अगर समय पर यह अच्छा तैयार हो गया तो समझना चाहिये कि आठ आना धान हाथ

आ गया। थरहा के लिये ऐसा स्थान चुनना चाहिये जो रोपा लगाये जाने वाले खेतों के समीप हो, जहाँ पानी की सुविधा हो, और जो न बहुत ही ऊँचा हो और न बहुत ही झोल में हो। इसके साथ ही खेत खाद वाली जगह मे हो; क्योंकि थरहे के लिये बहुत खाद की जरूरत होती है। जितना अधिक खाद दिया जायगा उतना ही जल्द थरहा भी बढ़ेगा। थरहा में जहाँ तक बने सड़े हुए गोबर का खाद ४० गाड़ी फी एकड़ के हिसाब से देना चाहिये। फिर उसे खेत मे समान रूप से फैलाकर बखर से खूब मिला देना चाहिये। इसके सिवा कई बार जोत बखर कर जमीन पोली कर देनी चाहिये। गोबर के खाद से खेत में बहुधा नींदा होता है और इस कारण कभी कभी चावल का रोपा दब जाता है, इससे बचने के लिये कभी कभी किसान लोग थरहा की जगह मे सूखे कंडे या पलास की डगालें बिछाकर उनमें आग लगा देते हैं। इससे नींदा का बीज जल जाता है और थरहा भी आसानी से उखड़ आता है। खेत तैयार होजाने पर थरहा में जिस समय धान का बीज बोया जाय उस समय यह देखना चाहिये कि थरहा का खेत ज्यादा गीला तो नहीं है।

अगर खेत ज्यादा गीला रहा तो उखाड़ने में रोपे की जड़े टूट जायँगी और खर्च भी अधिक पड़ेगा। साफ किया हुआ अच्छा जमने वाला धान का बीज फी एकड़ १५० सेर छींट कर बोया जाय और ऊपर से हलका बखर चला दिया जाय। छिड़कते समय मेंड के भीतर खेत मे १॥ फुट जगह छोड़ दी जाय, क्योंकि

उस स्थान पर उगा हुआ रोपा मिट्टी पिट जाने से आसानी से नहीं उखड़ता। थरहा बरसात शुरू होते ही जून के तीसरे या चौथे हफ्ते में बो देना चाहिये। इस प्रकार से बोया हुआ रोपा ३ से ६ हफ्ते के भीतर लगाने योग्य हो जाता है।

यदि थहरा का धान जल्दी बढ़ाना हो तो पानी में सोडियम-नायट्रेट घोल कर हजारे से उसकी सिंचाई करदी जाय। ऐसा करने से धान जल्द बढ़ जायगा। पेड बढ कर तैयार होते समय जब डंडी चपटी होने लगे तो तब समझना चाहिये कि वह लगाने योग्य हो गया। यदि उसे अधिक समय तक वहीं रखा जाय तो हानि होती है, क्योंकि ज्यादा दिन के पौधों की डंडी गोल होकर उसमें गाठें पड़ने लगती हैं। इससे फिर वह दूसरी जगह नहीं लग सकता।

रोपा उखाडते समय इस बात का ध्यान रहे कि पेड़ो की जड़ें टूटने न पावें। टूटी हुई जड़ वाले पेड सब अलग कर दिये जावें और केवल अच्छे २ पेड़ों की मुठियाँ बनाई जायँ। जिस समय रोपा ९ इंच ऊँचा बढ जाय तब उसका लगाना शुरू किया जाय। यदि जल्द और देरी से पकने वाली दोनो जाति की—धानो का थरहा दिया जावे तो पहले जल्द पकने वाली और बाद में देरीसे पकने वाली धान का रोपा लगाया जाना चाहिये। रोपा लग जाने पर उत्तरा नक्षत्र में भरपूर बरसात हो गई तो धान की बहुत अच्छी पैदावार हो जाती है। जैसी कहावत है—

जो बरसे उत्तरा—भात न खाय कुत्तरा।

बाद में ३ या ४ इंच पानी खेत मे गहरा भरा रखना चाहिये, जिससे खेत मे नींदा न जमने पावे और धान की बाढ़ होती जाय।

यदि उपरोक्त सब बातें अनुकूल रहीं तो रोपा लगाये हुए खेत मे फी एकड़ २००० पौंड से ३००० पौंड तक पैदावार हो जानी बिल्कुल मामूली बात होगी।

धान बोने की दूसरी रीति यह है कि जहाँ आबपाशी की नहरे है वहाँ धान बोये जाने वाले खेतों मे मई के महीने मे पानी देकर उन्हे तीन चार बार खूब हर बखर से जोतकर गीली मिट्टी को बारीक कर ली जावे और खेत को पोला बना लिया जाय। फिर बरसात शुरू होते ही उसमे एक खास किस्म की छोटी तिफन या हाजियर्स सीड ड्रिल से जमनेवाले धान का बीज ४५ पौंड फी एकड़ के हिसाब से नौ २ इंच की दूरी पर बो दिये जायँ। इस प्रकार बोया हुआ बीज जल्द जम जायेगा और अच्छी तरह बरसात शुरू होने के पहले पौधे अपनी पूरी बाढ़ कर लेगे। यदि बीच २ मे बतर मिलती गई तो कुडों के बीच २ मे छोटे डोरे चलाकर धान की निदाई करदी जावे और यदि बतर न मिले तो लकड़ी के छोटे हल जरूर चला दिये जावे और एक निंदाई हाथ से करा दी जावे। इस प्रकार बोई हुई धान की फ़सल की पैदावार रोपा धान मे किसी प्रकार कम नहीं होती।

तीसरी रीति मचौआ या लई की है। इस रीति मे बरसात खूब शुरू हो जाने पर आर्द्रा नक्षत्र मे खेत को हलों से इस प्रकार

जोतते हैं कि खेत की मिट्टी और पानी एक दिल हो जाते हैं। बाद मे उसके ऊपर पहले से अंकुर फूटा हुआ धान का बीज ८० से १०० पोंड फी एकड़ के हिसाब से छिड़क देते हैं। बीज में अंकुर लाने के लिये पहले धान को मिट्टी के बर्तन में २४ घन्टे तक पानी मे डुबाकर रखते हैं, जिससे वह भली भाँति फूल जाय और बाद मे उसे निकालकर बाँस की टाकनियो में भरकर गरम पानी में रख देते हैं। इस क्रिया से बीज बहुत जल्द फट जाता है और जड़ें निकल आती हैं। इसमे किसानों को एक बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिये। वह यह है कि जड़ें लम्बी न होने पावें; क्योंकि लम्बी जड़ें एक दूसरे मे उलझ जाती हैं। जड़ो को बढ़ने से रोकने के लिए धान को छायादार कच्छान मे फैला देना चाहिये।

इस रीति से धान बोने में एक लाभ यह होता है कि बीज की जाँच पहले हो जाती है। दूसरे पौधा जल्द बढ़कर सँभल जाता और तीसरे खेत का नीदा भी मारा जाता है। कहावत है कि—

"चित्रा गेहूँ आर्द्रा धान, इनसे गिरुई न उनके घाम।

चौथी रीति यह है कि शुरू बरसात मे मचौआ करने योग्य पानी नहीं गिरा तो फिर किसानो को अपने खेत जोत कर कुछ सरी मे ही धान का बीज बो देना पड़ता है। यदि बीज सूखा बोया गया तो उसे 'भूरा' और यदि जमा हुआ बोया गया तो उसे 'तोया' कहते हैं। इस प्रकार बोई हुई धान की फसल अधिक बरसात होने पर पीली पड़ जाती है और उसकी बाढ़ रुक जाती

है और इससे अन्त में कम पैदावार होती है। काली भारी जमीन (जैसे काबर) में भी धान बोई जाती है, परन्तु ऐसी जमीनों के खेत बंधे होने चाहियें जिससे बरसाती पानी रोका जा सके। सूखे खेतों में बरसात के आरंभ होने के पहले धान का बीज ५० से ६० पौंड फी एकड़ के हिसाब से छिटक दिया जाता है और बखर से उसे मिला दिया जाता है।

धान की बालें निकल आने पर २२ दिन मे दाना भर जाता है और धान काटने योग्य होजाता है। धान की फसल की कटाई प्रायः मजदूर लोग ही करते हैं। धान काट कर अलग २ ढेरों में ज्यों का त्यों खेत मे डाल रखते हैं। यदि उसका चावल निकालना हो तो कटे हुए धान के ऊपर दो दिन की धूप और एक रात की ओस पड़ने देते हैं और यदि बीज के लिये जरूरत हो तो दो दिन की धूप और दो ही रातो की ओस पड़ जाने पर उसे खेत में से उठाते हैं। एक ही रात की ओस खाई हुई धान का चावल नहीं टूटता।

गाहनी

यह काम अक्सर बैलों से करवाया जाता है। इसे दिन के ठंडे भाग मे करते हैं, जिससे पैरा न टूटने पावे। यदि धान ज्यादा सूख गया हो और पैरा टूटने लगा हो तो उसके ऊपर थोड़ा सा पानी छिड़क देना चाहिये। दूसरे पहर मे अक्सर इसकी गाहनी नहीं करते। कोई कोई किसान धान के पेड़ो को हाथों से लकड़ी के पटियों के ऊपर भी पछड़वा लेते हैं, जिससे दाना अलग हो जाता

है और पैरा ज्यों का त्या बना रहता है। धान के पौधे के टूट जाने पर जानवर उसे अच्छी तरह नहीं खाते और बहुत सा भूसा फिजूल जाता है।

धान की गाहनी एक छोटे प्रेशर से भी की जाती है। इसे १॥ घोड़ा की शक्ति वाले पीटर इञ्जन में चलाते हैं। इससे गाहनी थोड़े समय व कम खर्च में हो जाती है।

धान के बीज को रखना

धान की खेती में सबसे ज्यादा महत्व का काम बीज को रखने का है। प्रायः किसान लाग धान की फसल को गाह कर कोठियों में दाना भर देते हैं और फिर उसे असाढ़ में बोने के काम में लाते हैं। धान को कुठलों या कोठियों में भरी रखने के कारण हवा का स्पर्श नहीं होता और अधिक ठंड अथवा गर्मी के कारण उसका अंकुर मारा जाता है। यही कारण है कि कुठलों का धान अच्छा नहीं जमता। बीज के धान में हमेशा हवा का खुले तौर पर स्पर्श होते रहना चाहिये। इसका लिये इस महत्वपूर्ण काम के लिये पहले पहल इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि जितना भी दाना बीज के लिये रखना हो वह सब बोरों में भर कर रखा जाय। दूसरे धान को बैसाख के महीने में कम से कम दो दिन तक धूप में सुखा लेना चाहिये।

ऊपर के लेख में मध्यप्रान्त की खेती के तरीकों पर लिखा गया है। मालवा में भी करीब करीब इसी तरह खेती की जाती है। पर

ये प्रान्त ऐसे हैं जिनमे चावल की खेती नाम मात्र को होती है। अब हम उन प्रान्तों का हाल देते हैं, जहाँ चावल की बहुत उपज होती है।

यों तो प्रायः भारत के अधिकाश भागो मे चावल की खेती होती है, पर बंगाल बिहार, उड़ीसा और छोटा नागपुर के प्रान्त चावल की खेती के लिए सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। इन प्रान्तो मे कुल ५,-२,५३,२०० एकड़ बोई जानेवाली भूमि मे से ३९८, ९३,००० एकड़ भूमि मे केवल चावल बोया जाता है। नीचे हम एक तालिका देते हैं जिससे मालूम होगा कि उपरोक्त चारो प्रान्तो में अलग अलग कितनी भूमि बोनी के काम मे आती है और उसमे से अकेले चावलो की खेती कितनी भूमि मे होती है।

प्रान्तों के नाम	कुल बोई जानेवाली भूमि	वह भूमि जिसमे चावल बोया जाता है
बङ्गाल	२,६९,८९,१०० एकड़	२,०७,०७,२०० एकड़
बिहार	१,८८,८२,८०० एकड़	१,११,२४,३०० एकड़
उड़ीसा	३०,७०,६०० एकड़	२५,६२,९०० एकड़
छोटा नागपुर	८३,१०,७०० एकड़	५४,६८,६०० एकड़
कुल भूमि	५,७२,५३,२०० एकड़	३,९८,१५३,००० एकड़

चावल की बोनी को हम ३ भागों में विभाजित कर सकते हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) बरसाती धान (Autumn Paddy) यह प्रायः अप्रैल और मई में बोया जाता है तथा अगस्त और सितम्बर में काट लिया जाता है।

(२) सियालू धान (Winter Paddy) यह मई, जून में बोया जाकर दिसम्बर, जनवरी मे काट लिया जाता है।

(३) उनालू धान (Summer Paddy) यह जनवरी और फरवरी में बोया जाता है तथा मार्च, अप्रैल और मई के महीनों में काट लिया जाता है।

आगे चल कर हम तीनों फसलों का अलग २ जिक्र करेंगे क्यों कि प्रत्येक फसल को बोने की विधि अलग अलग है।

(१) बरसाती धान

(Early or Autumn Paddy)

इस फसल के चावल को बङ्गाल मे आम, बिहार में भदोई, उड़ीसा मे बियाली और छोटा नागपुर मे गोरा कहते हैं।

जातियाँ—'आम' चावल की कई जातियाँ हैं। नौखाली और चटगाँव मे उगाया जानेवाला 'आम' चावल अन्य जिलों के चावलों मे कहीं ज्यादा अच्छा होता है। नागपुर के कृषि-विभाग ने हाल ही मे उत्तम जाति का चावल पैदा किया है।

भूमि—'आस' चावल उस भूमि को छोड़ कर, जो अधिक

गीली होने के कारण जुताई योग्य नहीं रहती, प्रायः सब तरह की भूमि पर उग सकता है। हाँ, सख्त जमीन पर, जहाँ अधिक वर्षा नहीं होती, यह नहीं उगाया जा सकता। यदि मिट्टी कुछ चिकनी हो तो इसकी पैदावार बहुत अच्छी होगी। परन्तु अधिक चिकनी मिट्टी इसकी जड़ो के विकास में बाधक होती है।

खाद—बङ्गाल और उड़ीसा प्रान्तो में चावल की खेती में प्राय गोबर, सडा हुआ घास, राख और मल-मूत्रादि का खाद काम मे लाया जाता है। बिहार और छोटे नागपुर की भूमि के लिए किसी प्रकार के खाद की आवश्यकता नहीं होती।

पैदा करने की विधि—बङ्गाल मे रबी की फसल को काटने के बाद खेत की खूब जुताई की जाती है और प्रति एकड़ ३६ सेर के हिसाब से उसमें धान का बीज बो दिया जाता है। प्राय एक हफ्ते में पौधों मे अंकुर फूटने लगते हैं। ज्यों ही पौधे ४-५ इञ्च के हुए कि उनकी निदाई (Weeding) शुरू कर दी जाती है। 'आम' चावलों की निदाई करना बड़े परिश्रम और खर्च का काम है। ज्योंही पौधों में जडों का फूटना शुरू हुआ कि भूमि सामान्य रीति से हाँकी जाती है। ऐसा करने से पौधे जल्दी बढ़ते हैं। धान (Paddy) के दो पौधो के मध्य मे कम से कम ८ इञ्च का अन्तर रखा जाता है। इसके बाद भादों और आश्विन के महीनों में फसल काटने तक कोई क्रिया नहीं की जाती। प्रति एकड़ औसतन २४ मन धान (Paddy) पैदा होता है। यदि वर्ष अच्छा हो तो ३० से ४० मन तक पैदावार होती है।

यदि ऊसर जमीन को 'आस' चावल की खेती के लिए तैयार करना हो तो उसे आषाढ़ या श्रावण के महीने में एक बार हाँक देना चाहिए। इसके उपरान्त माघ महीने में ४ से लेकर ८ बार तक लगातार जुताई करनी चाहिए। खेत में के ढेले फोड़ डालना चाहिए तथा घास-पात को जला कर उसकी राख को खेत में फैला देना चाहिए। यदि जमीन बहुत सूखी हो अथवा उसमें बहुत अधिक ढेले और घास-पात हों तो जुताई खूब ध्यान और मेहनत से करना चाहिए। जब जमीन तैयार हो जाय और उसमें नया घास-पात उगना शुरू होने लगे, उसी समय बीज बो दिया जाना चाहिए। अधिक वर्षा के कारण बोनी के बाद खेत में पपड़ी जमने लगे तो उसे मिट्टी बराबर करने के यन्त्र (Rake) द्वारा हाँक कर बराबर कर देना चाहिये। इस बात का खूब ध्यान रखना चाहिए कि बीजों से अंकुर फूटने तक धरती खूब नर्म और अच्छी रहे। जब पौधे ६ इञ्च ऊँचे हो जावें तब पहली बार निंदाई (Weeding) करना चाहिए। जब पौधे ढाई फीट ऊँचे हो जायँ तब अन्तिम बार निंदाई करना चाहिए। फ़सल पक कर तैयार हो जाय तो धान को काट कर, फटकने और साफ़ करने के बाद चावलों को धूप में सुखा देना चाहिए। यदि चावल भली भाँति सुखाया गया तो ६ वर्ष तक उसका कुछ भी न बिगड़ेगा।

बिहार

बरसाती (Autumn Paddy) को बिहार में 'भदोई' कहते हैं। इस प्रान्त में 'भादोई' चावलों की खेती का तरीक़ा

बहुत आसान है। यह चावल यहाँ अधिकांश ऊँची जमीन पर लगाया जाता है। वर्षा प्रारम्भ होने के बहुत पहले ही खेतों की जुताई कर दी जाती है और जून के महीने में बीज बो दिया जाता है। पौधों के कुछ बड़े होने पर निदाई की जाती है। सितम्बर के महीने में फ़सल के पक कर तैयार हो जाने पर काट ली जाती है।

उड़ीसा

रबी की फ़सल कटने के बाद ही इस प्रान्त मे चावल बोने की तैयारियाँ होने लगती हैं। खेत, जो कि बहुत ऊँची जमीन पर होते हैं, फाल्गुन मास मे ५-६ बार भलीभाँति जोते जाते हैं। इसके बाद ज्येष्ठ मास में खेतों में खाद दिया जाता है। वर्षा की पहली बौछार के साथ ही प्रति एकड़ एक मन के हिसाब से बीज बो दिया जाता है। अंकुरोत्पत्ति मे सहायता पहुँचाने के लिए बोनी के तीसरे दिन फिर जुताई की जाती है। कुछ ही दिनो बाद पौधों मे अकुर निकल आते हैं। बोनी के १ मास बाद खेत की निंदाई की जाती है। आवश्यकता पड़ने पर कुछ दिनों के बाद फिर एक-दो बार निदाई की जाती है। इसके पश्चात् भादों मास में फसल काट ली जाती है।

छोटा नागपुर

बरसात की पहली झड़ी के बाद ही माघ महीने में इस प्रान्त में खेत की जुताई शुरू कर दी जाती है। माघ से लगा-

कर ज्येष्ठ आषाढ़ तक पन्द्रह-पन्द्रह दिन के अन्तर से जुताई होती रहती है। आषाढ़ महीने में प्रति एकड़ एक मन के हिसाब से बीज बो दिया जाता है। बोनी के तीसरे दिन साधारण जुताई की जाती है और व्यर्थ का घासपात आदि निकाल बाहर किया जाता है। इसके बाद में भादों और आश्विन में फसल के कट जाने तक कोई क्रिया नहीं जा सकती।

भली भाँति उबालने, सुखाने और फटक कर साफ़ करने के बाद १ मन धान (Paddy) मे से प्राय २७ सेर चावल निकलता है।

(२)सियालू धान (Winter Paddy)

सियालू धान को बङ्गाल मे आमन, बिहार मे अघानी, उड़ीसा में सारद और छोटा नागपुर मे डान कहते हैं।

बंगाल

इस भाँति के धान की सबसे अधिक पैदावार बङ्गाल मे होती है। बङ्गाल का यह चावल प्राय: आसपास के सभी प्रान्तो का मुख्य भोजन है। सरकारी रिपोर्टों से पता चलता है कि चारों प्रान्तों में कुल मिला कर ?, १५, ३६,००० एकड़ भूमि सियालू धान (Winter Paddy) बोने के लिये काम में लाई जाती है।

जातियाँ—'आमन' धान की कई जातियाँ है। कृषि विद्या के आचार्य ए० सी० सेन महोदय अपने बर्दवान जिले में किये गये

प्रयोगों की रिपोर्ट में लिखते हैं कि केवल इसी एक जिले में सियालू धान की १००० से अधिक भिन्न भिन्न जातियाँ हैं। टिपेरा में उक्त धान की २०० से अधिक जातियाँ बतलाई जाती हैं। उत्तरी और पूर्वी बङ्गाल के मुख्य मुख्य-धान प्रधान प्रदेशों (Paddy growing areas) में १००० से अधिक भिन्न-भिन्न जातियों का उल्लेख किया जाता है। बर्दवान की प्रयोगशाला में भिन्न-भिन्न जिलों को ६ जाति के सबसे बढ़िया चावलों को लेकर जाँच की गई तो मालूम हुआ कि बाँसमती नाम का धान सब धानों से बढ़कर है। बिहार की डुमराव प्रयोगशाला मे भी इसी भाँति के प्रयोगों से बाँसमती चावलों का सब से बढ़िया होना सिद्ध हुआ है।

भूमि:—सियालू धान को बोने के लिए कछार भूमि (Alluvial land) सबसे अच्छी समझी जाती है। यह भूमि नीची होनी चाहिये, जिससे उसमे भली भाँति पानी ठहर सके, तथा इसकी मिट्टी कम या अधिक परिमाण मे चिकनी होनी चाहिए।

खाद—बहुत से स्थानो मे सियालू धान (Winter Paddy) के लिए कोई खाद प्रयोग मे नहीं लाया जाता। कुछ स्थानों में गोबर का खाद दिया जाता है। बर्दवान जिले मे खली का खाद काम में लाया जाता है। कृषि-विद्या-विशारद ए० सी० सेन महोदय का कहना है कि धान की खेती के लिये हड्डी के चूरे का खाद भी बहुत आवश्यक वस्तु है।

पैदा करने की विधि:—सियालू धान (Winter Paddy) दो तरह बोया जाता है। (१) छींटा देकर (बिखेर कर) बोना।

(२) पहले पौधघर * (Nursery) में बोना और फिर कुछ बड़े हो जाने पर पौधों को खेतो मे रोप देना (Transplanting)।

(अ) छींटा देकर बोया जाने वाला (Broad-casted) सियाल धान—

बङ्गाल:—बङ्गाल मे अधिक तर चावल इसी तरह बोया जाता है। इसमे अधिक मेहनत की आवश्यकता नहीं होती। केवल साधारण चावल ही इस भाँति बोये जाते हैं। अच्छी जाति के चावल इस तरीक़े से नहीं उगाये जाते।

बङ्गाल और बिहार प्रान्तो मे 'आस' चावलो की फसल अगहन मे काटली जाती है। फिर माघ मे एक दो बार खेत की जुताई करदी जाती है। इसके बाद बैसाख-ज्येष्ठ मे फिर जुताई की जाती है और ३० से ३६ सेर तक प्रति एकड़ के हिसाब से बीज बो दिया जाता है। थोड़े-थोड़े दिनों के अन्तर मे आवश्यकतानुसार २-३ बार निदाई (Weeding) की जाती है। कुछ स्थानों पर पौधो के ८ इञ्च के करीब बढ़ जाने पर एक छोटे हल से साधारण हँकाई की जाती है और फिर निदाई की जाती है। प्रायः एक एकड में २०-२२ मन तक धान निपजता है।

उड़ीसा – इस प्रान्त मे छींटा देकर बोये जाने वाले धान की दो किस्मे होती है। (१) गुरु (२) लघु। 'गुरु' नामक धान को बोने की विधि निम्नाङ्कित है—

*असली खेत में रोपे जाने के पहले जिस जगह पौधे कुछ इञ्च बढ़ने तक परवरिश पाते रहते हैं, उसे पौधघर (Nursery) कहते हैं।

फाल्गुन या चैत्र मे वर्षा के शुरू होते ही खेत मे पहली बार जुताई की जाती है। फिर खेत मे खाद की छोटी-छोटी ढेरियाँ लगादी जाती हैं। वर्षा के प्रारम्भ होते ही ज्येष्ठ मास में फिर २-३ बार खेत हाँका जाता है और सारा खाद भली भाँति खेत में बिखेर दिया जाता है। तत्पश्चात् प्रति एकड़ १ मन के हिसाब से खेत मे बीज छींट दिया जाता है। बीज को मिट्टी से भली भाँति ढकने के लिये फिर एक बार जुताई की जाती है। पानी का प्रबन्ध बाँधो द्वारा किया जाता है। परन्तु यदि पानी की कमी होतो कृत्रिम नहरो द्वारा पानी पहुँचाना पड़ता है। पौधों के १ फुट बढ़जाने पर निंदाई (Weeding) की जाती है और तैयार हो जाने पर अगहन या पौस में फसल काट ली जाती है।

'लघु' नामक धान ऊँची जमीन पर बोया जाता है। कार्तिक मास में पहले की फसल काट लेने के उपरान्त अगहन में दो-तीन बार जुताई की जाती है। फिर पौष में मूँग बो दिये जाते है। चैत मे उक्त फसल के काटने के बाद बैसाख ज्येष्ठ मे खेत 'गुरु' जाति के धान ही की तरह भलीभाँति हाँका जाकर उसमे बीज छींट दिया जाता है। फसल के एक फुट बढ़ जाने पर जुताई की जाती है। १५-२० दिन बाद भादो मे फिर एक बार जुताई तथा निंदाई की जाती है। यह फसल कार्तिक या अगहन मे तैयार होती है।

छोटा नागपुर:—इस प्रान्त मे छींट कर बोये जाने वाले (Broad casted) धान की विधि प्राय वही है जो उड़ीसा प्रान्त

में 'गुरु' नामक धान की है। 'गुरु' धान बोने की विधि का वर्णन पहले किया जा चुका है, अतएव उसे दुहरा कर हम पाठकों का समय नष्ट नहीं करना चाहते।

(ब) रोपा जाने वाला सियालू धान (Transplanted-winter Paddy)*

इस तरीक़े से फसल बोने मे मेहनत और कष्ट होता है, पर बुद्धिमान और होशियार कृषक इसी विधि को काम में लाते हैं। क्यों कि इस तरीक़े को काम मे लाने से छींट कर बोये जाने वाले धान (Brad casted Paddy) की अपेक्षा उपज तो अधिक होती ही है, साथ ही धान भी बढ़िया जाति का निपजता है।

बंगाल --बंगाल प्रान्त मे इस प्रकार के चावल बोने की विधि यह है---पहले एक उपयुक्त स्थान अथवा बाड़ा (पौध घर) चुना जाता है, जो उस खेत के निकट होता है, जिसमे पौधे रोपे जाते हैं। इस स्थान अर्थात् पौध घर को वैशाख या ज्येष्ठ मे पहले ४-५ बार हल चला कर खूब साफ तथा बराबर कर डाला जाता है। फिर बीज, जो कि २४ घंटे तक पानी मे भिगोया जाने के बाद २ या तीन दिन तक चटाईयो से ढक कर रक्खा गया हो, प्रति एकड़ तीन मन के हिसाब मे उक्त पौध घर मे छींट देते

*पहले बीज पौध घर(Nursery) में बोया जाता है और जब पौधे कुछ बड़े हो जाते हैं तो खेत में लाकर रोप दिये जाते हैं। अंग्रेज़ी में इस विधि को 'ट्रान्सप्लेन्टिंग' (Transplanting) कहते हैं।

हैं। जब पौधे १ फुट बड़े हो जाते हैं तो श्रावण मास में उन्हें पहले से तैयार किये हुए खेत में रोप देते हैं।

पौधों को रोपने के लिये भूमि को तैयार करने में अधिक मेहनत की आवश्यकता नहीं होती। पहले आषाढ़ महिने में २ या ३ बार पानी में खेत की जुताई की जाती है। एक हफ्ते बाद फिर हल चलाया जाता है और पौधे रोप दिये जाते है। तत्पश्चात् एक दो बार निराई करने के अतिरिक्त फसल के काटने तक और कोई क्रिया नहीं करनी पड़ती।

बिहारः - इस प्रान्त मे सियालू धान की एक ही मुख्य जाति है, जिसे 'अघानी' कहते हैं। हन्टर महोदय 'अघानी' धान की खेती के विषय मे अपनी कृषि-सम्बन्धी रिपोर्ट मे लिखते हैं—"जून या जुलाई महीने मे वर्षा के प्रारम्भ होते ही २ या ३ बार पौधघर की भूमि भली भाँति होकी जातीहै। फिर उसमे बीज छींट दिया जाता है। यह जमीन हमेशा नम और पानी से तर रक्खी जाती है। एक या डेढ़ मास मे पौधे करीब १ फुट ऊँचे हो जाते हैं, तब प्रत्येक पौधा सावधानी के साथ निकाला जाता है और पहले से तैयार किए हुय खेत मे रोप दिया जाता है। यह काम अधिकांश स्त्रियां करती हैं। ये पौधे कतारों मे रोपे जाते हैं। दो पौधों के बीच मे ६ या ७ इञ्च का अन्तर रहता है। धान की खेती मे पानी ही सबसे मुख्य वस्तु है। यदि सितम्बर अक्टूबर मे पानी न बरसा और अभाग्यवश नहरो आदि के असमय में सूख जाने के कारण फसल को भली भांति पानी न दिया जा सका तो

सब पौधे मुरझा जावेंगे और जानवरों को खिलाने के अतिरिक्त उनका कोई उपयोग न होगा। पर यदि समय पर वर्षा हो गई और सिंचाई आदि का प्रबन्ध ठीक रहा तो नवम्बर दिसम्बर में फसल पक जाती है और काटली जाती है।"

उड़ीसाः—इस प्रान्त में पहले पौध घर (Nursery) के लिये चुने गये स्थान में ५-६ बार हल हाँका जाता है। बैसाख में साधारण वर्षा के बरसने पर उक्त भूमि में खाद दिया जाता है। फिर जमीन जोती जाती है और बीज छींट दिया जाता है। यदि मौसम सूखा हो तो बीज को भी भिगो कर बोना चाहिये। जब पौधे १ या १॥ फीट ऊँचे हो जायँ तो सावधानी से बाहर निकाल कर उनकी छोटी-छोटी गठरियां (Bundle) बाँध देने चाहिये। ये गट्ठर एक रात भर तर जमीन पर रक्खे रहने चाहियें। तत्पश्चात् पहले से तैयार किये हुये खेत में उक्त पौधों को रोप देना चाहिये। जब पौधे २-२॥ फीट ऊँचे होजावें तो फसल को निराई की जानी चाहिये। यदि वर्षा कम हुई हो तो नहरों द्वारा सिंचाई की जानी चाहिये। अगहन मास तक फसल तैयार हो जाने पर काट ली जानी चाहिये।

छोटा नागपुर—इस प्रान्त में पहले पौध घर (Nursery) को भली भांति जोता जाता है। फिर खाद देने के बाद प्रति एकड़ एक मन बीज बोया जाता है। पौधघर की एक एकड़ जमीन में उगाये गये पौधे ६-७ एकड़ खेत में रोपे जाने के लिये काफी होते हैं। पौधों को रोपने के लिये खेत तैयार करने की विधि अन्य प्रान्तों

के समान ही है। इस प्रान्त में फी एकड़ १० मन के लग भग पैदावार होती है।

(३) उन्हालु धान (Summer Paddy)

इस धान को बिहार और बंगाल मे बोरी, उड़ीसा मे दालुआ तथा छोटा नागपुर मे तेवान कहते हैं। इस फसल के लिये दल-दल भूमि उत्तम मानी जाती है। इसलिये यह नदियों और खाड़ियों के आसपास बोया जाता है।

बंगाल

भूमि:—बंगाल प्रान्त मे 'बोरो' धान अधिकांश उपजाऊ, चकना और रेतीली मिट्टी मे उगाया जाता है।

पैदा करने की विधि:—उन्हालू धान भी सियालू धान की तरह से पैदा किया जाता है। (१) पौधे रोपकर (२) बीज छींटकर।

(१) रोपकर बोये जानेवाले धान के लिए पहले पौधघर (Nursery) की मिट्टी पानी मे सींचकर खूब नरम बना ली जाती है। बीज को ४८ घन्टे तक पानी मे भिगोकर फिर ३-४ दिन तक चटाइयों से ढका रखते हैं। कात्तिक के पहले हफ्ते मे यह बीज पौधघर (Nursery) मे बो दिया जाता है। पौष मास में जबकि पौधे नौ इंच के क़रीब ऊँचे हो जाते हैं तो वहाँ से ले जाकर खेतों में रोप दिये जाते हैं। यदि खेत नदी आदि के किनारे पर न हों तो कृत्रिम विधियों से पानी देने की व्यवस्था की जाती है।

(२) छांटकर बोया जानेवाला धान:—यह धान बहुधा पद्म नदी के छोटे २ टापुओं में अगहन मास में बोया जाता है। खेतों को २-३ बार जोतकर बीज छाँट दिया जाता है। अन्य क्रियाएँ रोपकर बोये जानेवाले धान के समान ही हैं। दोनों प्रकार की फसलें बैशाख में काटी जाती हैं। पहली विधि से प्रति एकड़ १५ मन धान (Paddy) निपजता है।

बिहार मे उक्त धान अधिकांश नदियों के किनारो पर बोया जाता है, जिससे उसमें आवश्यकतानुसार पानी दिया जा सके। जो लोग नदी के किनारे पर नहीं बोते, उन्हे अपने खेतो के लिए पानी का समुचित प्रबन्ध करना पड़ता है। कार्तिक मे इसका बीज बो दिया जाता है और छोटे पौधों को निरन्तर पानी देते रहने का काम जारी रहता है। इनके एक फुट ऊँचे होजाने पर फाल्गुन मास के आसपास पहले से तैयार किये गये खेतो मे उक्त पौधे रोप दिये जाते हैं। यहाँ पर भी पौधों को सुबह शाम नहरो द्वारा पानी देना बराबर जारी रक्खा जाता है। बैसाख ज्येष्ठ में पक जाने पर फ़सल काट ली जाती है। एक एकड़ मे क़रीब २५ मन धान पैदा होता है।

उड़ीसा और छोटा नागपुर मे भी प्रायः वे ही विधियाँ काम में लाई जाती हैं जो कि बिहार मे। अतएव यहाँ उनका उल्लेख करना अनावश्यक है।

तम्बाकू की खेती

कोई तीन सौ वर्षों का अर्सा हुआ कि पोर्च्युगीज लोगों ने हिन्दुस्थान मे पहले पहल तम्बाकू का पौधा लगाया था। इसके बाद सारे देश मे बडी शीघ्रता से इसकी खेती फैल गई। इस वक्त १० लाख एकड़ से अधिक रकबे में इसकी खेती होती है। यदि इसकी पैदावार का औसत मूल्य १००) रु० प्रति एकड भी मान लिया जाय तो इसमे १० करोड रुपये की आमदनी होती है। इसलिये आर्थिक दृष्टि मे यह एक मूल्यवान फ़सल है। जिन प्रदेशों मे बड़े पाये पर इसकी खेती की जाती है, वहाँ के व्यापार मे अच्छी चहल पहल रहती है।

यद्यपि सारे भारतवर्ष मे तम्बाकू की खेती की जाती है पर इसकी फ़सल वहीं अच्छी होती है जहाँ की भूमि काफी खुली हुई हो, जिससे कि इसकी जड़े उसमे आसानी से फैल सके। साथ ही मे इसके लिये जमीन मे नमी या तरी की भी जरूरत है। भूमि की ठीक बनावट और काफी नमी के अतिरिक्त इसकी फ़सल के लिये योग्य मात्रा में नाईट्रोजन की भी जरूरत है। गोबर, मीगनियां, मल-मूत्र, नील के डंठल आदि से नाईट्रोजन आसानी से मिल सकता है। भारतवर्ष के कई स्थानों में विशेषतः संयुक्त प्रान्त के प्राचीन नगरो मे तम्बाकू की फ़सल को पानी देने

के लिये ऐसे कुएँ प्राप्त हैं, जिनमे नाईट्रोजन (नैत्रजन) तथा अन्य खनिज पदार्थ घुली हुई दशा में पाय जाते हैं और साथ ही वहाँ की भूमि मे पानी सोखने की यथेष्ट शक्ति विद्यमान है। ऐसी भूमि मे प्रति वर्ष तीन फ़सले पैदा होती हैं, जिनमे से एक पीले फूल की तम्बाकू है। इन स्थानो की बनाई हुई तम्बाकू औसत दर्जे की तम्बाकू मे बढ़ी चढ़ी होती है और बड़े शहरों में यह कहीं अधिक मूल्य पर बिकती है। अच्छी रीति से खेती करने से तम्बाकू किसान के लिये आर्थिक लाभ का बढ़िया साधन हो सकता है; इसकी खेती से हानि बहुत कम होती है। यह बहुत शीघ्रता से बढ़ती है। उपज भी अच्छी देती है। जड़ के अतिरिक्त इसकी फ़सल मे कोई कीडा या फफूँद नहीं लगती।

पर हिन्दुस्थान मे ऊँचे दर्जे की तम्बाकू पैदा नहीं होती। हिन्दुस्थानी तम्बाकू के पत्ते खुरदरे व वजनदार होते हैं। उनका रंग काला रहता है और उनसे बडी तेज बास आती है। इन सब खराबियो के कारण विदेशों मे यहाँ की तम्बाकू की ज्यादा माँग नहीं है और जितनी तम्बाकू यहाँ पैदा होती है, उसका बहुत सा हिस्सा यहीं के काम मे आता है। यहाँ से प्रतिवर्ष करीब ३ करोड़ पाँड तम्बाकू विदेशो को भेजी जाती है और वह भी केवल विलायत मे। वहाँ यह सिगरेट बनाने के काम में नहीं ली जाती, लेकिन हुक्के (Pipe) के लिये जो तम्बाकू तैयार की जाती है, उसमे इसे दूसरी जाति की तम्बाकू के साथ मिलाते हैं।

पिछले कुछ वर्षों मे पत्तीदार तम्बाकू का व्यापार सारे संसार

में बहुत कुछ बढ़ चढ़ रहा है। आज कल सिगरेट के काम में आने वाला तम्बाकू की माँग दिन ब दिन बढ़ती चली जारहा है। इसके साथ ही विलायत की सरकार ने अंग्रेजी सल्तनत मे पैदा होने वाली तम्बाकू के लिये जकात में जो सहूलियतें रखी हैं, उनसे भी इसके व्यापार म बहुत कुछ प्रोत्साहन मिला है। पर यहाँ की तम्बाकू सिगरेट के काम मे आने लायक नहीं होती। इसलिये अगर हिन्दुस्थान को भी तम्बाकू के व्यापार मे अपनी हस्ती कायम रखना है तो उसे अपने यहा ऊँची जाति की तम्बाकू पैदा करना चाहिये।

सिगरेट की ऊँचे दर्जे की तम्बाकू म मामूली तम्बाकू की बनिस्बत निम्न लिखित विशेषताएँ होती हैं -

(१) हलका सा पीला रंग होना चाहिये।

(२) बास मामूली होनी चाहिये।

(३) जलने मे अच्छी होना चाहिये।

(४) उसकी कटाई में लचीलापन होना चाहिये।

इन सब विशेषताओं में रंग की विशेषता होना निहायत जरूरी है, क्योंकि रंग व सुगन्ध का आपस में बहुत कुछ सम्बन्ध है। हलकी पीली या तेज पीली तम्बाकू में हमेशा सिगरेट के काम मे आने लायक सुगन्ध रहता है। इसके विपरीत काले रंग के पत्तों मे हमेशा तेज व अशुद्ध बास आता है। इस तरह की तम्बाकू खाने या हुक्के (पाइप) के काम मे आ सकती है। रंग के बाद जलने के गुण का नम्बर आता है। सिगरेट के लिये

हमेशा ऐसी तम्बाकू की जरूरत होती है जो कि सहज ही जल जाव व उसमें से गरम धुआँ न निकले। इसके अलावा सिगरेट की तम्बाकू में लचीलापन होने की भी आवश्यकता है। तम्बाकू में कट जाने के बाद सील (आल) कायम रखने की शक्ति हो तो उसमें लचीलापन रह सकता है। यदि तम्बाकू में लचीलापन न हुआ तो तम्बाकू सूखकर सिगरेट से खिरने लगेगी और सिगरेट की खाली कागज की नली रह जायगी।

हिन्दुस्थानी तम्बाकू

हिन्दुस्थानी तम्बाकू की जातियों में कोई भी जाति सिगरेट बनाने योग्य गुण नहीं रखती ; क्योंकि करीब २ सब जातियों के पत्ते काले व खुरदरे होते हैं, जिनसे तेज व चिरपरी बास निकलती है। केवल यही एक कारण है कि जिसकी वजह से बाहरी देशों में यहाँ की तम्बाकू की माँग नहीं है और जितनी तम्बाकू की फसल यहाँ होती है, वह लगभग यहीं काम में ली जाती है। इसलिये इसके व्यापार में तेजी लाने के लिये अच्छी से अच्छी तम्बाकू पैदा करने की जरूरत है।

हर्ष की बात है कि अब वैज्ञानिकों का ध्यान तम्बाकू के पौधे में उन्नति करने की ओर आकर्षित हुआ है। यहाँ हवाना, वर्जीनिया और सुमात्रा आदि देशों से कई बार बीज लाकर फैलाये गये और साथ ही बहुत से तम्बाकू बनानेवाले विज्ञ कार्यकर्ताओं को ठीक प्रकार से पत्तियाँ बनना सीखाने के लिये रखा गया।

कुछ कृषि-क्षेत्रों पर भी इनका प्रयोग किया गया। पूसा में जुदी जुदी २० किस्म की पीले फूलों की और ५१ किस्म की मामूली तम्बाकू की वैज्ञानिक जाँचें की गईं। अमेरिकन और भारतीय तम्बाकू की कई किस्में बोकर सिगरेट के योग्य तम्बाकू की खोज करली गई है। इसका नाम "तम्बाकू पूसा नं० २८" है। इसकी किस्म मोटी, खूब बड़ी और जल्दी बढ़नेवाली है। देशी रीति से बनाये जाने पर उसकी पत्तियाँ रंग, गुण और स्वाद में बढ़िया होती हैं। यह ब्रह्मा, मध्य भारत, मध्य प्रान्त, संयुक्त प्रान्त आदि भिन्न-भिन्न जलवायु में अच्छी तरह पैदा होती है। इसका बीज लगभग तीन लाख एकड़ भूमि मे फैल चुका है।

यद्यपि अब तक की सब भारतीय जातियों म उक्त तम्बाकू की जाति सब से अच्छी है। सिगरेटों में उसका उपयोग होता है, पर वैज्ञानिकों को इससे भी विशेष सन्तोष नहीं है। उनका कथन है कि यद्यपि यह दूसरी जातियों की बनिस्बत अच्छी है, पर ऊँची जाति की सिगरेटों के लिये इससे भी अच्छी जाति पैदा करने की जरूरत है। वे इस बात के प्रयत्न मे हैं कि अच्छी से अच्छी विदेशी जाति की तम्बाकू को यहाँ की आबहवा के योग्य बनाया जाय। इसके लिये देशी और विदेशी तम्बाकू के संयोग से दोगली जातियाँ तैयार करने के प्रयत्न हो रहे हैं। साथ ही कुछ विदेशी तम्बाकू की खेती के भी प्रयोग जारी हैं।

'एडकॉक' नाम की तम्बाकू

अमेरिका के युनाईटेड स्टेट्स को तम्बाकू की कई प्रसिद्ध जातियों में से 'एडकॉक' जाति की तम्बाकू भी एक है। इस तम्बाकू से कई जाति की सिगरेट बनाई जाती है। हिन्दुस्थान में इस जाति का प्रचार पहले पहल मद्रास के गन्टुर जिले में 'इण्डियन लीफ टोबैको डेवलपमेंट कम्पनी' ने किया था। इस जिले में इस जाति की उपज अच्छी हुई, उसके पत्तों का रंग भी काफी हलका रहा। इसके पश्चात् ई० स० १९२४ में पूसा में इस तम्बाकू की आजमाइश के बतौर खेती शुरू की गई। यहाँ भी यह मालूम हुआ कि यह जाति बिहार की भूमि व आबहवा के योग्य है। पर अभी यह नहीं मालूम हुआ कि यह भारत के अन्य प्रान्तों में सफल हो सकती है या नहीं।

भूमि

तम्बाकू की खेती के लिये क्षारयुक्त, उपजाऊ, रेतीली भूमि सब से अच्छी समझी जाती है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं जो भूमि जड़ों के फैलने और बढ़ने के लिये काफी खुली हुई हो, जिसमें ठीक मात्रा में नमी हो, जिसमें नाईट्रोजन और पोटाश योग्य अंश में हो वह तम्बाकू की खेती के लिये सर्वश्रेष्ठ है। इन गुणों से युक्त रेतीली भूमि में बहुत ही बढ़िया दर्जे की तम्बाकू पैदा होती है। मटियार और चिकनी मिट्टी में तम्बाकू की उपज

तो ज्यादा होती है, पर पत्तियाँ बहुत भद्दी और हल्की जाति की आती हैं।

जुताई और खाद

तम्बाकू के लिये सितम्बर अथवा अक्टूबर महीनों में भूमि तैयार की जाना चाहिये। इसके लिये उसमें आठ दस बार हल चलाना चाहिये। तम्बाकू की खेती में गहरी जुताई की बड़ी जरूरत है। जुताई से भूमि को पोला, भुरभुरी और मुलायम बना देना चाहिये। उसे इस योग्य कर देना चाहिये कि उसमें हवा का प्रवेश होता रहे और पौधे की जड़ों को फैलने में तकलीफ न हो।

अब रहा खाद का सवाल। हमने ऊपर गोबर के खाद के सम्बन्ध में लिखा है। भारत के ग़रीब किसानों के लिये यही खाद सुलभ है। कृत्रिम खादों को खरीदना उनकी ताक़त के बाहर है। अतएव हम गोबर के खाद पर जोर देते आये हैं। इसके सिवा गोबर के खाद से पैदावार में बढ़ती होती है। पर गोबर का खाद दी हुई तम्बाकू ऊँचे दर्जे के सिगरेट के काम की नहीं होती। अगर हमें सिगरेट के लिये तम्बाकू तैयार करना है तो हमें कुछ कृत्रिम खाद भी देने चाहिये। हमें इस तरह के खाद के मिश्रण की योजना करनी चाहिये जिससे तम्बाकू के पत्तों की खुशबू बढ़े। कई विख्यात कृषि-विद्या-विशारदों ने तम्बाकू के खादों के सम्बन्ध में अपने अनुभव प्रकट किये हैं, हम उनमें से कुछ को नीचे प्रकट करते हैं।

बम्बई के कृषि-विभाग के भूतपूर्व डायरेक्टर डॉक्टर हेरोल्ड-मेन महोदय ने तम्बाकू की खेती पर कृत्रिम खादों के प्रयोग किये और उनसे बड़े ही आशादायक परिणाम निकले। आप लिखते हैं—"हम अपने पाँच वर्ष के अनुभव से यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि निम्न लिखित कृत्रिम खादों का मिश्रण सिचाई अथवा बिना सिचाई की तम्बाकू के लिये बड़े लाभकारक होगा।"

१-सल्फेट ऑफ पोटाश	१५० पौंड प्रति एकड़
२-सुपर फास्फेट	११२ पौंड ,,
३-नाईट्रेट ऑफ सोडा	२८५ पौंड ,,

सुप्रख्यात कृषि-विद्या-विशारद मिस्टर जान केनी अपने "Intensive Farming in india" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं कि "तम्बाकू में सब से अच्छी पत्तियाँ (Leaf) उत्पन्न करने के लिये कपासियो का चूरा (रूई के बीज का चूरा), सुपर फास्फेट और सल्फेट ऑफ पोटाश के खादों का मिश्रण अत्युत्कृष्ट है।" आप उपरोक्त तीनो खाद निम्नलिखित परिमाण मे मिलाने की सिफारिश करते हैं।

कपासियो का चूरा या एरण्ड की खली	१ मन ३२ सेर
सल्फेट ऑफ पोटाश	१ मन २ सेर
हड्डी का चूरा या सुपर फास्फेट	२८ सेर

अमेरिका के वर्जिनिया नामक स्थान मे तम्बाकू की खेती में सूखे हुए खून का खाद दिया गया और इससे उपज मे आशातीत वृद्धि हुई। आर्थिक दृष्टि से भी यह अत्यन्त लाभदायक सिद्ध

हुआ। इतना ही नहीं, इससे उक्त तम्बाकू अपने नियमित समय से १०-१२ दिन पहले पक गई।

पाश्चात्य और पौर्वात्य कृषि-विद्या-विशारदों ने अपने प्रयोगों से यह बात प्रकट की है कि नैत्रजन जनित खाद (Nitrogenous manures) जहाँ तम्बाकू के पत्तों की वृद्धि में तथा निकोटाइन नामक पदार्थ की वृद्धि में सहायता पहुँचाता है, वहाँ पोटाश तम्बाकू की पत्तियों का सुमधुर और सुगन्धित बनाने में बड़ा काम देता है। इसलिये सिगरेट के काम आनेवाली तम्बाकू की खेती में पोटाश जनित खादों का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है।

मि० नित्यगोपाल मुकुर्जी के अनुभव

सुप्रसिद्ध कृषि-विद्या-विशारद स्वर्गीय मि० नित्यगोपाल मुकुर्जी ने अपने भारतीय कृषि (Hand Book of Indian Agriculture) नामक ग्रन्थ में लिखा है: —

"पोटेशियम कार्बोनेट, शोरा, पोटेशियम सल्फेट, केलेशियम सल्फेट (गिप्सम) आदि खाद सिगरेट के लिये तैयार की जाने वाली तम्बाकू के लिये सबसे अच्छे खाद हैं। इनसे पत्तियों में मीठी खुशबू आती है। तम्बाकू में जलने के गुणों की वृद्धि होती है। गिप्सम बहुत ही बढ़िया खाद है। भारतीय किसानों को तम्बाकू की खेती के लिये इसकी जोर से सिफ़ारिश की जा सकती है। यह चार आने से आठ आने मन तक बिकता है। खाद के लिये काम में लाने के पहले इसमें सम परिमाण में चूना मिला

देना चाहिये। खनिज पदार्थों की खाद देनी हो तो प्रति एकड़ ढाई से साढ़े चार मन तक देनी चाहिये। राख भी तम्बाकू के लिये उत्तम खाद है।"

पौधों को एक जगह से दूसरी जगह रोपना

पाठक जानते हैं कि कुछ फसलें ऐसी हैं जो पहले पौधघर (Nursery) में बोई जाती हैं, और जब उनके पौधे कुछ बड़े हो जाते हैं तो उन्हें वहाँ से सावधानी से उखाड़कर खेत में लगाते हैं। तम्बाकू के लिये भी ऐसा ही किया जाता है। इसे पहले पौधघर में बोते हैं और जब इसके पौधे ४ इञ्च ऊँचे हो जाते हैं और उनमें ३-४ पत्ते भी निकल आते हैं तब इन्हें आहिस्ता से खुरपी के द्वारा जड़ सहित उखाड़कर खेत में लगाते हैं। पौधे रोपने का यह काम आसोज (सितम्बर का तीसरा सप्ताह) से लगाकर कार्तिक मास (मध्य नवम्बर) के अन्त तक जारी रहता है। शुष्क जलवायु वाले प्रदेश में पौधों को रोपने का काम जल्दी ही प्रारम्भ कर दिया जाना चाहिये। कहीं कहीं ये पौधे प्रतिदिन सन्ध्या को रोपे जाते हैं और कहीं कहीं सुबह को। दो पौधों के बीच में तीन फुट का अन्तर होना आवश्यक है।

इस प्रकार रोपे गये पौधों को कुछ दिन तक हुशियारी से सींचते रहना चाहिये। इस समय सिंचाई तीन तीन, चार चार दिन के अन्तर से की जानी चाहिये। पर फिर जब ये जड़ पकड़ लें, तब सिंचाई दस दस या पन्द्रह पन्द्रह दिन के अन्तर से

को जानी चाहिये। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि तम्बाकू का पौधा पानी का बड़ा ही लालची है। इसे पानी की ज्यादा जरूरत होती है। खेत में पौधे लगाने के बाद हल के द्वारा खेत की मिट्टी को उलट पुलट भी करते रहना चाहिये। यह काम तब तक किया जाता है जब तक कि पौधों में फूल कलियाँ न दिखलाई पड़ें। जहां नहरों के द्वारा सिंचाई की जाती है, वहाँ हर मास में एक दफा मिट्टी को उलट पुलट कर देना चाहिये।

पौधों के फूल आने के थोड़े दिन पहले उनकी कलियों (Buds) और नीचे के पत्तों को बड़ी हुशियारी से हाथ से नोंच लेना चाहिये। उन पर सिर्फ आठ दस पत्तियाँ रख देनी चाहिये। नोचने के बाद खण्डित हिस्से से अगर रस बहने लगे तो उस पर बहुत ही मुलायम बारीक की हुई मिट्टी छिड़क देना चाहिये। यह काम बङ्गाल के जलपाईगुड़ी में किया जाता है। मि० मुकर्जी ने राय दी है कि इसका प्रचार दूसरे जिलों में भी होना चाहिये।

हाँ, यहाँ इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि जो पौधे बीज के लिये रखे जावें उनकी कलियों और पत्तों को छाँटने की जरूरत नहीं। उन पर फूल आने देना चाहिये। अकसर देखा जाता है कि पौधे के जिन डंठलों से पत्तियाँ नोची जाती हैं उनके आसपास (Shoots) कुँपलें फूटने लगती हैं। इन्हें भी हुशियारी से नोंचते रहना चाहिये जिससे कि बची हुई पत्तियों को पकने में बाधा न पड़े।

जब पत्तियाँ जाड़ी पड़ जावें; उनका रंग पीला हो जाय, तब

समझना चाहिये कि ये पक गई हैं। फिर इन्हें तोड़ लेना चाहिये। इन्हें जरूरत से ज्यादा पकने न देना चाहिये। सारे खेत की कटाई एक साथ नहीं करना चाहिये। पके हुए पौधों को पहले काटना चाहिये। कटाई का सब से अच्छा समय सुबह का है। इन्हें दो घंटे तक धूप मे पड़े रखना चाहिये। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि इन पर सूरज का ज्यादा तेज प्रकाश न पड़ने पावे। सिर्फ पत्तियों को काटने के बजाय सारे पौधो को काटना अच्छा है। अगर जल बरस रहा हो तो कटाई में एक दो दिन की देरी कर देना चाहिये।

तम्बाकू साफ़ करने की रीति

तम्बाकू साफ़ करने की रीति से हमारा मतलब उस तरक़ीब से है जिसके जरिये पत्ते सुखाये जाते हैं। इस रीति मे सब से अधिक होशियारी की बात यह है कि सूखने पर पत्ते काले न पड़न पावें। हिन्दुस्थान मे तम्बाकू को साफ़ करने अथवा सुखाने के लिये जमीन पर बिछा देते हैं। प्रति दिन सबेरे तम्बाकू जमीन पर बिछा दी जाती है और शाम के वक्त इकट्ठी कर ली जाती है। यह काम तब तक शुरू रहता है जब तक कि पत्तों के बीच का डठल नहीं सूखता। इस तरह धीरे २ पत्तों का सब गीलापन चला जाता है और जब वे सूख जाते हैं तब उन्हें इकट्ठा कर लिया जाता है। यह तरकीब सिगरेट के लिये ऊँची जाति की तम्बाकू तैयार करने लायक नहीं है, क्योंकि इसमें पत्तों को नमी

धीरे २ कम हो जाती है और वे बादामी रंग के पड़ जाते हैं तथा सिगरेटों के काम में आने लायक नहीं होते। इसके अलावा उस की बास में भी फ़र्क आजाता है। इसलिये विदेशी ऊँची जाति की तम्बाकू (जैसे Adcock या पूसा की दोगली जातियाँ) बोने के बाद उसको सुखाने के लिये भी खास तरकीब को काम में लाना चाहिये। ऊपर बतलाई हुई तरकीब से कुछ ऊँचे दर्जे की तरकीब कठड़ों या घोड़ियों पर सुखाने की है। घोड़ी बाँस की बनाई जाती है और हर बाँस पर थोड़ा चारा लपेट दिया जाता है। उस पर पत्ते डाल दिये जाते हैं। बिहार में कई स्थानों पर इसी तरकीब से तम्बाकू सुखाई जाती है। पर यह तरकीब भी बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती, क्योंकि इसमें भी रात के वक्त तम्बाकू के पत्ते फिर से नमी ग्रहण कर लेते हैं, जिससे कि दिन के वक्त की शुष्कता का थोड़ा बहुत असर कम हो जाता है और बाद में इसका परिणाम यह होता है कि सूखने पर पत्ते उतने चमकीले नहीं होते जितने की सिगरेट की तम्बाकू के लिये ज़रूरी हैं। पत्ते सुखाने की दूसरी तरकीब हवादान अथवा धुआँ-कश के ज़रिये अमल में लाई जाती है। इसके लिये एक खास तौर पर कमरा तैयार किया जाता है, जिसमे कि ज़रूरत के मुताबिक गर्मी व सर्दी पहुँच सके। इस नियमित सर्दी व गर्मी से पत्तों का रंग खराब नहीं होने पाता और वे जलने पर बुरी बास नहीं देते। यह तरकीब बहुत ख़र्चे की है और आम तौर पर किसान इसे काम में नहीं ला सकते। इसलिये जब कभी किसानों

को विदेशों मे भेजने के लिये तम्बाकू बाना हो तो पहिले किसी धनिक व्यापारी से सौदा ठहराकर उसकी पत्ती सुखाने का इन्तजाम कर लेना चाहिये। यहाँ यह कह देना आवश्यक मालूम होता है कि किसानो को इस प्रकार फसल की तैयारी मे जो ज्यादा खर्चा करना पड़ेगा, वह सारा का सारा, ऊपर बतलाई हुई तरकोब के अनुसार काम करने में, निकल आयगा। इतना ही नहीं, उन्हें मामूली तरकीब के अनुसार काम करने की बनिस्बत इस पद्धति मे ज्यादा फायदा होगा।

रासायनिक संयोग

कृषि-विद्या-विशारदो ने रासायनिक प्रयोगशालाओं में तम्बाकू की पत्तियों को जला कर उसके राख मे जिन जिन वस्तुओ का रासायनिक संयोग हुआ है उसका विश्लेषण किया है। तम्बाकू की उत्तमता को पहचान करने का यही सब मे अच्छा तरीका है। नीचे हम विलायती और भारतीय तम्बाकू के रासायनिक विश्लेषण द्वारा जो फल निकले हैं उन्हे देते हैं। कृषि-विद्या के प्रसिद्ध आचार्य मिस्टर जानसन अपने 'How crops can Grow' नामक ग्रन्थ मे विलायती तम्बाकू को राख में रहने वाली भिन्न भिन्न वस्तुओ का इस भाँति उल्लेख करते हैं।

पोटाश	२७४	प्रतिशत ८
चूना	२७०	"
फोस्फेरिक एसिड	३.६	"

सल्फ्यूरिक "	३·९	प्रतिशत ८
सोडा	३ ७	"
मेग्नीशिया	१० ३	"
क्लोराइन	४·५	"
सिलीका (Silica)	९·६	"
	१००.०	

यदि हम उपरोक्त विश्लेषण को भारतीय तम्बाकू के विश्लेषण के साथ मिलावे तो ज्ञात होगा कि उसमें पोटाश आदि आवश्यक पदार्थों की कमी है। नीचे हम डॉक्टर ल्यॉन (Lyon) द्वारा किये गये बुल्डाना मे पैदा की गई भारतीय तम्बाकू के रासायनिक विश्लेषण का फल उद्धृत करते हैं।

पोटाश	१ ७३ प्रतिशत
क्लोराइड ऑफ़ पोटेशियम	१५ ८२ प्रतिशत
(Oxide of Iron or Alluminum)	१३·३१ प्रतिशत।
चूना	३० ६५ प्रतिशत
कारबोनिक एसिड	०·०८ प्रतिशत
मग्नीशिया	५ ८९ "
सेल्फ्यूरिक एसिड	३ ६८ "
सिलीका	२६ ८४ "
फास्फोरिक एसिड	×

हलदी की खेती

हिन्दुस्थान में कोई घर ऐसा नजर नहीं आ सकता, जहाँ कि प्रति दिन हलदी का उपयोग न किया जाता हो। ग़रीब से लेकर अमीर तक सब इसका उपयोग हर रोज करते हैं। हमारे यहाँ की सुप्रसिद्ध पीली कढ़ी के पीले रंग व सुगन्धि का कारण यही हलदी है। मसालों मे नमक व मिर्च के बाद इसी वस्तु का नम्बर आता है। कोई तरकारी, दाल या आचार ऐसा नहीं, जिसमें इस वस्तु का उपयोग न होता हो। वास्तव मे इस पदार्थ की उपयोगिता को सब से पहले हिन्दुस्थानियों ने ही पहिचाना और यह है भी इसी देश का मुख्य निवासी पौधा। अब भी मैसूर राज्य के कई स्थानों में यह पौधा 'जंगली' हालत मे पाया जाता है। अलबत्ता यह कहा जा सकता है कि इसकी उम्दा जातियाँ चीन और कोचीन आदि विदेशी स्थानो से लाई गई हैं। इसका पौधा अदरक की जाति का है और अधिकतः इसकी खेती ऊष्ण जलवायु वाले प्रदेशों में होती है।

भारत मे इस पदार्थ को हलद, हलदी, हरदी, हरिद्रा आदि कहते हैं। अंग्रेजी मे इसे टरमेरिक 'Termeric' कहते हैं। इस की खेती शीतल भूमि की घाटियों और तराई के स्थानो मे भी की जाती है। इसका कारण यह है कि इसे 'पानी' की ज्यादा

आवश्यकता होती है और उक्त दोनों प्रकार की भूमियों में 'नमी' बनी रहने के कारण सिंचाई की जरूरत नहीं होती। इसकी दो जातियाँ होती हैं—देशी व पटने की हलदी। पटने की हल्दी का रंग ज्यादा अच्छा रहता है और उसकी पैदावार भी अच्छी होती है। बम्बई मे एक तीसरे प्रकार की हलदी मिलती है, जो कि बहुत सुगंधित होती है। इसका भोजन के व्यंजनों मे बहुत मान है, जिससे यह महँगी बिकती है।

जमीन (SOIL)

इस पदार्थ की खेती के लिये भुरभुरी और पोली जमीन बहुत अच्छी होती है। जिस जमीन मे चिकनी मिट्टी और रेती का थोड़ा अंश हो अथवा जिस जमीन मे बगीचे की फसलें अच्छी तरह पैदा हो सकती हो, उसमे हलदी की खेती अच्छी होती है। गन्ना, साँटा व मक्का के लिये जिस तरह की उत्तम उपजाऊ और भुरभुरी जमीन की जरूरत होती है, ठीक उसी तरह की जमीन इस फसल के लिये भी चाहिये। इसका कारण यह है कि इसकी गाँठें ९ या १० इञ्च गहरी जाती हैं। चिकनी, बिल्कुल काली व चिपचिपी तथा केवल रेतीली जमीनें इस पदार्थ की खेती के काम की नही। जो जमीन सूखी होने की हालत में भुरभुरी हो, परन्तु पानी गिरने पर फिर से कड़ी व चिकनी हो जाती हो, वह भी इसकी खेती के लिये उपयोगी नहीं समझी जाती। हलदी की गाँठो की अच्छी बाढ़ होने के लिये उनके

नीचे की जमीन भुरभुरी व पोली होना निहायत जरूरी है। संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि बहुत ऊँचे दर्जे की जमीन, जिसमे कि वनस्पति तत्व काफी मात्रा में हो, इसकी खेती के लिये उपयोगी है। जिस जमीन मे पहले वर्ष गन्ना या मक्का की फसलें बोई गई हों, उसमे दूसरे वर्ष हल्दी बोना बड़ा अच्छा समझा जाता है, क्योंकि इन दोनो जिन्सो की खेती मे खाद ज्यादा डाला जाता है, जिसके कारण खेतो की मिट्टी खाद्य पदार्थयुक्त व नर्म रहता है। बगीचों मे वृक्षों की छाँह के नीचे भी इसकी खेती करना फायदेमन्द होता है, क्योंकि छाँह मे भी इसकी खेती हो सकती है और इस प्रकार बड़े बड़े वृक्षों के बीच पड़त पड़ा रहने वाली जमीन काम मे आ जाती है।

इसकी खेती के लिये जमीन पसन्द करने के वक्त इस बात पर अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि जमीन समतल या कुछ ऊँचाई पर हो जिससे कि उसमे बरसात का पानी भरा न रह सके। इस प्रकार की जमीन पसन्द न करने पर तथा फालतू पानी के निकास की व्यवस्था न होने पर इसकी साख गलकर नष्ट हो जाती है। एक साल हलदी की साख लेकर फिर दूसरे साल उसकी बोनी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि इस पदार्थ को वनस्पति-पोषक द्रव्यों की बहुत ज्यादा आवश्यकता है और दूसरे साल फिर इसी की बोनी कर देने से उपज कम होती है और जमीन खराब हो जाती है।

जमीन की तैयारी

इस जिन्स की खेती वैसी ही होती है, जैसी कि आलू, अद्रक, कचालू की। इसलिये जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, इसके खेत को खूब अच्छी तरह तैयार करना जरूरी है। अर्थात कम से कम १ या १॥ फुट की गहराई तक जमीन की खुदाई या उथला पुथली कर देना चाहिये। इसी समय उसमें अच्छा सड़ा हुआ खाद भी मिला देना चाहिये। अगर पहले वर्ष उस खेत में गन्ना या मक्का की फसल बोई गई हो तथा उसमें अच्छी तरह हल वगैरह चलाये गये हों, तो फिर मामूली जुताई से काम चल जायगा। जुताई का काम जनवरी व फरवरी में खतम कर देना चाहिये; क्योंकि साधारणतः इसकी बुआई अप्रैल या मई में की जाती है। यह एक आवश्यक बात है कि बोनी के दो या तीन माह पहले जमीन की जुताई कर दी जावे, ताकि सूर्य के प्रकाश का प्रभाव गिरकर वह नर्म व उपजाऊ बन जाय। साराश यह है कि खेत में तब तक हल चलाते रहना चाहिये, जब तक कि उसकी मिट्टी भुरभुरी व महीन न हो जाय। हल चलाने के बाद एक दो बार पटेला फिराकर मिट्टी के बड़े २ ढेलों को तोड़ डालना चाहिये। यदि पिछली साख की कुछ जड़ें व कूड़ा कचरा आदि बच रहे तो उन्हें भी निकाल डालना चाहिये। पाठकों को यह भली प्रकार स्मरण रखना चाहिये कि इस जिन्स की अच्छी पैदावार का होना खेत की अच्छी जुताई पर निर्भर है।

बीज रोपने से पहले एक सिंचाई कर देना चाहिये और जब जमीन सब पानी सोख ले तो एक बार फिर जुताई करनी चाहिए। इतना ही नहीं, यदि इस समय हल के बजाय फावड़े या कुदाली से जमीन, डेढ़ फुट गहरी खोदकर, महीन व पोली कर दी जावे तो और भी ज्यादा अच्छा है।

खाद

इस जिन्स के लिये गोबर का खाद मुख्यतः लाभदायक सिद्ध हुआ है। हिन्दुस्थान के ग़रीब किसानों के लिये यही सब से अच्छा खाद है, बशर्ते कि वे थोड़ी सावधानी व फिक्र के साथ काम लें। यथा विधि इस खाद को इकट्ठा किया जावे तो यह बहुत गुणकारी हो सकता है। यदि घर का कूड़ा कर्कट, खट्टे मीठे निकम्मे फल या भाजी तरकारियाँ भी इसी खाद के गड्ढे में डाल दिये जावें तो और भी अच्छा हो। साधारणतः इस जिन्स को फी एकड़ २०० मन गोबर का मामूली खाद देना पड़ता है। पर यदि सावधानी के साथ तैयार किया हुआ खाद हो तो १०० या ७५ मन ही बस होगा।

ऊपर बतलाये हुए खाद के अलावा भेड़ या बकरी की मींगनियों का खाद, खली का खाद व राख का खाद आदि दूसरे खाद भी उपयोगी हो सकते हैं। बकरी की मींगनियों का खाद देने की बड़ी सुगम रीति यह है कि जुते हुए खेत में भेड़ें रात के वक्त बैठाई जावें। बहुत सी भेड़ों को एक ही स्थान पर

बैठाने से कुछ फ़ायदा नहीं होता; क्योंकि इस प्रकार सारा खाद एक ही जगह इकट्ठा होजाता है। इसलिये उन्हें इस प्रकार बैठाना चाहिये कि खाद सारे खेत मे समानता से उचित रूप में एकत्रित हो जावे। खली के खादों में अरण्ड की खली का खाद हलदी के लिये बहुत लाभदायक मालूम हुआ है। पर खली को खेत में डालने से पहले खूब कुचल कर नर्म व भुरभुरी बना लेना चाहिये। यह खाद केवल १० मन देने से काम चल जाता है। राख के खाद में लकड़ी की राख भी काम में लाई जा सकती है, पर वह उतनी उम्दा नहीं होगी, जितनी कि कंडो की। इस प्रकार की दो तीन मन राख मे मन भर खली मिला देने से इस जिन्स की उपज पर बड़ा असर पड़ता है।

खाद देने का समय

इस जिन्स को दो बार खाद दिया जाता है। एक पानी की नालियाँ बनाने के पहले; अर्थात् अन्तिम बार हल चलाने के समय और दूसरी बार बीज रोपने के बाद चौथे याने भादों के महीने में। इस समय खाद पौधों की गुड़ाई करके उनकी जड़ों में मुट्ठी भर २ कर डाला जाता और खुरपी के जरिये जमीन में मिला दिया जाता है। इस बार डाला जाने वाला खाद बहुत बारीक होना चाहिये; वर्ना वह जल्दी घुल नहीं सकेगा।

खेत में मेंड व पानी की नालियाँ बनाना

जब खेत की अच्छी तरह जुताई हो जावे तो चौबीस या छब्बीस इञ्च के फ़ासले पर नौ या दस इञ्च की ऊंचाई की मुण्डेरें बनाना चाहिये। कूंड (गड्ढे) जहाँ तक सम्भव हो, गहरे बनाना चाहिये। इसके पश्चात् यदि खेत समतल (हमवार) हो तो बारह बारह फुट की क्यारियाँ बनानी चाहिये। यदि जमीन ऊँची नीची हो तो इससे छोटी क्यारियाँ बनाने की आवश्यकता होगी। क्यारी के आसपास की मेंड पानी की नालियाँ व क्यारी के भीतर की कूंडों से ९ या १० इञ्च ऊँची कर देना चाहिये। क्यारी के दोनों तरफ पानी की नालियाँ बनाना भी जरूरी है। मेंड बनाने से यह फायदा होता है कि वर्षा अधिक होने पर फालतू पानी नाली के द्वारा बाहर निकल जाता है और फ़सल को किसी प्रकार की हानि नहीं होने पाती। इससे निदाई में भी बहुत सुगमता हो जाती है और जड़ों के आसपास की जमीन भी पोली रहती है।

बीज व उसका परिमाण

हलदी की गाँठे बोई जाती हैं। इसकी गाँठों को आलू की गाँठों की तरह टुकड़े करके बोते हैं। जब हलदी की गाँठें निकाली जाती हैं तब सब से बड़ी और अच्छी गाँठे अलग २ कर ली जाती हैं और छाँह में सुखाकर बीज के लिये रख ली जाती है। भोजन व रंग के लिये रखी जानेवाली गाँठों को मिट्टी से शुद्ध

करके उबाल लेते हैं, पर बीज के लिये रखी जानेवाली गाँठों के साथ यह क्रिया नहीं की जाती; क्योंकि बीज की गाँठों की आँखों को गीला रखना बहुत आवश्यक है। बीज को बहुत सावधानी के साथ रखने की जरूरत है। यदि आँखे सूख गईं तो बीज निकम्मा हो जाता है। चतुर किसान बीज को सुरक्षित रखने के लिये शीतल व हवादार जगह अथवा गीली रेत या ठंडे कोठे मे रखते हैं। अक्सर बीज के लिये छाँटी हुई गाँठो को एक के ऊपर एक जमा कर सारे ढेर पर हलदी की सूखी पत्तियाँ तथा छाल बिछा देते हैं। इस तरह बीज खराब नही होने पाता।

कोई २ किसान हलदी की बड़ी गाँठे बोते हैं और कोई पतली व लम्बी हलदी के टुकड़े बोते हैं; किन्तु बड़ी गाँठे बोना ज्यादा फायदेमन्द होता है, क्योंकि गाँठो के द्वारा तैयार की हुई फसल से टुकड़ो की बनिस्बत ज्यादा पैदावार होती है। अलबत्ता गाँठो का बीज काम मे लाने मे खर्च अधिक बैठता है, पर पैदावार मे जो ज्यादा फायदा होता है, उसके मुकाबले में वह कुछ भी नहीं है। मध्य आकार की गाँठो को, बीज के काम मे लाने से, लगभग १५०० पौंड बीज खर्च होता है और यदि टुकड़े बोये जावें तो करीब ५०० पौंड बीज की आवश्यकता होती है।

बीज की रोपाई का समय

हलदी की गाठे लगाने का ठीक समय मई की १५ वीं तारीख से शुरू होता है; पर यह काम तभी हो सकता है जबकि सिंचाई

का अच्छा इन्तजाम हो। बीज उगने में करीब २०-२५ दिन लगते हैं और बरसात के पहले उनके अंकुर फूट जाने पर फसल अच्छी आती है। जहाँ मई मास मे सिंचाई न हो सकती हो, वहाँ जून के तीसरे सप्ताह में बीज बोना अच्छा होता है। कई स्थानो पर रोहिणी नक्षत्र के बाद हलदी की गाँठे रोप देते हैं और यही समय सब मे अच्छा भी रहता है, बशर्ते कि सिंचाई की व्यवस्था अच्छी हो।

बीज रोपने की रीति

ऊपर बतलाये हुए तरीके पर खेत तैयारकर लेने के पश्चात् बीज रोपने का काम शुरू होता है। अकसर कई किसान बीज (गाँठों) को रोपाई के दिन से एक सप्ताह पहले एक ठंडे और अंधेरे स्थान मे पत्तियो से ढाँक रखते हैं और उस पर प्रति दिन पानी छिड़कते हैं। इसके पश्चात् उन्हे बोते है। यहाँ दुबारा यह कह देना आवश्यक है कि टुकड़ो की बनिस्बत गाँठें बोना ज्यादा फायदेमन्द होता है। गाँठे एक या डेढ़ फुट के अंतर से ४ या ५ इंच की गहराई मे हाथ से डाली जाती हैं। इसलिये रोपाई के पहले खेत मे एक या डेढ़ फुट के फासले पर ४ या ६ इंच गहरे गड्ढे कुदाली से कर लिये जाते हैं। कई किसानों का मत है कि चौड़ाई यदि १॥ फुट के बजाय २ फुट रखी गई तो फसल अच्छी होती है। कृषिशास्त्र भी इस बात का समर्थन करता है कि छिदरी बुआई से पौधा ज्यादा फैलता और बलवान होता है। किसान मित्रों

का कथन है कि यदि हलदी की गाँठें डालने के बाद उन पर पत्ते बिछाकर छेद मिट्टी से भर दिये गये तो फ़सल को ज्यादा फायदा होता है क्योंकि (१) पत्तों की वजह से जमीन में सील ज्यादा दिनों तक बनी रहती है और (२) सड़ने पर पर पत्ते उत्तम खाद बन जाते हैं। इस प्रकार बीज की बोनी करने में १० या ११ दिन में अंकुर जमीन के बाहर निकल आते हैं और एक दो महीने में पौधे ६-७ इञ्च बड़े हो जाते हैं।

मिश्रित फसलें

हलदी की फ़सल अकसर अकेली ही बोई जाती है, पर जब कभी उसे दूर के फासले पर लगाते हैं तो उसके साथ गंवार की फली, भिंडी, मक्का आदि थोड़े दिनों में पैदा होनेवाली जिन्सें लगा देते हैं जिससे कि उनके लगाने, निन्दाई व गुड़ाई का खर्च ऊपर का ऊपर निकल आता है। पर इस बात पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि इन फसलों में हलदी के पौधे को किसी प्रकार का नुक़सान न होने पावे।

सिंचाई

हम पहले ही इस बात पर जोर दे चुके हैं कि हलदी की खेती के लिये सिंचाई की बड़ी आवश्यकता है। हमें कई स्थानों में इसकी खेती न की जाने का मुख्य कारण यही नजर आता है। इसकी खेती में यह अत्यंत आवश्यक है कि खेत किसी भी समय बिल्कुल सूखा न रहे। यदि सिंचाई की ओर जरा भी दुर्लक्ष्य किया

गया तो फसल को नुकसान पहुँचता है पर यह भी याद रखना चाहिये कि जमीन में पानी उतना ही दिया जावे जितना कि उसमें भली भाँति सूख जावे व खेत मे ठहरा न रहे। हलदी के खेत में जब अधिक पानी भरा रहता है तो गाँठे गलकर नष्ट हो जाती हैं अगर बरसात मे भी कई दिनो तक पानी बरसता रहे अथवा खेत में ज्यादा पानी भर जावे तो नालियो के जरिये उसे बाहर निकाल देना चाहिये।

बीज बोने के बाद सिंचाई कर देना जरूरी है। इसके बाद तीसरे दिन दूसरा पानी और ४ थे या ५ वे दिन तीसरा पानी देना चाहिये। यदि बरसात काफी न हुई तो आवश्यकता के अनुसार सिंचाई करनी होगी, वर्ना खेत के सूखा पड़ा रहने पर फसल का नुकसान होने की सम्भावना है। ठंड के दिनो में हर आठवें दिन सिंचाई करना ठीक होता है।

निंदाई, गुड़ाई आदि

निंदाई व गुड़ाई से यह अभिप्राय है कि खेत साफ रहे और निकम्मे घास पात, जो पौधो के खाद्य द्रव्य मे से हिस्सा बँटाते हैं, बढ़ने न पावें। इसलिये हर निंदाई व गुड़ाई मे यह ध्यान मे रखना जरूरी है कि पौधो की जड़ो को नुकसान न पहुँचते हुए दूसरे निकम्मे घास पात जड़ो सहित निकाल लिये जावे। यह काम घासफूँस की जड़े जमने के पहले ही कर लेने पर ज्यादा परिश्रम नही उठाना पड़ता। कई किसान गाँठे बोने के ८-१० दिन

पहले सिंचाई करके खेत को खुला छोड़ देते हैं। इस अवधि में स्वयं उपजनेवाले निकम्मे घास पात उग आते हैं, जिससे उन्हे जड़ों सहित निकाल डालने मे बडी सुविधा होती है और बाद मे निंदाई के लिये ज्यादा मेहनत नही करनी पडती। जब पौधे ६ या ७ इञ्च लम्बे हो जावें तो पहली निंदाई और गुडाई करनी चाहिये। गुड़ाई करने से पौधो के आसपास की मिट्टी नर्म व पोली हो जाती है, जिससे वे अपना खाद्य द्रव्य भली भाँति ले लेते हैं। इतना ही नहीं जमीन पोली रहने के कारण गाँठे भी तेजी से बढ़ती हैं। दूसरी निंदाई व गुड़ाई पौधे डेढ़ या दो फुट के हो जाने पर करनी चाहिये इस समय पौधो की जड़ो पर काफी मिट्टी चढा देनी चाहिये अर्थात् उन्हे लगभग ५, ६ अंगुल मिट्टी से ढक देना चाहिये। इसी प्रकार और दो या तीन बार जैसी २ आवश्यकता मालूम पड़े, निंदाई व गुडाई करनी चाहिये। इस समय यह ध्यान मे रखना चाहिये कि पानी की नालियां ठीक तरह बनी रहे और उनके द्वारा पानी सब ओर पहुँच सके।

गाँठों की खुदाई

इस फ़सल के तैयार होने मे सात या आठ महीने लगते हैं। फ़सल तैयार हो जाने की यह पहचान है कि खेत में एक प्रकार की सुगन्ध फैल जाती है, पौधे के पत्त पीले पड़ जाते हैं, जड़ों के पास के पत्ते सूखकर झड़ने लगते हैं और पौधों की डंडियाँ जमीन की ओर झुक जाती हैं। जब ये लक्षण मालूम होने लगें,

तो सिंचाई बन्द कर खेत को सूखने देना चाहिये। जब दस बारह दिन में खेत बिलकुल सूख जावे, तो पौधों को जड़ों के पास से काट लेना चाहिये। इन्हें एकत्रित कर उस स्थान पर जमा कर देना चाहिये; जहाँ कि हलदी उबाली जाने वाली हो।

खुदाई खुरपी से करनी चाहिये। खोदते समय कुछ स्त्रियाँ केवल गाँठ छाँट कर अलग अलग ढेर में रखती जाती हैं। गाँठों की छँटनी बीज के बाजार में बेचने के उद्देश से की जाती है। अक्सर गाँठों के चार ढेर बनाये जाते हैं—

(१) वे गाँठें जो अगली साख के बीज के लिये रखी जाने को हैं।

(२) वे गाँठें जो बाजार में बेची जानेवाली हैं।

(३) वे गाँठें जो गये साल बोई गई थीं और अब भी अच्छी हालत में पाई गई।

(४) निकम्मी या खराब गाँठें।

खुदाई के समय बड़ी होशियारी से काम लेना चाहिये, क्योंकि कुदाली या फावड़े की चोट लगने पर गाँठें निकम्मी हो जाती हैं। जब ये जमीन से बाहर निकाली जाती हैं तो इनका आकार अदरक या अरवी की गाँठों सरीखा होता है। केवल रंग में फर्क रहता है।

हलदी तैयार करना

हलदी की फसल तैयार होने के बाद उस पर तीन क्रियाएँ और करनी पड़ती हैं। ये क्रियाएँ बड़ी सावधानी के साथ करनी

चाहिये: वर्ना हल्दी के गुण में फर्क आजाता है। ये क्रियाएँ नीचे बतलाये अनुसार हैं—

(१) हल्दी उबालना

(२) हल्दी सुखाना

(३) गाँठों को साफ करके उन पर लगे हुए पतले पतले तन्तुओं को अलग करना।

हल्दी उबालना—यह काम कुछ कठिन है और विशेषतः उन किसानों को, जिन्होंने कभी हल्दी को उबलते हुए अपनी आँखों से न देखा हो, इस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। यदि उबालते समय ज्यादा तेज आँच रही या ज्यादा देर तक उबाली गई तो हल्दी का रंग जल जाता है और यदि कम उबाली गई तो हल्दी की गाँठें बराबर नहीं बैठतीं। इसके अलावा निकम्मी गाँठे उबलने वाली गाँठों के साथ मिल जाने से भी खराबी होती है। अलग २ स्थानों मे इसके उबालने की अलग अलग रीतियाँ जारी हैं; पर हम यहाँ केवल सीधी व अधिक फायदेमन्द रीतियों का ही बयान करेंगे।

(१) हल्दी की गाँठों को जमीन से निकालने के बाद मिट्टी व तन्तुओं से साफ कर ली जावे। इसके बाद एक मिट्टी के बर्तन (जैसे हांडी) में रख कर उसका मुँह ढकनी से बन्द कर दिया जावे। इस पर मिट्टी व गोबर इतना मजबूत लीप दिया जावे कि अन्दर की भाप बाहर न निकले। फिर इस हाँडी को चूल्हे पर रख कर मन्द मन्द आँच दी जावे। दो तीन घण्टे तक उबाली

जावे । इस तरह हलदी अपने ही पानी मे उबल जाती है और उसकी दुर्गन्ध चली जाती है । जब इसका पानी सूख जाय तो बर्तन (हाँडी) से गाँठें निकाल ली जावे व चटाई पर डाल कर सूखने के लिये फैलादी जावे । यदि इन्हे धूप मे ज्यादा देर तक न सूखने दिया तो इनका रंग बहुत अच्छा रहता है । इसलिये कई किसान केवल छाँह मे ही सुखाते हैं । रात के वक्त चटाई का घर के अन्दर ले लेना चाहिये, क्योकि ओस से हलदी को बहुत हानि पहुँचती है ।

(२) हलदी की गाँठे उबालने के लिये एक भट्टी बनाई जाती है, जोकि गुड़ बनाने की भट्टी म मिलती जुलती होती है । इस भट्टी पर कढ़ाइयाँ, जोकि गुड पकने वाली कढ़ाइयो की अपेक्षा कुछ छोटी होती हैं, रखते हैं और उनमे हलदी की गाँठ रखकर उबालते हैं । इस काम के लिये हलदी के पौधो के पत्ते, जैसा कि हम ऊपर कह आये है, पहले ही से एकत्रित कर लिये जाते है । इस कढ़ाह की पेंदी मे हलदो के पौधे के सूखे व गीले पत्ते बिछा दिये जाते है । इसके बाद उसमे हलदी की गाँठे डालकर ऊपर से इतना पानी डाला जाता है कि वह कढाह के किनारे से तीन चार इञ्च नीचा रहे । यदि हलदी की गाँठ कढाई के किनारे तक भी पहुँच गई, तो भी कुछ हर्ज नही । इसके बाद कढ़ाह मे ईख व हलदी की पत्तियाँ बिछाकर ऊपर स गोबर व मिट्टी का लेप कर दिया जाता है जिससे भाप कढ़ाह के अन्दर ही बनी रहे । इस प्रकार तैयार की हुई कढ़ाह को मन्द मन्द आँच दी जाती है और धीरे २ भट्टी पर ही उसे ठंडी भी कर लेते हैं । इस काम को तीन

चार घण्टे लगते हैं। कढ़ाह पूरी तरह ठंडी होजाने पर गोबर का लेप व पत्तियाँ निकाल ली जाती हैं व पानी अलग फेंक दिया जाता है। बाद में गाँठों को ऊपर बतलाये हुए तरीक़े से सुखाते है। इसको दिन मे दो तीन बार उलट पुलट करते रहते हैं। जब ये बिलकुल सूख जाती है, तब दूसरी क्रिया की जाती है।

हलदी पूरी तरह उबल गई या नहीं, इसके जानने की साधारण रीतीयाँ भी यहाँ बतला देना आवश्यक मालूम होता है, जिससे नौसिखिया किसान थोड़ा बहुत परख कर सके—

(१) उबलती हुई हलदी की गाँठों मे से एक टुकड़ा लेकर यदि उसे नीबू या गेहूँ के पौधे की काडी से टाचा जावे तो उससे उसके आर पार छेद हो जाना चाहिये।

(२) यदि उबलती हुई हलदी की गाँठ के दो टुकड़े किये जावे तो अन्दर मे हलदी का रंग पिसी हुई हलदी की तरह दिखाई देना चाहिये और जिस प्रकार पीसने पर करीब २ कण रहते हैं उसी प्रकार उसके कण भी अलग २ नजर आने चाहियें।

हलदी की गाँठों को तन्तुओं व मिट्टी से साफ़ करना

जिस प्रकार अनाज को गाहनी के पश्चात बाजार में ले जाने से पहले उफनना आवश्यक होता है, उसी प्रकार हलदी को उबालने के पश्चात शुद्ध करने का काम अत्यन्त आवश्यक है।

इस कार्य को अंग्रेजी में Polishing (पालिशिंग) कहते हैं। जहाँ इस जिन्स की खेती बहुतायत से होती है, वहाँ इस काम के लिये इञ्जन काम में लाये जाते हैं, जिससे कार्य में लगने वाला खर्च बहुत कम बैठता है। पर थोड़ी मात्रा मे खेती किये जाने वाले स्थानो मे इस कार्य मे ज्यादा खर्च होता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये बम्बई कृषि विभाग द्वारा एक सीधी व कम खर्चीली तरकीब निकाली गई है। अतएव हम उसी तरकीब को काम मे लाने की सिफारिश करेगे। वह यह है कि सीमेन्ट का एक खाली पीपा लिया जावे। उसमे एक पहिया लगाया जावे और उसे घुमाने के लिये एक हत्ता लगाया जावे। इसी मे हलदी की गाँठ भरने के लिये एक नौ इञ्च लम्बा व ६ इञ्च चौड़ा द्वार बनाया जावे जो कि अच्छी तरह बन्द भी किया जा सके। इस पीपे को सीधे दो खम्भो पर खड़ा कर दिया जावे। इस प्रकार के यन्त्र द्वारा बड़ी आसानी से हलदी साफ की जा सकती है।

सूखी हुई हलदी की गाँठो को इस पीपे मे लगभग आधे परिमाण मे डाल देते हैं। इसमे थोड़े पत्थर भी मिला दिये जाते हैं। लगभग एक घण्टे तक पीपे का हेडल घुमाया जाता है। इसी पीपे मे चारो ओर चौथाई इञ्च के छोटे २ छिद्र ६ इञ्च के फ़ासले पर बना दिये जाते हैं; जिनसे तन्तु और मिट्टी बाहर निकल जाती है। इसके बाद हलदी की गाँठो को बाहर निकाल कर उफन लेते हैं। इस तरकीब से लगभग ।=) आने मे एक मन

हलदी साफ़ हो सकती है। यह खर्चा मामूली रीति के अनुसार लगने वाले खर्च के चौथाई से भी कम है।

उपज व लाभ

भली प्रकार खेती करने पर तथा सब बातें अनुकूल रहने पर हलदी की उपज फी एकड़ ६० या ७० मन तक होती है। पर साधारणतः ३० मन फी एकड़ से कम उत्पन्न नहीं होती। इस उपज से भी फी एकड़ २०० या २५० रुपयों का फायदा हो सकता है;बशर्ते कि किसान अच्छी तरह मेहनत करे व अपनी मेहनत का हिसाब खेती के खर्च में न लगाये। यदि किसान की मेहनत का खर्चा मुजरा भी किया गया तो लगभग १२५) फी एकड़ लाभ होता है।

अलसी की खेती

अलसी का इतिहास बहुत प्राचीन काल से प्रारम्भ होता है। हजारों वर्ष पूर्व आर्यों की निवास भूमि काला सागर, कास्पियन सागर और फारस की खाड़ी के मध्यवर्ती प्रदेशों में अलसी की खेती होती थी। उस समय आर्य लोग अलसी से तेल निकालने के अतिरिक्त उसके रेशे से वस्त्र भी तैयार करते थे। प्राचीन भारतीय वैय्याकरण पाणिनी ने अपने ग्रन्थों में अलसी का उल्लेख किया है। वेदों में अलसी के पौधे को क्षौम्य नाम से लिखा है। उन दिनों आर्य लोग धार्मिक कामों के अवसरों पर रेशमी वस्त्रों के अतिरिक्त अलसी के रेशे द्वारा तैयार किये गये वस्त्र भी धारण करते थे। ये वस्त्र अत्यन्त पवित्र समझे जाते थे।

आर्य लोगों के बाद मिश्र वालों को ईसा के १२०० वर्ष पूर्व अलसी की खेती तथा उससे निकले हुए रेशे को उपयोग में लाने का ज्ञान हुआ। मिश्र से यूनान ने इस उद्योग को सीखा और यूनान से ब्रिटेन तथा अन्य यूरोपीय देशों में अलसी की खेती का प्रचार हुआ। तब से इसका प्रचार बढ़ता ही गया। आजकल अरजनटाइन, ब्रिटिश भारत, कनाडा, चीन, मोरोक्को, रूमानिया, रूस, और युरूगाई अलसी की खेती में प्रमुख देश हैं। आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, फ्रांस, मिश्र, जर्मनी, इटली,

जापान, न्यूजीलैण्ड, स्पेन, स्वीडेन और संयुक्त राज्य अमेरिका आदि देशों का ध्यान कुछ समय से अलसी की खेती की ओर गया है और उन्होंने इसमें आशातीत सफलता भी प्राप्त की है।

जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं, भारतवर्ष मे पहले अलसी का प्रयोग तेल के साथ ही साथ रेशे के रूप मे भी होता था। पर अब वह बात नहीं रही है। आजकल इस देश मे अलसी केवल तेल निकालने के अभिप्राय ही मे बोई जाती है। युनाइटेडस्टेट्स अमेरिका और अर्जेण्टाइन मे भी अलसी की खेती मुख्यत तेल ही के लिए होती है। हाँ, यूरोपीय प्रदेशों मे तेल के साथ ही साथ रेशे का उद्योग खूब उन्नति कर रहा है और यही कारण है कि अंग्रेजी मे इसे Flaxseed के नाम से पुकारते है।

आकार-प्रकार—अलसी के पौधों के तने पतले होते है। इनकी शाखाएँ भी अत्यन्त कोमल होती है। पत्तियाँ पतली और कम चौड़ी होती हैं। पौधे नीले रंग के सुहावने होते हैं। पुष्प खुले हुए निकलते हैं। इन्ही पुष्पों मे से बीज निकलते है। ये बीज चमकदार और गहरे रंग के होते हैं। अलसी का पौधा ४० इंच से अधिक ऊँचा नहीं बढ़ता। कृषि-विद्या-विशारदों का अनुभव है कि एक ही पौधे मे रेशा और तेल के लिए उत्तम बीज उत्पन्न करने के दोनों गुण नही हो सकते।

यूरोप की अलसी के बीजों का रंग सफेद होता है। इन बीजो से निकाला हुआ तेल भूरे रंग के बीजों के तेल से अधिक उत्तम और मूल्यवान समझा जाता है। हमारे देश मे भी शिवपुर

(बङ्गाल) के कृषि प्रयोग क्षेत्र में उक्त सफेद बीजों के बोने के प्रयोग किये गये हैं। इन प्रयोगों में आशाजनक सफलता मिली है। कुछ दिनों से रेशे की प्राप्ति के लिये भी अलसी की खेती के सफल प्रयोग किये जा रहे है। इन प्रयोगों से सम्बन्ध रखनेवाली रिपोर्टें पूसा के कृषि प्रयोग-क्षेत्र से प्रकाशित हुई हैं।

पैदावार और भूमि

भारत में लगभग ३० लाख एकड़ भूमि मे अलसी की खेती होती है। इसमे से बगाल और बिहार मे ९ लाख ७५ हजार एकड भूमि में अलसी बोई जाती है।

यों तो अलसी की खेती सभी तरह की जमीन मे हो सकती है पर मार और दुम्मट भूमि इसके लिये सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। सारांश मे कहा जा सकता है कि जिस जलवायु और मिट्टी में गेहूं और चना बोया जाता है वही इसके लिये भी उपयोगी है। हल्की और रेतीली भूमि अलसी की खेती के लिये अच्छी नहीं समझी जाती। यूरोप आदि देशो मे अलसी को किसी अन्य वस्तु के साथ मिलाकर बोने का रिवाज नहीं है, पर हमारे यहाँ आम तौर पर यह चने के साथ-साथ बोई जती है। कभी-कभी किसान लोग इसे गेहूँ, जौ और मटर के साथ मिलाकर भी बोते हैं।

अलसी को लगातार कई वर्षों तक एक ही खेत में न बोना चाहिए। क्योंकि यह भूमि की उर्वरा शक्ति को बहुत जल्दी

नष्ट कर डालती है। यदि ५-६ वर्ष तक एक ही खेत में अलसी की खेती की जाय और बाद मे किसी दूसरे पदार्थ के बीज बोये जायँ तो वे या तो गल कर नष्ट हो जावेंगे और यदि उनके पौधे निकल भी आये तो वे २-३ सप्ताह में नष्ट हो जायँगे। अतएव भूमि की उत्पादन शक्ति बनाये रखने के लिए अलसी के खेत में अन्य चीजें अदल-बदल कर बोते रहना चाहिए।

खाद

अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी अग्रवाल महासभा के व्यापारिक बोर्ड ने भारतीय अलसी के सम्बन्ध मे तीसी (अलसी) नामक एक अत्यन्त महत्व-पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किया है। उक्त ग्रन्थ मे लिखा है कि यदि गोबर और खली के साथ शोरे का खाद दिया जावे तो उपज की बहुत वृद्धि होती है। यह खाद दो मन प्रति एकड़ के हिसाब से डाला जाता है। इसी ग्रन्थ मे एक अन्य प्रकार के खाद की भी अलसी की खेती के लिए सिफारिश की गई है। यह खाद नीचे लिखे तरीके मे तैयार किया जाता है।

विधि—नौसादर ३२ सेर, सज्जी ३८॥ सेर और फॉस्फोरिक एसिड १५॥ सेर। इन तीनों वस्तुओं को मिलाने से जो खाद तैयार होता है वह पौधों की वृद्धि कर पैदावार को बहुत अधिक बढ़ाता है और उन्हें कीड़ों और बीमारियों से भी बचाता है।

भूमि तैयार करना

अलसी की खेती के लिए जमीन की तैयारी वर्षा खतम होने से पहले अर्थात सितम्बर ही मे प्रारम्भ कर देना चाहिए। जमीन में नाइट्रोजन का अधिकांश हो तो उत्तम है। पहले मिट्टी के ढेले आदि फोड़ कर भूमि को समतल बनाने के बाद प्रति एकड़ ६ सेर के हिसाब से छींट कर बीज बो देना चाहिए। तत्पश्चात् बीजों को भली भाँति पाटने के लिए हेंगा फिरा देना चाहिए। जहाँ तक हो सके बीज गहरे खेत मे बोने चाहिएँ जिससे पौधे मजबूती से जड़ पकड़ कर भली भाँति फल-फूल सकें।

बीज हमेशा उत्तम जाति का बोया जाना चाहिए। यदि उसमें छोटे व खराब दाने हो तो उन्हे निकाल कर अलग कर देना चाहिए। अत्यन्त छोटे व खराब बीज वाली अलसी का न तो रेशा ही मजबूत होता है और न तेल ही बराबर निकलता है। अलसी की खेती के लिए मध्यम वर्षा चाहिए। अतएव बीज बोने के बाद यदि एक दो बार पानी बरस जाय तो ठीक है वरना साधारण सिचाई कर देनी चाहिए। अलसी का पौधा नमी बहुत जल्दी सोखता है इसलिए उसे अधिक पानी कभी न दिया जाना चाहिए। पौधों के बढने के समय जमीन मे बहुत ज्यादा नमी होने से शाखायें कमजोर हो जाती हैं, जिससे पौधों की वृद्धि कम हो जाती है।

फ़सल काटने का समय

फरवरी के अन्तिम दिनों में अथवा मार्च के प्रारम्भ में फसल पक कर तैयार हो जाने पर काट ली जाती है। एक एकड़ में ७-८ मन के लगभग पैदावार होता है। इसकी भूसी चरबी बढ़ाने वाली होने के कारण चौपायों को खिलाने के काम में नहीं लाई जाती। एक मन अलसी में से लगभग १० सेर तेल निकलता है। अलसी के तेल की खली खाद के लिए बहुत उपयोगी मानी जाती है। यह जानवरों को खिलाने के उपयोग में भी लाई जाती है।

रोग

अलसी के बीज में सुग्गा नामक एक कीड़ा लगता है। यह कीड़ा बीज को रोग युक्त बना कर पौधे की उपजाऊ शक्ति को नष्ट कर देता है। इससे रक्षा पाने का सरल उपाय यह है कि अलसी के खेत में अदल बदलकर दूसरे अनाजों की खेती की जावे। ऐसा करने से यह कीड़ा खेत में पनप न सकेगा। कृषि-विद्या-विशारदों का मत है कि यदि 'फारमल डे हाईड' नामक दवा को पानी में घोलकर उससे अलसी के बीज बोने के पूर्व धो डाले जावें तो उक्त कीड़ा फ़सल को हानि नहीं पहुँचा सकता। वैसे भी जब कभी इन कीड़ों के अण्डे पेड़ के पत्तों पर दिखाई दें तो उन पत्तों को तोड़ कर फेंक देना चाहिए या जला कर नष्ट कर देना चाहिए।

अफ़ीम की खेती

कई वर्षों से हिन्दुस्थान में कानून द्वारा अफीम की खेती बन्द करदी गई है। अब बिना लायसेन्स के—बिना विशेष अनुमति के—कोई भी इसकी खेती नहीं कर सकता। कोई पच्चीस तीस वर्ष के पहले मालवे में कसरत से इसकी खेती होती थी। अफीम के व्यापार के लिये मालवा की दूर दूर तक ख्याति थी। किसानों को इसमें बहुत रुपया मिलता था। व्यापार में बड़ी चहल-पहल थी। अब हम इसकी खेती के विषय में दो शब्द लिखना चाहते हैं।

अफ़ीम की खेती के लिये ज़मीन

अफीम की खेती के लिये सब से अच्छी जमीन वह है, जिस में चूने का अंश ज्यादा हो, जिसमे ऐसे कंकर पाये जावे जिनमे से चूना निकलता हो। ऐसी जमीन मे अफीम का पौधा बहुत फलता फूलता है। जमीन मे चूने की मौजूदगी से अफीम का रस खूब बनता है। इसके अतिरिक्त दुम्मट और मट्टियार भूमि भी इसकी खेती के लिये अच्छी मानी जाती है। दुम्मट जमीन की तो खास तौर से सभी कृषि-विद्या-विशारद सिफ़ारिश करते हैं।

अफीम की खेती के लिये जमीन अक्सर गाँव के नजदीक चुनी जाती है, जिससे कि गाँव का कूड़ा कर्कट, जो बरसात से बह निकलता है, खेत में जमा होकर खाद का काम दे सके। जमीन की सिंचाई के लिये खेत में कूए का होना भी बहुत जरूरी है।

खाद

अफीम की खेती के लिये सड़े हुए गोबर का खाद बहुत बढ़िया समझा जाता है। हमारी राय में अगर कम्पोस्ट खाद दिया जाय तो और भी अच्छा। एक एकड़ खेत के लिये लग भग २५० या ३०० मन सड़े हुए गोबर के खाद की आवश्यकता होती है। राख का खाद भी इसके लिये बड़ा गुणकारी है। यह खाद सूखे पत्ते, फसल के डंठल और लताओं को जलाकर बनाना चाहिये। यह फी एकड़ चार मन के हिसाब से दिया जाता है। अफीम के डंठलों का खाद अफीम की फसल के लिये बहुत ही लाभकारक सिद्ध हुआ है। इसमें वे सब पदार्थ रहते हैं जिनकी अफीम की फसल को जरूरत होती है। मि० जॉनस्कॉट नामक कृषिशास्त्र के विशेषज्ञ ने तजुर्बा करके इस खाद की उपयोगिता प्रकट की है। खलियों का खाद भी इसके लिये बड़ा फ़ायदेमन्द है। इन्हे खेत में देने के पहले खूब कूट पीसकर बारीक कर लेना चाहिये। फिर खेत में बराबर फैला देना चाहिये। यह खाद फी

बीघा ५ से ८ मन तक देनी चाहिये। ये खलिएँ बीज बोने के वक्त या उससे थोड़े दिन पहले यानी आखिरी जुताई के पहले देनी चाहियें। शोरे का खाद भी अफीम की खेती के लिये काफ़ी ख्याति प्राप्त कर चुका है। इसके चूरे को खेत मे फैलाकर जोत देना चाहिये। इसका असर बहुत जल्दी दिखलाई देता है, पर वह उतना स्थायी नहीं रहता जितना कि राख का रहता है। राख के साथ शोरा मिलाने मे ज्यादा फ़ायदा होता है। मिस्टर मुकर्जी ने फ़ी बीघा एक मन शोरे के लिये सिफ़ारिश की है। मि० जॉन-स्काट फी बीघा २५ सेर शोरा देने की सलाह देते हैं। अफीम की फ़सल और चूने का कितना निकट और प्रिय सम्बन्ध है, इस विषय पर हम ऊपर लिख चुके हैं। चूने के खाद से इस फ़सल को बड़ा फ़ायदा पहुँचता है। इसके डालने से जमीन में रही हुई वे चीजें जो इस फ़सल को फायदा पहुँचाती है, गल जाती हैं और पौधे अपनी जड़ों द्वारा उनका रस खींचकर फलने फूलने लगते हैं। बीज बोने के छः मास पहले फी बीघा १५ सेर के हिसाब से इसे खेत में डालना चाहिये। कुछ कृषि-विशेषज्ञ इसे गोबर के साथ देने की सलाह देते हैं। हाँ, यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि जिस जमीन मे पहले से ही चूना मौजूद हो, उसमे इसे देने से फायदा नहीं। गन्दे नालों का खाद, तालाब की मिट्टी का खाद भी इस फ़सल को बड़ा लाभ पहुँचाते हैं। अब हम खाद के सम्बन्ध में कुछ प्रख्यात कृषि-विद्या-विशारदों के अनुभव देते हैं।

सुप्रख्यात कृषिशास्त्री स्वर्गीय नित्यगोपाल मुकर्जी ने निम्न-

लिखित खादों के मिश्रण को अफीम की खेती के लिये बड़ा उपयोगी बतलाया था।

(१) एरण्ड की खली	प्रति एकड़ ६ मन
(२) चूने का खाद	,, ,, ४ ,,
(३) शोरे का खाद	,, ,, १ ,,

मि० जॉन स्काट ने अपने लम्बे अनुभव के बाद अफीम की खेती के लिये कुछ खादो की योजना की है, उन्हें हम यहाँ देते हैं।

(१) एरण्डी या खशखश (अफीम के दाने) की खली प्रति बीघा ४ मन इतने ही चूने में मिलाकर आखिरी निकाई के वक्त दी जावे। निकाई से हमारा मतलब खेत के घासफूस या खरपतवार को साफ करने की क्रिया से है। गोबर के साथ नोनी मिट्टी मिलाकर देने से भी फ़सल को बड़ा फायदा पहुँचता है।

(२) अफ़ीम को, फूल आने के पहले २० मन नोनी मिट्टी के साथ १ मन शोरा और ४ मन चूना शामिल करके देने से भी बड़ा फ़ायदा होता है। अगर इसमे एक मन खारी नमक भी मिला दिया जाय तो और भी अच्छा।

(३) अफीम के फूल आते वक्त ४ मन लकड़ी के कोयलों के चूर्ण के साथ ६ मन चूना शामिल करके पौधों की बाढ़ के आरम्भ में देना लाभकारी होगा।

उपरोक्त खादों के मिश्रण में से अपनी जमीन की परिस्थिति का विचारकर कोई भी मिश्रण देने से अफीम की खेती में निश्चय ही बड़ा फायदा होगा। हाँ, इनके चुनाव के वक्त जमीन की

स्थिति पर अवश्य विचार करना चाहिये। जैसे किसी जमीन में चूने का काफी हिस्सा मौजूद है तो उसमे चूना डालने से लाभ नहीं। हमने ऊपर खाद के जो नुस्खे दिये है उनमे से कोई न कोई तो किसी भी जमीन के लिये लाभकारी होगा।

बीज का चुनाव

दूसरी फसलों के लिय अच्छे बीज के चुनाव का जो महत्व है, वही इस फसल के लिये भी है। इसमे भी अच्छे मे अच्छा बीज चुनने की जरूरत है। खेती करनेवाले पाठक जानते हैं कि अफीम की फसल को एक प्रकार के फल लगते है। इन्हे मालवा मे डोडा और अन्य कुछ प्रान्तो मे टेन्डा कहते है। इन्ही के अन्दर बहुत बारीक बारीक बीज निकलते है। इनका आकार गोल होता है। इन्हे राजपूताने व मालवे मे दाना कहते हैं।

अच्छे बीज प्राप्त करने के लिये नीरोग डोडो के चुनने की जरूरत है। जिन डोडो मे पॉच छ नस्तर (चीरे) लगे हो और जो पौधे के बीज मे लगे हो ऐसे डोडो के बीज तजुर्बे से अच्छे पाये गये है। इसलिये किसानो को खेत मे इस प्रकार के डोडो की छँटनी करनी चाहिये। साथ ही यह भी देखना चाहिये कि डोडे नीरोग हो। उन्हे कोई बीमारी या कीड़ा लगा हुआ न हो। यह तो हुई डोडो के चुनाव की बात। इसके बाद भी जब उनसे बीज निकाले जावे तब उन्हे भी देखने जरूरत है। अच्छे और नीरोग बीजो को अलग छाँट लेना चाहिये। खराब बीजो को कभी

बोने के काम में न लाना चाहिये। दूसरी फसलों के बीजों की तरह अफीम के बीज को भी खास हिफाजत करने की जरूरत है। मि० स्कॉट बीज की सँभाल के विषय में लिखते हैं-

बरसात के दिनों में बीज को सुखा लेना चाहिये। इसके बाद उसे बन्द मिट्टी के बर्तन में रख देना चाहिये। यह बर्तन आखिर अप्रेल तक सूखे और हवादार बरामदे में रखा जाना चाहिये। जिस बर्तन में बीज रखा जाय उसके मुँह को ढक्कन से ढक देना चाहिये। ढक्कन के आस पास मिट्टी लीप देनी चाहिये। इस तरह बीज को सँभाल कर रखने से वह खेती के लायक रहता है। मि० स्कॉट ने हिफाजत से रखे हुए तथा छाँटे हुए बीज और बिना छाँटे हुए मामूली बीजों को बोकर देखा तो आश्चर्यजनक फल मालूम हुआ। जहा बिना छाँटे हुए मामूली बीजों में प्रति बीघा २२६८८ पौधे पैदा हुए वहाँ छाँटे हुए तथा सँभालकर रखे हुए बीजों में २७०२७ पौधे उत्पन्न हुए। इसके अतिरिक्त एक और महान अन्तर नजर आया वह यह कि जहाँ हल्के बीज के ५० डोड़ों में सिर्फ ५३ ग्रेन कच्ची अफीम निकली वहाँ हिफाजत से रखे हुए चुनींदा बढ़िया बीजों के ५० डोडों में १४० ग्रेन अफीम निकली।

इस वक्त मालवा में जिस जाति के बीज बोये जाते हैं उनमें धतुरिया बीज ज्यादा अच्छे होते हैं; उनकी फसल के डोडों से अफीम का रस ज्यादा निकलता है। इससे दूसरे नम्बर पर तेलिया जाति का बीज है।

बोने की रीति

मि० नित्यगोपाल मुकर्जी का कथन है कि बोने के पहले बीजों को कपूर के पानी मे भिगो लेना चाहिये। इससे फ़सल मे कीड़ा लगने का डर नही रहेगा। ज़मीन पर खाद की बारीक थर देकर बीज छिड़क देना चाहिये। बीज बोने के बाद ज़रा सँभाल कर हल चलाना चाहिये जिससे बीज मिट्टी मे ढक जावे। मि० जॉन स्टॉक का कथन है कि बीज बोने की कल से (Sowing Drill) खेत मे बीज डालने चाहिये। इन कलो से बीज एकसा और बराबरी की दूरी पर पड़ते हैं। इससे उपज अच्छी होती है। भारतवर्ष मे कहीं कहीं इन कलों का उपयोग होने लगा है। यहाँ यह भी बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि अफीम का दाना डालने से पहले खेत मे कुछ नमी का होना आवश्यक है।

जुताई

जुताई का जो महत्व दूसरी फ़सलो के लिये है वही इसके लिये भी है। हेंगा (सोहागा) या पटेला से ज़मीन को इस तरह जोतना चाहिये कि मिट्टी बिलकुल बारीक हो जाय। फिर फी बीघा १॥ सेर से २॥ सेर तक बीज छिड़क देना चाहिये। ज़मीन को एकसा कर देना चाहिये।

सिंचाई

हमने गत किसी अध्याय मे खेती के लिये नहरों के पानी की अपेक्षा कुएँ के पानी को ज्यादा अच्छा बतलाया है। यह बात

अफीम की खेती मे तो बहुत अच्छी तरह घटित होती है। कुएँ का पानी इसकी खेती के लिये ज्यादा मुफ़ीद है। संयुक्त प्रान्त के कृषि विभाग के भूतपूर्व डायरेक्टर मि० मोर्लेण्ड का कथन है—"अगर अफीम की फ़सल की सिंचाई बस्ती के पास के कुएँ से की जावे तो फसल को बहुत फायदा पहुँचता है, पैदावार ज्यादा होती है। क्योंकि ऐसे कुओं के पानी मे ज्यादा क्षार रहता है जो इसकी फ़सल को लाभ पहुँचाता है।

बीज बोने के एक हफ्ते बाद ज्योंही बीज उगने लगे इसे पानी देना चाहिये। अगर किसी कारण से बीज न उगे तो दुबारा बुवाई करके बीज उगने पर पानी देना चाहिये। इसे आवश्यकतानुसार पानी देना चाहिये। गुना के सुभे श्रीयुत रामप्रसादजी का कथन है कि अफीम की फसल को पन्द्रह दिन मे पानी देते रहना फ़ायदेमन्द है। फसल तैयार होने तक ७ दफा पानी देना चाहिये। अगर जमीन खराब हो तो १० दफा पानी देने की जरूरत पड़ेगी। मगर यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि आवश्यकता से ज्यादा पानी हानिकारक है। इसका पौधा जरूरत से ज्यादा पानी को बर्दाश्त नहीं कर सकता। जिस हौज मे होकर पानी गुजरता है उसमे योग्य परिमाण मे नोंनी मिट्टी मिला दी जाय तो फ़सल को फ़ायदा होगा।

अगर बरसात समय पर हो जाय तो इसमे सिंचाई की बहुत कम जरूरत रहेगी। इसके अतिरिक्त सिंचाई का समय भी ध्यान मे रखना चाहिये। उस वक्त सिंचाई की ख़ास अवश्यकता

रहती है जब फसल को डोंडे निकल आवें। क्योंकि इसी वक्त डोड़ा में अफीम बनने लगती है। ऐसे वक्त में खेत मे नमी रहो तो रस ज्यादा बनेगा। सिचाई के बाद मिट्टी को उलट-पुलट करना जरूरी है। ऐसा न करने से जमीन कड़ी हो जाती है और उसमे पौधे की बाढ़ मारी जाती है। पर जब अफीम के पत्तों से खेत ढक जावे तब मिट्टी को उलट पुलट करने की उतनी आवश्यकता नहीं, क्योंकि उस वक्त पौधों की छाया की वजह से जमीन मे अपने आप नमी बनी रहेगी।

निंदाई और गुड़ाई

पाठक जानते है कि खेत मे घास-पात खर पतवार पैदा हो जाते है। ये पौधों की खुराक का खुद खा जाते है। इसके सिवाय इनकी जड़ें जमीन मे फैली हुई रहती हैं। इससे फसल के पौधों की जड़ों का फैलने मे बड़ी रुकावट होती है। इससे पौधा पनपने नहीं पाता। इसी बात को ध्यान मे रखकर खेत मे से अपने आप उगनेवाले ये खरपतवार उखाड़े जाते है, जिससे कि फसल को हवा, धूप फैलने के लिये पूरी जगह और फूलने फलने के लिए पूरी खुराक मिले। इसी क्रिया को निंदाई कहते हैं। दूसरी फसलों की तरह अफीम की फसल को भी निंदाई की जरूरत होती है। निंदाई के वक्त अन्य खरपतवार के अतिरिक्त अफीम के निकम्मे और कमजोर पौधों को भी उखाड़कर फेक देना चाहिये। अच्छे और ताकतवर पौधो को रख लेना चाहिये। पहली निंदाई उस

वक्त करनी चाहिये जबकि पौधे उखाड़े जाने के योग्य हो जावें। दूसरी निदाई उस वक्त होनी चाहिये जब पौधो में पत्तियाँ आ जावें। इसके बाद आवश्यकतानुसार एक निदाई और कर देनी चाहिये।

अन्तिम क्रियाएँ

अगर कातिक में बुवाई की जाती है, तो माघ फाल्गुन मे फसल के फूल आ जाते हैं। जिस वक्त इसके फूल बहार पर होते हैं उस वक्त ये बड़े ही सुहावने मालूम होते है। हमें स्मरण है कि एक वक्त अफीम के खिले हुए इन फूलों को देख कर महामना एन्ड्रूज महोदय ने कहा था कि "बहार पर आये हुए इन सुन्दर और सुहावने फूलों के अन्दर कितना हलाहल विष भरा हुआ है! फूल लगने के लगभग एक मास बाद उनकी पंखुड़ियाँ गिरने लगती हैं। जब ये झड़ जाती हैं। तब पौधों पर फल दिखलाई देने लगते हैं। ये फल अफीम के डोड़े ही होते हैं। जब ये डोंडे बड़े होने लगते है तब इनके भीतर अफीम बनने लगती है। जब मालूम हो जाय कि डोड़ो मे अफीम बन चुकी तब उनमे से आले नामक औजार से या चाकू से चीरा देकर अफीम निकालना चाहिये। यह चीरा डोंडे के ऊपर से नीचे की तरफ या नीचे से ऊपर की तरफ देना चाहिये। गालाई में न देना चाहिये। चीरा देते वक्त बहुत सावधानी रखना चाहिये। यह इतना गहरा न लगाया जाय कि वह डोडों की छाल के आर पार

हो जाय क्योंकि चोरे के आरपार हो जाने से डोडे में से दुबारा अफीम नहीं निकल सकती और अगर चोरा छोटा हो तो अफीम कम निकलती है। इसलिये इस बात पर ध्यान रखने की जरूरत है कि चीरा वाजिब ढङ्ग से दिया जावे। नहीं तो नुकसान होने की सम्भावना है।

पहले पहल डोडे के चौथाई हिस्से मे चीरा देना चाहिये बाक़ी तीन चौथाई हिस्सा दूसरी दफे चीरा देने के लिये खाली रखना चाहिये। चीरा देने पर डोडे मे एक प्रकार का रस निकलने लगेगा। बस यही अफीम है। मालवा मे इसे चीक भी कहते हैं। अगर गर्मी ज्यादा हो तो यह रस ज्यादा निकलता है। यह रात भर निकलता रहता है। दूसरे दिन सुबह को आदमी खेत पर जाता है और इस जमे हुए रस को खुरचकर मिट्टी के बर्तनो में जमा कर लेता है या अफीम के पत्तो में लपेट कर रख लेता है। हर तीसरे दिन डोडो पर यह काम किया जाता है।

अच्छी किस्म के डोडो को दस दफा तक चीरा लगाकर अफीम निकालते हैं। एक माह और कुछ ज्यादा दिनों तक यह रस लिया जाता है। इसके बाद डोड़ों से रस आना बन्द होजाता है और उसमें दाना भी सूखकर तैयार हो जाता है। अफीम सुबह के वक्त निकालना चाहिये।

अफीम के दानों से तेल निकलता है। कोई पचीस वर्ष के पहले मालवा के अधिकांश ग्रामों मे जलाने तथा खाने के लिये यही तेल काम में लाया जाता था।

चने की खेती

खाने के लिए काम आनेवाले पदार्थों मे गेहूँ, जौ, ज्वार आदि के पश्चात् भारतीय कृषि की दृष्टि से चने का स्थान है। हमारे देश मे लगभग १ करोड़ १० लाख एकड़ भूमि मे चने की खेती होती है। श्रीयुत नित्यगोपाल मुकर्जी ने अपने Hand book of Indian Agriculture नामक ग्रन्थ लिखा है कि भारतवर्ष मे प्रति वर्ष ३ लाख १५ हजार हण्डरेडवेट चना विदेश भेजा जाता है जिसके मूल्य स्वरूप १० लाख रुपये मिलते हैं।

चने का पौधा झाड़ सरीखा होता है, जो बहुत ही सुन्दर दिखाई देता है। इसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी होती हैं। इसकी फली मे दो या तीन दाने रहते हैं। साधारणत चने चार जाति के होते हैं—काले, पीले, लाल और सफेद। सफेद चनों को काबुली चने भी कहते हैं।

भूमि और खाद

यों तो चना साधारण और अच्छी सभी तरह की भूमि में लगाया जा सकता है, पर कृषि-विद्या-विशारद नित्यगोपाल मुकर्जी चने की खेती के लिए मटियार दुम्मट जमीन को खास-

तौर में सिफारिश करते हैं। कलत्रार भूमि में भी इससे निपजवारी अच्छी होती है। तालाब सूखने के बाद जो भूमि निकल आती है, उसमें चने की खेती की जाने से भी पैदावार पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। साधारणतः चने की खेती में कोई खाद नहीं दिया जाता पर यदि भूमि में चूने का मिश्रण होता अच्छा है। (Crops in Bengal के लेखक प्रसिद्ध कृषि-विद्या विशारद श्रीयुत डी० एल० राय महोदय का कथन है कि यदि चने की खेती में हड्डी के चूरे का खाद दिया जावे तो उपज में बहुत बड़ा लाभ हो सकता है।

बोनी का समय

यदि वर्षा ऋतु शीघ्र बन्द हो जावे तो सितम्बर मास में चना बोया जा सकता है। पर यदि वर्षा शीघ्र बन्द न हो तो अक्टूबर में बोनी करना उचित है। चना अधिकतर रूई गेहूँ, जौ और सरसों आदि के साथ मिला कर बोया जाता है। कई किसान इसे अकेला भी बोते हैं। बुन्देलखन्ड की तरफ इसके खालिस खेत अधिक दिखाई देते हैं।

भूमि तैयार करना

चने की खेती के लिए भूमि तैयार करने में अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता। इसके लिए खेत की मिट्टी बारीक करने अथवा ढेले तोड़ने की ज्यादा जरूरत नहीं। वर्षा के खतम होते ही ४-५ बार खेत में हल चलाया जाता है। यदि खेत में बहुत अधिक घास पात हो तो एक बार निंदाई (Weeding) भी कर

दी जाती है। तत्पश्चात् अक्टूबर महीने में फी एकड़ ३० सेर के हिसाब से बीज बो देना चाहिए। यदि गेहूँ, जौ, अथवा अन्य किसी वस्तु के साथ मिला कर बोना हो तो १५ सेर बीज काफी होता है।

जहा तक हो सके बीज गहरा बोना चाहिये, जिससे झाड़ के उग आने पर उसकी जड़ भूमि के अन्दर भली भाँति फैल सकें। बीज की उत्तमता पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। किसानों को चाहिये कि वे कमजोर और लगा हुआ बीज कभी न बोवें।

सिंचाई

चने की खेती के लिये सिचाई की विशेष आवश्यकता नहीं। हाँ यदि यह जौ अथवा गेहूँ के साथ मिलाकर बोया जावे तो सिचाई की जा सकती है। बोनी करते समय भूमि में नमी होना चाहिए। अधिक वर्षा इस फ़सल के लिए हानिप्रद है।

फ़सल काटना

फ़रवरी अथवा मार्च मे फ़सल को काटना प्रारम्भ किया जाता है। इसे गेहूँ की भाँति हँसियो से काटते हैं। कई किसान सारे झाड़ के झाड़ भी उखाड़ते हैं। हरे चनों की तरकारी बहुत स्वादिष्ठ होती है। चने की भूसी जानवरों के लिये बहुत ही स्वादिष्ट चारा है। पशु इसे बड़े मजे से खाते हैं।

मक्का की खेती

मक्का भारत के करोड़ो किसानो का खाद्य पदार्थ है। इसको कहीं २ भुट्टा, बड़ी जुआर या मकई भी कहते हैं। इसके लिये हिन्दुस्थान की भूमि बड़ी अनुकूल है। थोड़ा सा प्रयत्न करने से इसकी खेती द्वारा किसान बहुत फायदा उठा सकते है; क्योंकि एक तो इससे उनके ढोरो के लिये काफी चारा हो जाता है, दूसरा अनाज भी अच्छा होता है। इसके अतिरिक्त इसकी फसल लगभग ७०, ८० दिन के अन्दर तैयार हो जाती है। इस प्रकार मक्का की खेती मे खर्च कम और लाभ अधिक होता है।

मक्का एक ऐसी जिन्स है जो उन्हालू और स्यालू दोनों मौसम में बोई जा सकती है। इसकी फसल बहुत जल्दी पक जाती है। इसलिये इसे अडान के रकबे में भी ज्यादा बोते हैं। अमेरीका मे इस उपज मे इतनी उन्नति की गई है कि सुनने मे भी आश्चर्य होता है। वहाँ इसका पौधा पन्द्रह सोलह फीट तक लम्बा बढ़ता है। हमारे यहाँ तो वह आठ दस फीट से कभी ज्यादा नहीं बढ़ता। वैसे साधारणतः तो वह ४, ५ फीट ही लम्बा रहता है। कहा जाता है कि अमेरिका मे हरएक मक्का के वृक्ष के ८, ९ भुट्टे लगते हैं, पर हमारे यहाँ २, ३ से अधिक नहीं लगते।

इसका कारण क्या है ? इसका कारण है 'पद्धतिशील परिश्रम का अभाव और जमीन की तैयारी की ओर दुर्लक्ष्य'। कानपुर के कृषि फॉर्म तथा दूसरे स्थानो पर इसकी पद्धतिशील खेती करने से बड़ी अच्छी पैदावार हुई है। अतएव हम किसानों के लाभ के लिये पद्धतिशील खेती की कुछ मोटी २ बातें संक्षिप्त में लिखते हैं।

मक्का की किस्में

अमेरीका मे मक्का की कई किस्मे हैं, पर हिन्दुस्थान में सामान्यत: दो किस्म की मक्का होती है—(१) पीली—बड़े और छोटे दाने वाली और (२) देशी-सफेद-बड़े व छोटे दाने वाली।

पहली किस्म की मक्का के पौधे चार से ८ फीट तक लम्बे होते हैं, जो कि सब प्रकार की आँधी और बलवान वायु के झोकों को सहन कर लेते हैं। यह किस्म ७०, ८० दिनों में पक जाती है। इसके भुट्टों के दाने एक दूसरे से उत्तम प्रकार मिले रहते हैं। इसके दानों का रंग तेज और गहरा, पीला अथवा नारंगी के रंग के समान होता है। इसका मूल्य बाजार में अधिक आता है। इसका बीज भी बोने के लिये बड़ा अच्छा होता है।

दूसरी किस्म की मक्का के वृक्ष पहली की अपेक्षा ज्यादा ऊँचे रहते हैं, जिनकी ऊँचाई ७ से लगाकर १० फीट तक होती है। कहीं २ ये १२ फीट तक ऊँचे होते हैं। इनके पत्ते भी लम्बे रहते

है। इनके आँधी व जोर की हवा से गिर जाने का डर रहता है। यह किस्म ८० या ९० दिनों मे पक जाती है। इसकी उपज पहली किस्म की मक्का की बनिस्बत कुछ ज्यादा होती है। इसके अनाज का दाना भी बड़ा होता है। इसके भुट्टे अच्छे और मीठे होते हैं और खासकर भुट्टे बेचने के अभिप्राय ही से किसान इसे बोते है।

जमीन की किस्म और उसकी तैयारी

मक्का की खेती के लिये इस प्रकार की नर्म जमीन होनी चाहिये, जिस मे चिकनाहट कम तथा रेती का भाग ज्यादा हो। इसके खेत में हमेशा ऊँचे स्थल पर होने चाहियें। निचाव के खेतो में हमेशा पानी भरा रहने के कारण इसकी खेती फायदेमन्द नहीं होती। यह दुमट हलकी मटियार या काली जमीन में बडी अच्छी पैदा होती है; क्योंकि इन जमीनों मे आल ज्यादे अंश में रहती है। जहाँ प्रति साल लगभग ३०-४० इञ्च पानी गिरता हो वहाँ इसे बोने में कोई नुकसान नहीं है। यह जिन्स बहुत जल्दी पकती है तथा बहुत सा दाना पैदा करती है। इसलिये इसके लिये अच्छी जमीन तथा उम्दा खाद की जरूरत है।

इसकी खेती अक्सर बरसात के दिनों में होती है। इसलिये किसानों को चाहिये कि वे बरसात शुरू होने के पहले ही अपने खेत अच्छी तरह जोत कर तैयार रखें। उन्हे बरसात के पहले पहले अपनी जमीन में अच्छी तरह हल चला देना चाहिये,

जिससे जमीन के ऊपर का तमाम थर टूट जाय। बरसात के पहले जुताई न करने से बड़ा नुकसान होता है, क्योंकि इससे बरसात का पानी खेत में न रमते हुए बह निकलता है और साथ ही अपने साथ वह खेतो की बहुत सी उम्दा मिट्टी बहा ले जाता है। अतएव किसानो को चाहिये कि वे अपनी जमीन को लगभग ८-९ इञ्च गहरा जोत रखे। कानपुर के कृषि फार्म पर, जहाँ इस धान्य की पैदावार मे अच्छी सफलता हुई है, उसका कारण ९ इञ्च तक की गहरी जुताई है। उक्त फार्म में जुताई करने की यह प्रथा है कि पहले खेतों मे साधारण हल चलाये जाते हैं, जिससे जमीन ४-५ इञ्च की गहराई तक फट जाती है। बाद में दूसरे कुछ कम भारी हल चलाये जाते हैं, जिससे पहली जुताई से ४ इञ्च आगे जुताई हो जाती है। इस प्रकार वहाँ नौ इञ्च के लगभग जमीन की जुताई हो जाती है। अगर किसानों के लिये यह बात मुमकिन न हो तो उन्हे फावड़े से जमीन खोद डालना चाहिये। इसमे उन्हें ५-७ रुपया फी एकड़ खर्च पड़ेगा। पर यह काम बड़ा जरूरी है और इसमे उन्हे तनिक भी दुर्लक्ष्य नहीं करना चाहिये। उन्हे यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि अच्छी तरह जुताई न होने से मक्का की जड़ें मजबूत नहीं हो सकतीं, और जब तक जड़े मजबूत नहीं होती, तबतक झाड़ भी बड़ा नहीं हो सकता और न उसके अच्छे भुट्टे ही लग सकते हैं।

खाद

हम ऊपर बतला चुके हैं कि मक्का एक शीघ्र पकने वाली जिन्स है, जिसकी उपज बहुत होती है। अतएव इसके खेत में अच्छा खाद देने की जरूरत है। अगर कोई किसान अपने खेत मे काफी खाद न डाल सकता हो और साथ ही उसकी जमीन हलके दर्जे की हो, तो बेहतर होगा कि वह उसमें मक्का न बोवे। उसके स्थान में ज्वार या बाजरा बो दे।

खाद के लिये गोबर, बकरियो की मीगनी, हड्डी का चूरा, मैला, धान का भूसा, लकड़ी की राख, चूना, शोरा, अरंडी की खली, बिनौले की खली आदि चीजों का उपयोग हो सकता है। प्रत्यक्ष अनुभव से यह भी पाया गया है कि गाँवों के नालों से बहकर जानेवाला कूड़ा कर्कट व मैला भी इसके खाद के लिये बड़ा उपयोगी है। यदि खेत में केवल गोबर का खाद देना हो तो प्रति एकड पीछे लगभग १०० मन खाद डालना चाहिये। अगर कोई किसान अरंडी की खली का खाद देना चाहे तो एक एकड में लगभग १० मन खली से काम चल सकता है।

बोने से पहले बीज की परीक्षा करने की तरकीब

हमारे किसान भाई खराब बीज बोकर अपना बड़ा नुकसान कर लेते हैं। उन्हें चाहिये कि वे बोने के पहले बीज की परीक्षा अवश्य

कर ले। विलायत में इस प्रकार की परीक्षा मे बड़ी सावधानी से काम लिया जाता है। वहाँ एक विशेष सन्दूक में खाद देकर थोड़ा सा बीज बोया जाता है। हर किस्म के दाने पर नम्बर लगा दिये जाते है। जिस दाने से ५-७ दिन मे एक इञ्च के बराबर अंकुर निकल आता है उसी दाने का बीज चुनकर बोया जात है। पर हमारे किसानों के लिये शायद यह बात मुमकिन न हो। वे शायद ऐसा न कर सकें। उनके लिये इससे भी एक आसान तरकीब हैं, जिसके द्वारा वे तो क्या उनके बच्चे भी बीज की परीक्षा कर सकते हैं। वह तरकीब यह है कि जुदे २ बीजों के बीस दाने लेकर जमीन में बो दें। जिस समय उनके पौधे ४, ५ अंगुल ऊँचे हो जाँय तो उनकी जड़ों को फाड़कर देखो कि किस दाने मे ज्यादा जड़ें फूटी हैं। बस जिस दाने में ज्यादा जड़ें निकला हों उसी दाने को बीज के लिये चुन ले। यह सीधी तरकीब काम मे लाने से किसान बहुत से नुकसान से बच सकते हैं। इसके बाद जब उनके खेत में अच्छा अनाज पकने लग जावे, तो उन्हे इस तरकीब की भी जरूरत नहीं। फिर तो केवल अच्छे अच्छे झाड़ के भुट्टे तोड़कर उन्हें हिफाजत के साथ रखना चाहिये और फुरसत के वक्त उन भुट्टो में से बड़े बड़े भुट्टे छाँटकर बीज इकट्ठा कर लेना चाहिये।

बीज बोने के पहले अगर मक्का के बीज को गाय भैंस के मूत्र में भिगो लिया जाय तो बड़ा ही फायदा होता है। इससे एक तो दाने में जल्दी अंकुर निकलते हैं और दूसरे मे कोई रोग नहीं होता।

बीज बोने का समय

यों तो मक्का की फसल वर्ष भर में दो या तीन मर्तबा पैदा की जा सकती है, पर साधारणतः इसकी खेती मई या जून में वर्षा ऋतु के पहले या उसके शुरू होने पर की जा सकती है। अगर जमीन में सिंचाई की सहूलियत हो तो मई में सिंचाई करके बीज बो देना चाहिये। इससे बड़ा लाभ होगा। अगर सिंचाई की व्यवस्था न हो तो वर्षा के आरम्भ होते ही बिना विलम्ब के बीज बो देना चाहिये। अगर इस वक्त पर बीज बो दिया गया तो अच्छी उपज होगी वरना कम। किसान लोग हमेशा कहा करते हैं कि ज्येष्ठ की बोई हुई मक्का में अधिक भुट्टे लगते हैं। कानपुर के सरकारी फार्म पर प्राप्त किये हुए अनुभवों से भी यही सिद्ध होता है कि जल्दी बोनी करने से उपज अधिक होती है। स्मरण रहे कि जो बीज भारी मेह में बोया जाता है उसकी उपज अच्छी नहीं होती। इसी प्रकार बीज ऐसे समय में बोना चाहिये जब आकाश साफ हो।

बीज बोने की तरकीब

मक्का की जड़ों को फैलने के लिये काफी जगह की जरूरत होती है। इसलिये दो वृक्षों के बीच काफी अन्तर रखना चाहिए। इसलिये पौधों को बहुत पास पास नहीं बोना चाहिये। उन्हें एक कतार में नियमित अन्तर पर बोने से बहुत कुछ फायदा हो सकता है। बीज पद्धति पूर्वक बोने से २५ से लगाकर ५० सैकड़ा

तक उगज बढ़ सकती है। हरएक जाति की मक्का के पौधे के लिये अलग २ फासले की जरूरत पड़ती है, पर उन किस्मों के पौधों के लिये जिनका जिक्र हम पहले कर चुके हैं, लगभग १॥ या दो फिट के फासले की आवश्यकता है। अगर इससे कम फासले पर पौधे बोये जाते है तो वे पिचपिच और कमजोर होकर पीले पड़ जाते हैं। फिर न उनके अच्छे भुट्टे लगते है और न उनसे अच्छा चारा ही पैदा होता है। अगर इस तरकीब के अनुसार फसल बोई गई तो प्रति एकड़ लगभग ३०, ३५ मन मक्का पैदा हो सकती है।

कहीं २ किसान मक्का के बीज बिखेर देने की रीति का काम में लाते हैं। पर यह ठीक नहीं, क्योंकि इससे खेत के किसी भाग में पौधे बहुत पास पास हो जाते है और किसी में बहुत दूर दूर। इस रीति से बहुत से दाने जमीन के ऊपर ही पड़े रह जाते हैं। बीज बोने की सब से अच्छी तरकीब वही है, जो कि कानपुर फार्म पर काम मे लाई जाती है। वह तरकीब यह है कि जब खेत तैयार हो जाय तो उसमें डेढ २ फीट के अन्तर पर डोरी अथवा जंजीर से सीधी लकीर खिचवा देते है और फिर इन लाइनों पर एक २ फुट के अन्तर पर खुरपी से छेद करके प्रत्येक छेद में दो तीन दाने मक्का के बो देते हैं। ये छेद तीन इञ्च से अधिक गहरे नहीं होते हैं, और जो मिट्टी खुरपी से हटा दी जाती है वह फिर पीछी छेद मे डाल दी जाती है। इसके बाद जब पौधे ६ इञ्च ऊँचे हो जाते हैं तो जिन छेदों मे २-३ पौधे होते हैं उनमें से केवल

एक पौधा, जो सबसे निरोग होता है, छोड़ दिया जाता है और शेष पौधे निकाल दिये जाते हैं। इस प्रकार सब पौधे समानान्तर पर बो दिये जाते है जिससे उन्हे बराबर खुराक, बराबर हवा और बराबर धूप मिलती रहे और फसल भी अच्छी हो।

पहले कह आये है कि मक्का बड़ी जल्द पकनेवाली फसल है। अतएव इसके साथ दूसरी फसलें अधिक नहीं बोई जा सकतीं; क्योंकि वे देर मे पकती हैं। पर कहीं २ मक्का के साथ उड़द, मूँग आदि जिन्से भी मिलाकर बोई जाती है। यदि कपास और मूँगफली भी इस फसल के साथ मिलाकर बोई गई, तो उनसे भी विशेष लाभ हो सकता है। यदि मक्का के साथ तुरई, गिलकी व ककड़ी के बीज भी डाल दिये जावे तो भी अच्छा फायदा हो सकता है, क्योंकि इनकी बेले जमीन पर बहुत फैलती है। इससे जमीन ढक जाती है और उसमे कई दिनों तक आल (नमी) बनी रहती है। कहीं २ लोग मक्का मे मोठ भी मिलाकर बो देते है, पर यह ठीक नहीं। क्योंकि मोठ की बेले मक्का पर चढ़ जाती है और मक्का के पौधों को निर्बल कर देती है। जब मक्का के साथ उडद और मूग मिलाकर बोये जावे, तब मक्का के हर दो पौधों के बाद एक पौधा मूग व उडद का रखना चाहिये। यदि मक्का के साथ कपास बोया गया तो उसमे कपास की पैदावार अच्छी होती है। क्योंकि मक्का के वृक्ष की छाया कपास के छोटे २ पौधों को तेज धूप की गर्मी से बचाती है। इन दोनो फसलों को सीधी लकीरों मे बो देने मे पंजाब के कृषि-विभाग को बड़ी अच्छी

सफलता मिली है। अतएव यदि कपास मक्का के साथ बोया जाय तो एक चांस में कपास और दूसरे में मक्का, इस प्रकार से खेत मे बोनी करना चाहिये।

सिञ्चाई (आबपाशी)

ध्यान रहे कि पानी की दृष्टि से मक्का की फसल बड़ी कोमल प्रकृति की है। यदि इसे कम पानी मिला तो भुट्टे को बराबर दाने नही लगते। यदि पानी ज्यादा हो गया तो पौधे की जड़ें, उनके निरन्तर पानी के अन्दर रहने से, बिगड़ जाती हैं और इससे फसल मारी जाती है। अतएव अच्छी पैदावार के लिये इस जिन्स के खेत के पास सिंचाई का इन्तजाम होना जरूरी है, जिससे कि वक्त जरूरत के सिंचाई की व्यवस्था सहज ही हो सके। इसी प्रकार ज्यादा पानी निकाल देने के लिये भी नालियाँ बना देना चाहिये, जिसमे जरूरत से ज्यादा इकट्ठा हुआ पानी खेत से निकाला जा सके। पौधे के आसपास ज्यादा पानी इकट्ठा होने से जमीन पोली हो जाती है और इससे कभी २ पौधे के गिर जाने का भी डर रहता है। यदि बोनी के तीन दिन बाद जमीन सूखी प्रतीत हो और वर्षा की शीघ्र आशा न हो तो उसमें एक पानी अवश्य दे देना चाहिये।

निंदाई

मक्का के उग जाने के बाद निंदाई का काम शुरू किया जाता है। इस समय तक पौधे २ या ३ इंच ऊँचे हो जाने चाहिये।

पर यदि खेत में गीलापन अधिक हो तो ९ या १० दिन बाद यह कार्य आरम्भ करना चाहिये। परन्तु, यह ध्यान रहे कि यह काम बड़ा आवश्यक है क्योंकि यदि खेत को घास-पात व खर-पतवार से साफ न रक्खा गया तो मक्का की पैदावार हो नहीं सकती। जहाँ मक्का सीधी लकीरों में बोई जाती है, वहाँ इस काम में ज्यादा मेहनत नहीं पड़ती और सिर्फ ४ बार निंदाई कर देने से काम चल जाता है, क्योंकि निंदाई की केवल उसी समय तक आवश्यकता रहती है, जब तक कि मक्का के पौधे काफी बड़े होकर जमीन को अपनी छाया में न ढक लें।

पर यह बात स्मरण रखना चाहिये कि जितनी बार निंदाई अधिक होगी उतना ही फसल को लाभ पहुँचेगा। क्योंकि इससे एक तो सब पौधे स्वयं उगनेवाली वनस्पति के समान महान् शत्रु से बचे रहेंगे और दूसरे भूमि पोली व भुरभुरी रहने से अच्छे फल देगी। यहाँ यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि निंदाई अधिक गहरी न की जाय, क्योंकि इससे मक्का की जड़ें जो कि बहुत गहरी नहीं पैठती, ढीली हो जाती हैं और पौधों को हानि पहुचने का डर रहता है।

मिट्टी की चढ़ाई

पाठक जानते हैं कि मक्का के पौधे बड़े कोमल होते हैं और उनकी जड़ें भूमि में अधिक गहरी नहीं पैठतीं। अतएव उनको आंधी अथवा तेज हवा के आक्रमण से बचाने के लिये मिट्टी

चढ़ाने की जरूरत होती है। क्योंकि यदि पौधों की जड़ें हवा से हिल गईं तो फसल मारी जाती है। जब ये पौधे महीने सवा महीने के हो जावें तब उन पर मिट्टी चाढ़ाने का काम निदाई के साथ २ आरम्भ कर देना चाहिये जिसमे कि पौधे की जड़ें भूमि को बहुत मजबूती मे पकड़े रहें और अधिक मिट्टी से अपना अहार लेकर दृढ़ हो जावे। कई किसान पौधे के डेढ दो फीट ऊँचा हो जाने पर जमीन मे हल चला देते हैं, जिससे मक्का की जड़ों मे कुछ मिट्टी चढ़ जाती है, पर यह काम केवल उसी हालत मे हो सकता है जब कि मक्का सीधी लकीरो मे बोई गई हो।

यह बात अवश्य है कि मिट्टी चढ़ाने मे खेती का खर्च कुछ बढ़ जात है, परन्तु इससे पौधे गिरने नहीं पाते। इसलिये उपज की अधिकता से सारा खर्च सहज ही निकल जाता है।

काटने और दाना निकालने की रीतियां

मक्का जबतक हरी रहती है तबतक इसकी माँग व क़ीमत अधिक आती है। जिस किसान के खेत में जल्दी फसल पक जाती है, वह अधिक लाभ उठाता है; क्योंकि वह हरे भुट्टों को बाजार में अच्छे दाम में बेच देता है। पर यह बात हर जगह मुमकिन नहीं है

जब भुट्टे पक जाँय तो उन्हें काट लेना चाहिये और धूप मे सुखाकर और उनको पीटकर अथवा छीलकर उनका दाना निकाल लेना चाहिये। कहीं कहीं छोटो २ मशीनों के द्वारा भी

भुट्टा से दाना निकाला जाता है। कानपुर के कृषि-विभाग में एक ऐसी मशीन है जिससे दाने सहज निकल आते हैं। इसे केवल एक ही आदमी हाथ से चला सकता है और उसका मूल्य भी अधिक नहीं है।

जब भुट्टे घरों में इकट्ठे किये जाँय तब यह देख लेना चाहिये कि कोई भुट्टा गीला तो नहीं है। यदि किसी में कुछ गीला पन प्रतीत हो तो उसे फिर धूप में सुखा लेना चाहिये। जिस स्थान पर ये भुट्टे इकट्ठे किये जावे, वहाँ जरासी भी सील नहीं होनी चाहिये; क्योंकि इससे भुट्टे के थर में फफूंदी लग जाती है और दाने फूट कर इतने कड़वे हो जाते हैं कि उन्हें मनुष्य तो क्या ढोर और कुत्ते भी नहीं खा सकते।



ज्वार की खेती

भारतवर्ष मे ज्वार गरीब लोगों का खास खाद्य पदार्थ है। मालवा में तो इसका बहुत ही प्रचार है। वहाँ इसकी खेती भी कसरत से होती है। ज्वार के लिये, अन्य फ़सलों की तरह, खेत की तैयारी की बड़ी आवश्यकता है। ज्यो ही ज्वार के पहले बोई गई फ़सल कट जाय त्योही खेत की सफाई का काम शुरू कर देना चाहिये। गर्मी की मौसम मे खेत की जुताई कर उसे कुछ दिनो तक खुला पड़ा रहने देना चाहिये। जब कुछ जल बरस जाय तब बक्खर चलाकर सब ढेलों को बराबर कर देना चाहिये। यदि किसी कारणवश गर्मी की मौसम मे जुताई न हो सके तो बक्खर चलाने के पहले जुताई कर देना चाहिए।

बीज की छँटनी

ज्वार की अच्छी फसल पैदा करने के लिये अच्छे बीज के चुनने की बड़ी आवश्यकता है। ज्वार को अक्सर 'काणी' नामक रोग हो जाता है। इससे सारी ज्वार काली पड़ जाती है और उससे आटे की जगह केवल काला भूसा निकलता है। अकसर यह रोग, तब तक नजर नही आता जब तक ज्वार के

फूल नहीं आने लगते। इस रोग से बिगड़ा हुआ दाना अगर दूसरे वर्ष बीज के काम मे लिया गया तो उससे आगे को सारी फसल बिगड़ जाती है। जिस प्रकार गेहूँ को गेरुआ लग जाने से बहुत नुक़सान होता है उसी प्रकार ज्वार को इस रोग से नुकसान होता है। दूसरे शब्दों मे यों कह सकते हैं कि यह 'ज्वार का गेरुआ' है। इससे फसल को बचाने की बड़ी सरल तरकीब है। वह यह है कि बोने से पहले बीज को कॉपर सल्फेट के मिश्रण मे डुबो लिया जाय। पहले एक काँच के अगर मिट्टी के बर्तन में २॥, ३ सेर साफ पानी लेकर उसमें २, २॥ तोला कॉपर सल्फेट मिला दिया जावे। बाद मे इसको खूब हिलाकर उसमे एक एकड़ को लगने वाला बीज १० मिनिट तक डुबोया जावे और फिर सल्फेट का पानी अलग फेक दिया जाये। बीज को पानी मे से निकालकर सुखा लिया जाय। यहाँ यह ध्यान मे रखना चाहिये कि कॉपर सल्फेट एक प्रकार का विष है। इस लिये जो बीज तैयार हो जावे उसे एक तरफ हिफाजत के साथ रखना चाहिये, जिससे उसे पशु या मनुष्य अपने भोजन के काम मे न ला सके। यदि बोने के बाद भी कुछ बीज बचा रहे तो उसे जला डालना चाहिये। बने तब तक बोने से एक या दो दिन पहले बीज को इस मिश्रण में डुबो कर सुखाना चाहिये। बीज को धूप में नहीं डालना चाहिये। इसी तरह धातु के बर्तन में कॉपर सल्फेट का मिश्रण नहीं तैयार करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से उसका जोश कम हो जाता है

कई किसान अच्छे बीज की छँटनी न कर सकने के कारण

अच्छी फसल पैदा नहीं कर सकते। अकसर किसान ज्वार की फसल के बड़े २ भुट्टों को तोड़ कर अगले वर्ष के बीज के लिये उन्हें अलग रख लेते हैं और उन्हीं को बीज के काम में लाते हैं। कई किसान तो बाजार से सड़ी, गली, कंकर मिट्टी मिली हुई ज्वार को बीज के काम मे ले लेते हैं, जिस से उसकी पैदावार बिलकुल खराब होजाती है। जो किसान केवल अच्छे २ भुट्टे छाँट कर उनके दानों को बीज के काम मे लेते हैं, वे भी किसी हद तक गलती करते हैं; क्योंकि एक ही भुट्टे में सब बीज एकसा नहीं होते। उनमे भी कुछ बीज छोटे होते हैं और कुछ बड़े। कुछ पूरी तरह पके हुए होते हैं, और कुछ कच्चे होते हैं। किसान लोग अच्छी तरह जानते हैं कि जुआर का सारा भुट्टा एक ही साथ नहीं निकलता और न उसमें सब दाने एक ही साथ आते हैं। अतएव किसी भुट्टे के सभी दाने पकने के बाद भी एक सरीखे नहीं हो सकते; क्योंकि पहले निकले हुए दाने तो बड़े हो जाते हैं और पीछे के छोटे रह जाते हैं। इसलिये चुने हुए भुट्टों में से भी बड़े २ दाने अलग छाँट लेने चाहिये और सिर्फ उन्हे ही बोने के काम में लेना चाहिये। इस प्रकार के बीजों को छँटनी चलनी द्वारा हो सकती है जिसकी कि कीमत १०, १२ आने से ज्यादा नहीं होती और जो कई वर्षों तक काम दे सकती है। इस प्रकार बीज की छँटनी से बड़े फायदे होते हैं।

१--बीज ज्यादा तादात मे उगते हैं और इस प्रकार फी एकड़ ज्यादा पौधे लगते हैं।

२-इस प्रकार के बीज से फसल मे ५२ प्रति सैकड़ा दाना और ४६ फी सैकड़ा कडबी निकलती है।

३--पौधो की बाढ़ अच्छी होती है और ज्वार के भुट्टे अच्छे लगते हैं।

बोनी

बोनी बरसात होने के बाद जल्दी ही शुरू कर देना चाहिये। मामूली तौर पर जून, जुलाई महीने मे बोनी की जाती है। देर से बोनी करने के कारण अनाज पूरी तरह नही पकता। एक एकड़ के लिये लगभग ७ सेर अनाज काफी होता है। बोनी नाई के पीछे नली लगाकर करना चाहिये। खेत मे हर कतार के बीच १२ या १५ इञ्च का फासला रखना चाहिये। इस बात पर पूरी तरह ध्यान रखना चाहिये कि बीज जमीन में बहुत गहरा न डाला जावे। बीज को हमेशा सीधी कतार मे बोना चाहिये।

बोनी के बाद जमीन मे हल्का सा पटेला फिरा देना चाहिये। जिससे बीज मिट्टी से ढँककर जमीन समतल हो जावे।

फ़सल की हिफ़ाजत

जब पौधे ६ इञ्च ऊँचे हो जावें, उस वक्त निंदाई करना चाहिये, ।जिससे कि घासपात उगते ही नष्ट कर दिये जावें। फसल की कतारों में उगने वाले घासपात को हाथ से उखाड़ लेना चाहिये। यदि फसल अनाज के लिये बोई गई हो तो निंदाई के वक्त हरएक पौधे के बीच नौ २ इञ्च का फासला रखना चाहिए

और यदि वह ढोरों के चारे के लिए बोई गई हो तो पौधों को जैसे के तैसे बने रहने देना चाहिए। इसके बाद जब फसल पकने लगे तो कौओं व चिड़ियों आदि पक्षियों से दानों की रखवाली करना चाहिये।

खाद

इस फसल के लिये साधारणत: गोबर का खाद दिया जाता है और वह है भी अच्छा। प्रति दूसरे वर्ष फी एकड़ ५ टन या १४० मन गोबर का सड़ा खाद देना काफी होता है। कहीं २ गोबर के खाद के बजाय पोड्रेट (Poudrette) खाद भी दिया जाता है। इसमें मामूली गोबर के खाद की अपेक्षा ज्यादा नाइट्रोजन होता है। बम्बई के कृषि-विभाग की ओर से इसकी उपयोगिता के बारे में १५ वर्ष तक प्रयोग किये गये तो अनाज की पैदावार में फी सैकड़ा ५८ व चारे में फी सैकड़ा ८४ वृद्धि हुई। जहाँ कहीं, बड़े शहरों में, कड़बी कीमती समझी जाती है, वहाँ पर १० गाड़ी गोबर में ६ गाड़ी मूत्र मिश्रित मिट्टी मिलाकर खेत में डाल देने से फायदा होता है। इस फसल को १६० पोंड नाइट्रेट ऑफ सोडा की खाद देने से भी फायदा पहुँचता है; परन्तु इसमें से आधा भाग बोने के वक्त व आधा बाद में देना चाहिये।

कटाई

इस फसल की कटाई बाजरे की फसल की तरह की जाती है। यदि फसल केवल घास की दृष्टि से बोई गई हो तो फल आने के बाद शीघ्र ही, कटाई का काम शुरू कर देना चाहिये।

पैदावार

इस अनाज की अच्छे ढंग पर खेती करने तथा गोबर का खाद देने से पैदावार फी एकड़ ३५० सेर से कम नहीं होती है। इसके साथ ही लगभग २००० सेर कड़बी मिल जाती है। यदि पोड्रेट नामक खाद दिया गया तो उपज और भी अधिक होती है और खाद मे खर्च किया हुआ सब रुपया वसूल हो जाता है।

गाहनी या दाना निकालना

जिस पद्धति से हमारे यहाँ के किसान ज्वार की गाहनी करते हैं, वह बड़ी पुरानी है। इससे बैलों व मनुष्यों दोनो ही को तकलीफ होती है। साधारणतः किसान खलियान मे ज्वार के भुट्टे काट कर बिछा देते है और उस पर बैल व दूसरे ढोरों को गोलाकार मे फिराते हैं। इस पद्धति मे केवल काम ही धीरे २ नहीं होता, वरन ढोरो के पैरो को भी तकलीफ होती है। इतना ही नहीं कई ढोर इस काम मे जुते रहते हैं, जिस से जुताई का काम रुक जाता है। कई कृषि-विद्या विशारद इस पुरानी पद्धति के बजाय कोई दूसरी सरल तरकीब निकालने के लिये प्रयत्नशील थे और अन्त में उन्होंने एक पत्थर का बेलन निकाल ही डाला। इस बेलन का मूल्य ३० रुपये के लगभग है और इसे दो बैल सहज ही घुमा सकते हैं। इस बेलन के दोनों ओर दो लोहे के डंडे बैठा दिये जाते हैं; जो कि धुरे का काम देते हैं। इसके

आसपास एक लकड़ी की चौखट लगाई जाती है और उसमें बैलों की जूड़ी बनाई जाती है। इस बेलन के ८ या ९ इञ्च ऊपर एक तख्ता लगाया जाता है, जिस पर बैठ कर किसान बैलों को हाँकता है। इस बेलन को घुमाने से पहले अच्छी तरह सूखे हुए ज्वार के भुट्टों को खलियान में बिछाकर एक दो दिन तक धूप मे पड़ा रहने देते हैं। फिर उनका ६० फीट लम्बा और ४० फीट चौड़ा व १ फीट ऊँचा अण्डाकार थर लगाते हैं। इसके बीच २०×१० फुट की जगह खाली रखते हैं। यह जगह, यदि बेलन पर हाँकनेवाले के लिये बैठक न रखी गई हो तो, खड़े रहकर बैलों को हाँकने के काम आती है। अण्डाकार मे थर लगाने से बैलों को फिरने या घूमने मे तकलीफ नहीं होती। बेलन के पीछे हाँकनेवाले आदमी के अलावा एक और आदमी रहता है, जो भुट्टों को ऊपर नीचे करता रहता है। यदि भुट्टे अच्छे सूखे हुए हों तो जल्दी ही दाना भूसे से अलग हो जाता है और लगभग ३ घण्टे मे सारे थर का ९० फी सैकड़ा दाना निकल आता है। इसके बाद फिर सब बचे खुचे भुट्टे इकट्ठे कर लिये जाते हैं और उन पर आधे घन्टे तक बेलन फिराया जाता है, जिस से थोड़ा बहुत बचा हुआ दाना भी निकल आता है। इस प्रकार बेलन के जरिये दाना निकालने में समय की बचत होती है और खर्च भी बहुत कम होता है।